Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

कहानियों और कथा जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २५; अंक ३७८; १ से १५ अप्रैल, १९८५.

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उप संपादक :
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

सज्जा :
सुमीता

महाविनाश की कहानियां

इस अंक के लिए महान चित्रकार पिकासो की इस कलाकृति का चुनाव विशेष रूप से किया गया है. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हुई नरसंहार और महाविनाश की लीला के प्रत्यक्षदर्शी पिकासो ने युद्ध के विरुद्ध एक कलाकार की आवाज उठाने के लिए महाविनाश से जुड़ी कई कलाकृतियां क्रमिक रूप से अंकित कीं, जिन्हें संपूर्ण विश्व समुदाय ने सराहा. आवरण पर प्रकाशित उनकी यह कृति तो विशेष चर्चा का विषय बनी रही. इसे देखकर एक जर्मन सैनिक अधिकारी ने पिकासो से पूछा था, "यह क्या आपने बनायी है?"

"नहीं", पिकासो का जवाब था, "इसे बनाने का श्रेय वस्तुतः आपको ही जाता है."

आवरण कलाकृति : पिकासो
छायांकन : पवन मेहरा

कहानियां/उपन्यास

12. विधवाओं की बस्ती में : **प्रमथनाथ बिशी**
16. बेटों के विरुद्ध बेटा : **मैरप्पा**
20. हिरोशिमा के फूल : **एदिता मोरिस**
24. गैस चैंबर से फरार : **क्लीर हेडरोरी**
31. कालिदास का विद्रोही मेघ : **मृदुला गर्ग**
36. पांपियाई के अंतिम दिन : **लार्ड लिटन**
38. प्लेग : **अलबेयर काम्यू**
44. जलता हुआ शहर : **ह्येलमर सोदेरबर्ग**
46. बैल, चींटी और इंसान : **शौकत उस्मान**
48. कर्मनाशा की हार : **शिव प्रसाद सिंह**
56. सौ बरस की तनहाई : **गार्सिया मार्खेज**
64. एक ऊंचा मकान : **योगेश गुप्त**
54. जब मुंशीगंज बना जलियांवाला बाग : **महेश दर्पण**
60. वसंत में जहां चिड़ियां नहीं चहकतीं : **रशेल कारसन**
66. महाविनाश की लीला दर्शाता फिल्म का पर्दा : **ब्रजेश्वर मदान**

विशिष्ट आकर्षण

9. उंगलियों पर लटके हुए सलीब : **बाला दुबे**
10. युद्ध से विनाश
11. महाविनाश से बचने के लिए : **बर्ट्रेंड रसल**
26. सुन रे भोपाल, क्या हैं हालचाल? : **प्रभाकर श्रोत्रिय**
29. एक शमशान हुआ शहर : **रमेश दवे**
34. शहर जिन पर अंगार बरसे : **वीरेंद्र जैन**

अन्य आकर्षण

23. दो खत
33. विनाश के बाद
35. नरबलि का कुआं
37. वैभव बनाम विनाश
69 रासायनिक जहर : कैसे करता है असर ?

स्थायी स्तंभ

6. आपकी बात
8. अपनी बात
70. स्वप्न (कहानी : आते हुए लोग) : **अनुपम**
72. पखवारे की पुस्तकें
74. तीसरी नजर

संपादकीय पता : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक : एक और दो

चिंता भारतीय नाटककारों की

विशेषांकों की शृंखला में सारिका के 'ज्ञानपीठ पुरस्कार विशेषांक' साहित्य के पाठकों के लिए ही नहीं अपितु तमाम भारतीय भाषाओं के पाठकों के लिए एक उपलब्धि माने जा सकते हैं.

इन दोनों विशेषांकों के माध्यम से एक ओर जहां आपने भारतीय ज्ञानपीठ के जन्म से लेकर उसकी पुरस्कार-प्रक्रियाओं से अवगत कराया है, वहीं दूसरी ओर ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकारों की रचनाओं का टिप्पणी सहित प्रकाशन कर आपने अपनी इस उक्ति 'अच्छा साहित्य आदमी को आदमी से जोड़ने का काम करता है'—को सार्थकता प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया है. हमारी बधाई स्वीकारें. भारतीय नाटककारों को भी प्रकाश में लाने का लक्ष्य बनायें तो इस विधा का कल्याण होगा.

0 यू. एस. जायसवाल, दुमका (बिहार.)

क्या भूलूं, क्या याद करूं?

सारिका के रजत जयंती वर्ष में प्रवेश के लिए बधाई. रजत जयंती वर्ष के दोनों प्रथम उपहार संग्रहणीय बन गये हैं. दोनों अंक बहुत अच्छे, ज्ञानवर्धक लगे. भारतवर्ष का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार तथा इसे प्राप्त करनेवाले मनीषियों के बारे में समग्र जानकारी एक जगह प्रकाशित कर प्रशंसनीय कार्य किया है. दोनों अंकों के मुखपृष्ठ 'ज्ञानपीठ' के महत्वपूर्ण कार्यों के प्रति सादर समर्पित हैं.

अंक 372 में कुबेरनाथ राय का निबंध 'एक दृष्टि अगोचर नदी जैसा व्यक्तित्व' तथा लक्ष्मीचंद्र जैन का निबंध 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार : संकल्प से संसिद्धि तक' अच्छी तथा संपूर्ण जानकारी देता है. राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू की व्यग्रता सही थी. नोबेल पुरस्कार समिति द्वारा भारतीय साहित्य की उपेक्षा प्रत्येक भारतीय के लिए दुख की बात थी. इसी उपेक्षा की पूर्ति की है 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' ने.

'गणदेवता' (ताराशंकर बंद्योपाध्याय), 'नाम याद नहीं' (गोपीनाथ महांति) तथा 'कठपुतलियां' (विष्णु सखाराम खांडेकर) की रचनाएं मार्मिक हैं और जिजीविषा पैदा करती हैं. विष्णु दे की लंबी कविता 'स्मृति सत्ता भविष्यत्' बौद्धिक होते हुए भी मन को उत्तेजित करती है. महादेवी का एक गीत तथा फिराक की गजलें मार्मिक हैं. पंत की 'अनुभूति' सबकी अनुभूति बन जाती है.

अंक 373 में 'चिक्कबीर राजेंद्र' (मास्ति वेंकटेश अय्यंगार) अच्छा लगा. 'पुरुष का भाग्य' (अज्ञेय), 'बंद दरवाजे के सामने' (आशापूर्णा देवी) तथा 'मेरी चंपा का वर' (उमाशंकर जोशी) रचनाएं मन को छूती हैं.

वस्तुतः दोनों अंक पुरानी यादों को ताजा करते हैं. सभी दिग्गजों को एक स्थान पर प्रकाशित करने से संपूर्ण भारतीय श्रेष्ठ साहित्य का दर्शन होता है. यहां तो किसे भूलूं, किसे याद करूंवाली बात हो गयी. सभी अपनी भाषाओं के समकालीन श्रेष्ठ.

0 अमल कुमार दास, कलकत्ता

विराट सत्यों का दर्शन

सारिका के रजत जयंती वर्ष के ये दोनों उपहार विशेषांक बेजोड़, लाजवाब, अप्रतिम मूल्यवान रहे. मेरे मन में तो बड़ा द्वंद्व है—इन दोनों में किसे ज्यादा वजनी कहूं, किसे ज्यादा दमदार, मूल्यवान! निर्णय बड़ा कठिन है—दोनों की सही-सही तुलनात्मक मूल्यांकन कोई सूक्ष्म कलात्मक-सृजनात्मक संवेदना-समृद्ध समीक्षक ही कर सकता है.

विशेषांक एक में विष्णु सखाराम खांडेकर की कहानी 'कठपुतलियां' बहुत अच्छी लगी—जीवन की सच्ची तस्वीर उपस्थित करती हुई—लगा कि किसी अनुभवसिद्ध कलाकार की रचना है, किसी तत्वदर्शी मनीषी की. फिर महादेवी की रचना 'बिस्तर के वास्ते' बहुत मर्मस्पर्शी रही, दिल के अनगिनत तारों को झनझना गयी. महादेवी के व्यक्तित्व की आधारभूत काव्यात्मकता चित्रात्मकता, करुणा-ममता, गहरी और सूक्ष्म मानवीय संवेदना—जैसे सब कुछ उमड़कर आ गयी है इस रचना में.

कहानियों और साक्षात्कार के मामले में विशेषांक : दो ज्यादा समृद्ध रहा, काव्य के मामले में एक.

विशेषांक दो की कहानियों में उमाशंकर जोशी की 'मेरी चंपा का वर,' वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य की 'सहारा', अखिलन की 'बसेरा' बेहद पसंद आयीं, भीतर मर्म को गहराई में छू गयीं. अखिलन की 'बसेरा' तो गजब की कहानी है, कमाल है! क्या दृष्टि है उनकी, कितनी मर्मभेदिनी, तत्वदर्शिनी, कितनी सूक्ष्म और गहन पकड़ जीवन की! कितना दृष्टि-विस्तार—मानव से प्रकृति तक, जीवन से मरण तक, संहार से सर्जन तक, श्मशान से सुहाग-सौभाग्य तक, भय-आतंक, दुख-दैन्य, निराशा से सौंदर्य-स्वप्न-स्नेह-रसतृप्ति-धन्यता तक!

और उपसंहार की पंक्तियां तो किसी सत्यदृष्टा ऋषि के मुख से उद्‌गीर्ण सूत्र-वाक्य-सी लगती हैं जो कहानी को काव्यात्मक ऊंचाई अथवा महाकाव्यात्मक गरिमा देती हुई पाठक को सहसा जीवन के महासत्यों के उद्वेलित-उद्विग्न सागर-तट पर पटक देती हैं—जीवन की विराट अनुभूति अथवा विराट सत्यों के दर्शन-साक्षात्कार के लिए!

ऐसे अंत और जीवन-सत्यों के उद्‌घाटन के लिए अखिलनजी को बार-बार बधाई, हजार बार बधाई!

0 रवींद्रनाथ ओझा, बेतिया, प. चंपारण

नये चिंतन और पुरस्कार

सारिका के दो विशेषांक (अंक 372-373) ऐतिहासिक विशेषांक हैं. खासकर इसलिए भी कि इनमें चोटी के कथाकारों को समाहित किया गया है, इन दो अंकों का आकार और साज-सज्जा बड़ी ही आकर्षक बन पड़ी है. बधाई!

इन दिनों सामग्री का आयोजन करने में जो मेहनत और तत्परता संपादकीय विभाग दिखा रहा है वह सारिका के इतिहास में संभवतः पहली बार हुआ जान पड़ता है.

ग्रामीण परिवेश की कहानियां खासकर दलित, शोषित और सताये हुए लोगों की जिंदगी पर आधारित कथाओं को समुचित स्थान दें तो समग्रजन का उपकार होगा.

यदि उत्कृष्ट और तथ्यों पर आधारित विवरणात्मक ऐसे पत्रों को पुरस्कृत पत्रों की श्रेणी में प्रकाशित करें और पुरस्कार लगभग 100 रु. हो तो कथा-जगत के क्षेत्र में नयी जानकारियों को उद्‌घाटित करने में मदद मिलेगी. साथ ही आगे चलकर यह नये चिंतन और नये मूल्यबोध की स्थापना की दिशा में एक सार्थक आंदोलन सिद्ध होगा.

0 रीता, मुजफ्फरपुर (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कथाकार या साहित्यकार

सारिका की विशेषांकों की परंपरा में 'ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार अंक-1, 2' का संयोजन महत्वपूर्ण है. **सारिका** अंक : 373 में प्रकाशित ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त साहित्यकारों की कहानियों आदि कृतियों में जो विषयगत एवं शैलीगत विविधता है, वह अंतर्मन के विविध धरातलों को स्पर्श करने में समर्थ है. **आशापूर्णा देवी** की **'बंद दरवाजे के सामने'** जहां सरल, रोचक ढंग से संवेदना में कसक छोड़ती है, वहीं **अज्ञेय** की **'पुरुष का भाग्य'** अपने ताने-बाने की श्लिष्टता के कारण दुर्बोध होते हुए भी नारी मन की चिरंतन कसक की समानानुभूति कराती है. **'ऊंट'** का अंत सिद्ध करता है कि 'वह' ऊंट नहीं था. **लक्ष्मी चंद्र जैन** व **अज्ञेय** के साक्षात्कार विशिष्ट हैं. **'सहारा'** सशक्त है. **'अपनी बात'** का स्पष्टीकरण प्रभावित करता है. कविताओं का चुनाव सराहनीय है. **अमृता की डायरी** रोचक लगी. **बिशन टंडन** का 'गोदान' के संदर्भ में 'गणदेवता' और 'माटीमटाल' का तुलनात्मक विश्लेषण उनकी आलोचकीय पहुंच का परिचय देता है. किंतु प्रस्तुत विशेषांक को 'ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक' के शीर्षक में 'कथाकार' संज्ञा अखरती है. इन विजेताओं में ऐसे साहित्यकारों की संख्या भी उल्लेखनीय है जिनकी विशिष्ट कृतियां गद्य न होकर पद्य में हैं. अतः कथाकार के स्थान पर साहित्यकर शब्द अधिक न्याय संगत जान पड़ता है.

0 कैलाश नीहारिका, मैसूर

सार्थक पहचान के आईने

पिछले कई अंकों से संघर्षकामी चेतना को विकसित करने और संवेदनात्मक धरातल पर मानवता की पहचान कायम करने के विकास पथ पर **सारिका** निरंतर अग्रसर होती रही है. ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक: एक (372) और दो (373) इसी यात्रा मार्ग पर की सकारात्मक उपलब्धि हैं. अंक (372) में **'गणदेवता' (तारा शंकर बंद्योपाध्याय)**, **'कठपुतलियां' (विष्णु सखाराम खांडेकर)**, **'नाम याद नहीं' (गोपीनाथ महांति)** तथा **'दांपत्य का भ्रम' (शिवराम कारंत)** आदि कथा रचनाएं काफी मार्मिक और प्रभावकारी रहीं. **महादेवी वर्मा** का रेखाचित्र हृदयस्पर्शी है. लेकिन **पंतजी** तथा महादेवी वर्मा की कुछ महत्वपूर्ण कविताओं के बिना उनकी चर्चा अधूरी रह जाती है.

दूसरे अंक (373) में **'चिक्कवीर राजेंद्र' (म. वे. अय्यंगार)** उपन्यास अंश ने ऐतिहासिक घटनाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज की विद्रूपता का चित्रण करने में सफलता पायी है. कहानियों में **'बंद दरवाजे के सामने' (आशापूर्णा देवी)**; **'ऊंट' (एस. के. पोट्टेकाट)**, **'बसेरा' (अखिलन)** आदि अधिक प्रभावकारी रहीं. 'ऊंट' में जहां एक नौकर के शोषित दमघोंटू और उसके अंर्ततम की पीड़ा का सहज चित्रण मिलता है वही **'बंद दरवाजे के सामने'** में अपंग विश्वनाथ की उस असहनीय पीड़ा का मार्मिक चित्रण है जहां वह अपने ही बेटे, पोतों द्वारा उपेक्षित जिंदगी जीता हुआ राहगीरों से अपने लिए विष लाने का निवेदन करता रहता है और इसके लिए वह उन सबको पैसे अग्रिम दे देता है पर कोई लौटकर नहीं आता है. **'बसेरा'** में निम्न वर्ग के उन युवक और युवतियों की शोषणभरी जिंदगी का खाका खींचा गया है जहां ये बाढ़ में अपने तन को छुपाने की जगह नहीं पाते और अंत में युवती चणबकम अपरिचित युवक के सहारे श्मशान में बने शेड में रात काटती है जहां उसे अपनी बीमार मां से सदा के लिए अलग हो जाना पड़ता है और फिर वह उस अपरिचित की होकर रह जाती है. **दिनकरजी** की **'उर्वशी'** से कुछ और अच्छे अंश उद्धृत किये जा सकते थे. **अमृता प्रीतम** की डायरी के अंश दिलचस्प लगे जबकि **अज्ञेय** की बातचीत काफी कुछ उलझाऊ. **बिशन टंडन** का आलेख तथ्यपरक और संयत रहा. हिंदी भाषा के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के रचनाकारों को उनकी रचनाओं के साथ एक मंच पर लाने का यह दायित्व **सारिका** ने बखूबी निभाया है. सार्थक पहचान के आईने में **सारिका** की छवि विस्मरणीय है.

0 शोभानाथ शुक्ला, सुल्तानपुर

'होरी' हर जगह जूझ रहा है

सारिका की ओर से पाठक-विज्ञों को नववर्ष पर दो-दो अनुपम अद्वितीय उपहार; प्रथम सारिका का विशिष्ट संग्रहणीय विस्तृत आकार अंक, तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकारों को एक साथ, एक मंच पर पढ़ने का सुअवसर, जिसकी हमें अरसे से तलाश थी. धन्यवाद, तहे दिल से.

ज्ञानपीठ पुरस्कार सही मानों में भारतीय साहित्यकार के लिये उच्च सम्मान का प्रतीक है, उनकी रचनाधर्मिता को पूर्ण गौरव प्रदान करता है.

इस पुरस्कार की आधार-नींव में कितनी—किसने आहुति दी—कितना क्या व्यय किया, ऐसे समर्पित व्यक्तित्व के बारे में संपूर्ण विस्तृत जानकारी मिली, साथ ही कैसे मिलता है ज्ञानपीठ पुरस्कार, यह भी जाना.

दोनों अंकों की कहानियां पढ़कर लगा कि खोया हुआ अपना पुराना साहित्य फिर मिल गया. पढ़ते-पढ़ते कई बार लगा कि साहित्यकार चाहे तमिल में लिखता हो या कन्नड-उड़िया-गुजराती अथवा हिंदी में, पर सब की विषय-वस्तु की आत्मा एक है, भारतीय माटी की वही एक सुगंध सब कहानियों के मर्म में दिखी.

पात्रों को जीते हुए लगा कि हमारा वही चिर-परिचित 'होरी' अपने संघर्ष मूल्य के साथ तमिल-कन्नड़-उड़िया-गुजराती की कहानियों में जूझ रहा है. हां एक कमी खटकी, अगर प्रत्येक रचना के साथ उसका रचना काल भी दर्शाया होता तो सोने में सुहागा होता.

0 उमा शर्मा, बुलंदशहर

पंख लग गये हैं. . .?

ज्ञानपीठ पुरस्कार अंक निकालकर **सारिका** ने अपनी अब तक की विवाहित छवि को धूमिल कर साहित्य जगत में जो स्थान बनाया है, ध्यातव्य है. मुख पृष्ठ से लेकर अंत तक सारिका जिस रूप में आयी है, सजावट से लेकर सामग्री तक—**सारिका** परिवार को जितनी बधाई दी जाये कम है. वैसे पिछले कई अंकों से सामग्री के स्तर पर **सारिका** ने अपनी मानक पहचान बनायी है. लेकिन इन अंकों से तो ऐसा लगता है जैसे **सारिका** को पंख लग गये हों. इन दो अंकों ने ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हिंदी के ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं के रचनाकारों को उनकी रचनाओं के साथ एक मंच पर लाकर पाठकों एवं साहित्य के प्रेमियों के लिए, जो प्रयास किया है, निःसंदेह गर्व की बात है. वैसे यह एक कठिन काम था फिर भी रचनाओं के चयन या उनके संक्षिप्त रूपांतर में कुछ खामियां रह गयी हैं. प्रथम अंक में **'गणदेवता' (ताराशंकर बंद्योपाध्याय)** उपन्यास के संक्षिप्त रूपांतर में लगता है **धीरेंद्र अस्थाना** ने कुछ जल्दबाजी कर दी है, जिससे कथा में काफी कुछ उलझाव पैदा हो गया है, जबकि **'नाम याद नहीं' (गोपीनाथ महांति)** उड़िया कहानी का अनुवाद **राजेंद्रप्रसाद मिश्र** तथा **'दांपत्य का भ्रम' (शिवराम कारंत)** के उपन्यास अंश का अनुवाद **बी. आर. नारायण** ने काफी सटीक किया है.

0 मधु श्रीवास्तव, सुलतान पुर (उ.प्र.)

भारतीय साहित्य के दस्तावेजी अंक

सारिका के रजत जयंती वर्ष के प्रथम दो अंकों को ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता अंकों के रूप में हिंदी पाठकों को अर्पित करके **सारिका** ने स्वयं भी गौरवान्वित हुए है. अन्यथा विविध भारतीय भाषाओं के मूर्धन्य साहित्यकारों की रचना-प्रक्रिया एवं उनके सृजन-चिंतन का आस्वाद एक साथ कहां संभव हो पाता! इन अंकों को निकालने की प्रेरणा जिससे भी प्राप्त हुई हो, आपके साथ वह भी बधाई का पात्र है.

0 कमलेशभट्ट 'कमल', बरेली

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचनाकार

हमने सारिका के रजत जयंती वर्ष में प्रवेश करते ही घोषणा की थी कि यह संपूर्ण वर्ष (1985) सारिका विशिष्ट रूप से मनायेगी. इस 'विशिष्ट रूप' से हमारा जो अभिप्राय था, वह अब आप सबके सामने स्पष्ट हो चुका होगा. हमारा अभिप्राय विशिष्ट सामग्रीवाले अंकों से था. हमने पूरे वर्ष के लिए कुछ थीमें चुनीं और उन्हीं के आधार पर अंकों की योजना बनायी. यह अंक उसी योजना की सातवीं कड़ी है.

आज दुनिया जिंदगी के अनिश्चित दौर से गुजर रही है. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद महाविनाश से मुक्ति के रूप में हमने कुछ राहत की सांस ली थी, वह सांस आज मात्र 40 वर्ष बाद ही फिर से उखड़ने लगी है. महाविनाश का आतंक और असुरक्षा की भावना लोगों के मन में घर करती जा रही है. इसका प्रमाण जगह-जगह होनेवाले आंदोलन हैं. चारों ओर युद्ध के खतरे महसूस किये जा रहे हैं. परमाणु परीक्षणों तथा अन्य किस्म के विनाशी परीक्षणों ने प्रकृति का संतुलन बिगाड़ दिया है, वातावरण दूषित कर दिया है और मौसम बदल दिये हैं. विश्व के चौधरी देशों को अपनी चौधराहट की सुरक्षा अस्त्र विकास में ही नजर आती है. इस कारण से भी हमने महाविनाश की कहानियों का आयोजन किया.

इस अंक के आयोजन के समय हमारे सामने और बहुत से कारण थे. विचार प्रस्फुरण का मुख्य आधार भोपाल गैस कांड है. इस औद्योगिक विनाश लीला ने हजारों लोगों की जानें ले ली. हजारों को अपाहिज कर दिया और हजारों को बेघरबार तथा बेरोजगार बना दिया. इसी कांड ने हमारा ध्यान इस अंक की योजना पर केंद्रित किया. हमें लगा कि आज किसी एक पागल या सिरफिरे आदमी का इशारा या किसी एक उंगली की छोटी-सी गलत हरकत करोड़ों लोगों को मौत की अंधेरी और खौफनाक खाइयों में धकेल सकती है.

पिछले अंक में हमने महाविनाश की कहानियों की घोषणा करते समय लिखा था कि 'बमबारी से लेकर आग, बाढ़, सूखा, अकाल, युद्ध, दुर्घटना, तानाशाही और बदले की भावना आदि के तहत कभी कुदरत अपना कमाल दिखाती है तो कभी आदमी अपना जमाल. इस जलवे और जमाल के जाल में छुपे कहर के सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं की विविध जानकारी देने के लिए अगला अंक प्रस्तुत किया जा रहा है.' इसी घोषणा के अनुसार हमने इस अंक में महाविनाश के विविध कारणों, पहलुओं और आयामों तथा परिणामों की पड़ताल की कोशिश की है.

हमने बाढ़, सूखा और अकाल की विभीषिकाओं को तो जिया है, लेकिन हम महाविनाश की अन्य स्थितियों से दो-चार नहीं हो पाये. यही कारण है कि हमारे यहां ऐसे साहित्य की बहुत कमी है. महाविनाश की सच्ची कहानियां जापान, रूस, जर्मनी, पोलैंड, फ्रांस, ब्रितानिया, इटली, इथोपिया और इराक-ईरान आदि से सुनी जा सकती हैं. हीरोशिमा और नागासाकी सदियों तक इस कहानी को सुनाते रहेंगे! लेकिन क्या इन कहानियों से भविष्य के विनाश रुक सकेंगे. यह सही है कि इन कहानियों से हम विनाश की यादें ताजा कर सकते हैं और बचाव के तरीके ढूंढ सकते हैं, वहीं यह भी सही है कि आदमी से ज्यादा खतरनाक प्राणी इस विश्व में कोई दूसरा नहीं है. वह स्थितियों को समझता भी है और पैदा भी करता है.

प्रकृति की विनाशलीला संस्कृतियों और सोच को प्रभावित भले ही करे या उन्हें बदल भले ही दे, लेकिन आज मनुष्य इस स्थिति में पहुंच गया है कि पलक झपकते ही सारी संस्कृतियों, जातियों-प्रजातियों को नष्ट कर सकता है. समाज में कुछ ऐसे छिपे हुए हाथ होते हैं जो अपने स्वार्थ के लिए विनाश की स्थितियां पैदा करते हैं. जमाखोर, जीवनोपयोगी वस्तुओं में मिलावट करनेवाले, दवा की शीशियों में जहर भरनेवाले, विनाश के साधनों द्वारा मुनाफा कमानेवाले हाथ इसी श्रेणी में आते हैं. इसका अंदाज युद्ध के समय और उसके बाद की स्थितियों से बखूबी लगाया जा सकता है. द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जहां एक ओर पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था चौपट हुई वहीं कुछ आयुध फैक्ट्रियों की अर्थव्यवस्था बहुत मजबूत हो गयी और बहुत-सी नयी-नयी आयुध फैक्ट्रियां खुल गयीं. बारूद के मुकाबले पैसा छोटा हो गया. जमाखोरों और मिलावट करनेवालों ने विनाश के नये दरवाजे खोल दिये. महाविनाश की बात करते समय इन छिपे हुए हाथों के महत्त्व को भी नकारा नहीं जा सकता.

आवाजों में शामिल अपनी आवाज

यही कुछ कारण हैं जिन्हें हमने इस अंक के माध्यम से उजागर करने, समझने और परखने की कोशिश की है. हम यह कतई नहीं कह सकते कि हमारा यह अंक विनाश की भावी संभावनाओं को समाप्त करेगा या कम करेगा. हम मात्र उन संभावनाओं के विरुद्ध उठनेवाली आवाजों में अपनी आवाज शामिल कर रहे हैं.

कं. मा. द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाविनाश : युद्ध

उंगलियों से लटके हुए सलीब

बाला दूबे

हालांकि भारतीय परंपराएं इस बात को नकारती हैं फिर भी यह बात अब पूरी दुनिया ने मान ली है कि युद्ध में सब कुछ जायज होता है! एक कुतर्क, तर्क बनकर हमारा मुंह चिढ़ा रहा है, क्योंकि अगर ऐसा है तो फिर आखिर नाजायज क्या है? कई तानाशाहों ने 'असंभव' शब्द डिक्शनरी से निकाल दिया था. इस सूरत में क्या 'नाजायज' के साथ भी यही सलूक करना होगा? युद्ध में हम क्या खोते हैं और क्या पाते हैं, इसके बहुत से जवाब देती हुई अन्य रचनाएं पढ़ने से पहले पढ़िए यह आलेख कि किस प्रकार जिस सलीब पर यहूदियों ने निर्दोष ईसा को लटकाया था, उसी सलीब पर आस्था रखनेवाले एक पुरुष ने लाखों यहूदियों को जीवन दान दे दिया! . . .

दर्द बढ़ता ही जा रहा था. तभी उसने अपने पेट को पकड़कर चिल्लाना शुरू किया, "फीलिक्स कर्स्टन को बुलाओ, जल्दी!" उसे ऐसा महसूस हो रहा था मानो कोई छुरियों की मथनी से उसके पेट को मथ रहा हो. गहरे काले धुएं का बादल उसकी चेतना के ऊपर छाने लगा था. वह शायद बेहोश होने जा रहा था—नाजी जर्मनी की विकट पार्टी एस. एस. का रीशफ्यूरर हैनरीक हिमलर, जो हिटलर का दाहिना हाथ था. ना जाने क्यों वह आर्य जाति का इतना प्रभावशाली हिमायती बन गया था कि और जातियों को वह घृणा से देखने लगा था. और यहूदियों के लिए तो वह महाकाल बन गया था. देखने में वह साधारण-सा भोला-भाला आदमी लगता पर उसकी आंखों में नृशंसता का समुद्र समाया हुआ था. हिटलर के मिलिटरी असिस्टेंट जनरल फेडरिक

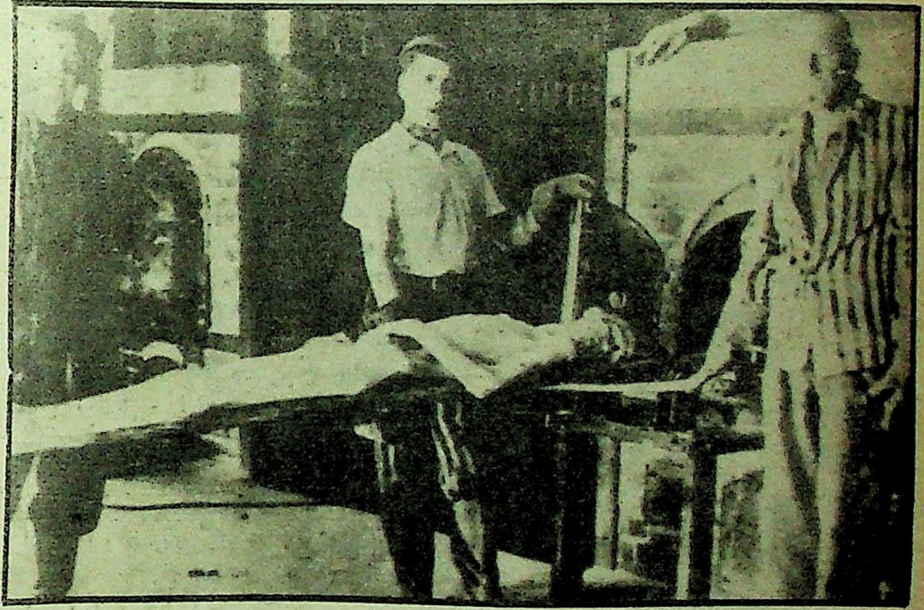

बायें से—हेनरीक हिमलर, हिटलर का बायां हाथ हेड्रिच : हंगरी के पुलिस अधिकारी से मुकाबला करते हुए.

हॉसबैक ने उसे देखकर कहा था, "यह हिटलर के भूत का साया है—ठंडा, अभिलाषी और बेरहम." प्रसिद्ध जर्मन युद्ध शास्त्री और टैंक-युद्ध के प्रवीण योद्धा जनरल गुडेरियन ने कहा था, "ऐसा लगता है कि यह आदमी किसी अन्य ग्रह से उतरकर आया हो."

हिमलर दर्द से तड़प रहा था कि उसका प्रिय मालिश-विशेषज्ञ फीलिक्स कर्स्टन आ पहुंचा. बड़ी ही दयनीय दृष्टि से देखा था उसने कर्स्टन की तरफ. और फिर कर्स्टन ने अपनी उंगलियों का कमाल दिखाना शुरू किया. जैसे आटा गूंथते हैं, ठीक वैसे ही उसने हिमलर के पेट को गूंथना शुरू किया था. और जैसे उसकी उंगलियों में सलीब से उतरकर मसीहा उतर आया हो—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमलर अब चैन पाकर सोने लगा था.

इसी तरह से दिन गुजर रहे थे. जब भी हिमलर के पेट में दर्द का ज्वार-भाटा उठता तो वह अपने मसीहा फेलिक्स कर्स्टन की शरण में आ जाता. यह सब सुनकर ही उस यहूदी बूढ़े ने कर्स्टन का दरवाजा खटखटाया था.

नाजियों का तांडव नृत्य यूरोप में शुरू हो चुका था और जैसे वीरभद्र ने यक्ष के यज्ञ में आये लोगों का नाश किया था वैसे ही यहूदियों का नामोनिशान मिटाने की योजना यथार्थ की जा रही थी. यहूदी का अर्थ यहूदी ही था—भले ही वह पोलैंड का यहूदी हो, रूस का यहूदी हो, फिनलैंड का यहूदी हो या जर्मन यहूदी—कहीं का भी हो पर हो यहूदी. 28 अक्तूबर, 1938 को 17,000 पोलिश यहूदियों को रेल के वैगन में ठूंसकर ले जाया गया और फिर मशीनगन से भून डाला गया. और जब द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ने पर नाजी सेना रूस की धरती को रौंदती बढ़ी थी तब भी पहला नजला रूसी यहूदियों पर ही गिरा. रूसी यहूदियों के लिए एक विभाग बनाया गया—ईनसैटज्युपन. पहले ही झटके में इस विभाग ने 249,420 फिर 45,467 यहूदी; 95,000 यहूदी और 92,000 यहूदियों को चार किस्तों में मार डाला. सन् 1941 के अंत तक तो 500,000 यहूदियों को समाप्त कर दिया गया. इस वीभत्स हत्याकांड को करनेवाले पात्र कमांडो लीडर नीबी और वार्नर तो अर्द्धविक्षिप्त से हो गये थे. नीबी के ड्राइवर कोहन ने तो सामूहिक हत्याएं देख-देखकर एक दिन गोली मारकर आत्म-हत्या कर डाली. वॉन डैम बैंक-जैलीविस्की को रात में डरावने स्वप्न आते और उसका मानसिक संतुलन इतना बिगड़ा कि उसे अस्पताल में भरती कराया गया. और तभी हिमलर ने नीबी से सलाह-मशविरा किया था. यह तय पाया गया कि यहूदियों को गोलियों से नहीं उड़ाया जाये बल्कि गैस की कोठरियों में मारा जाये.

रूस के साढ़े बीस लाख यहूदियों में से नौ लाख को मार डाला गया. कर्नल पॉल-ब्लोवल ने स्वयं अपनी आंखों से देखा कि 'कमांडो 1005 ने कब्रों के गढ़ों को खुदवाकर उनमें पेट्रोल और तेल से डुबोये कपड़े डाले और फिर मरे-अधमरे यहूदियों को स्वाहा कर दिया गया. उनकी हड्डियों के ढांचों को एक खास मशीन में डालकर पीसकर बुरादा बना डाला.'

और फिर मौत की कोठरियों का आविष्कार हुआ. यह कोठरी गुसलखाना जैसी लगतीं जिनमें 16 × 16 × 6 फीट के तीन कमरे सटे हुए होते. इनमें यहूदियों को नंगा करके ठूंसा जाता और फिर डीजल इंजन का उगला हुआ विषाक्त धुआं पाइप द्वारा छोड़ा जाता. रौरव नर्क से भी कहीं बढ़कर था यह नाजियों द्वारा बनाया हुआ नर्क, जहां घोर यातना सहकर वे अभागे दम तोड़ते थे. आविष्कार की सफलता से प्रेरित होकर ही इन मौत के कारखानों की कतार बन गयी—बैलजक कैंप जहां 15,000 यहूदियों को प्रति दिन खत्म किया जाता, सोबीबोर कैंप 20,000 जानें लेने वाला स्थान, ट्रब्लिका कैंप 25,000 हत्याएं करने में समर्थ और लुबलिन कांनसैंट्रेशन कैंप. इन मृत्यु-केंद्रों में सब से बड़ा कैंप बना औरा-विच कैंप जहां डीजल के मोनो डाई आक्साइड धुएं से भी बढ़कर एक और घातक तरीके का आविष्कार किया गया—पैस्ट कंट्रोल के कीड़े मारने का एक घातक विष. यह केमिकल कीड़ों की बजाय यहूदियों पर आजमाया गया और सचमुच वे कीड़ों की भांति तड़प-तड़पकर मरने लगे. कीड़ों के मारने के विष में एक और भी संशोधन किया गया और फिर 'प्रूसिक ऐसिड' का प्रयोग किया जाने लगा जिसका पहला तजुरबा बैलजेक कैंप के अभागों पर हुआ.

मौत के कारखाने दिन-रात अपना कारोबार कर रहे थे. आंकड़ों के अनुसार कल्मौफ कैंप में 152,000, बैलजक में 600,000, सोबीबोर में 250,000, ट्रेब्लिका में 700,000, मैडेनेक में 200,000 और औशविच में 1,00,000 यहूदियों को मौत के घाट उतारा गया था.

सोबीबोर कैंप के कसाई गोमरिस्की ने कहा था, "रास्ते में जो यहूदी बीमार पड़ जाते, उनकी खोपड़ी लोहे के डंडों से चूर-चूर कर दी जाती... बच्चों को बैरिक की दीवार पर दे मारते जिससे उनके सिर फूट की तरह खिल जाते."

औशविच कैंप के कैसनर ने कहा, "कैंप के आंगन में करीब 70 औरतों की लाशें पड़ी थीं. स्तन कटे हुए थे और रानों का मांस गायब था. आंगन में खून और मांस की कीचड़ हो रही थी जिसमें टखने धंस जाते थे."

यहूदियों की कतार रोज मृत्यु का आलिंगन करने किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी चल पड़ती. चेहरों पर उदासी की घटा, आंखों में सूखे हुए आंसू, भयातुर मौन से गूंगे जैसे उनकी आत्मा चीख-चीखकर पुकार रही हो—

'गुनहगारों में हैं शामिल गुनाहों से नहीं वाकिफ
सजा को जानते हैं हम खुदा जाने खता क्या है'!

और तभी कुछ जर्मन अधिकारियों ने दबी-सी आवाज उठायी, "यहूदियों के खून के धब्बे जर्मनी के दामन से छुटाये नहीं छूटेंगे... यह एक जघन्य अपराध है, मानवता के मुंह पर कालिख पोतना है." इस आवाज का असर हुआ. कुछ दिनों तक तहकीकात का नाटक हुआ, कुछ जाने-माने कसाइयों को सजाएं भी हुईं. अब यहूदियों को बेगार में पकड़ा जाने लगा. पर यह नाटक ज्यादा दिन नहीं चल पाया. कुछ ही समय बाद फिर से हत्या का तांडव नृत्य शुरू हो गया.

हिमलर का एक और चेला आइकमैन भी संहार-मंच पर आ गया. आइकमैन की शनि-दृष्टि बेलजियम और फ्रांस के यहूदियों पर पड़ी. पर तब तक जर्मनी के मिलिटरी अफसरों को नृशंस हत्याकांड का पता लग चुका था और उन्होंने इस 'बुजदिली' में शरीक होने से कतराना शुरू कर दिया. 15,000 यहूदियों की जीवन डोर कटते-कटते बच गयी. उधर ग्रीस में 55,000 यहूदियों को निगलने का

नादिरशाही

नादिरशाह के 'कत्लेआम' का हुक्म सुनते ही सुबह आठ बजे से तीन बजे दोपहर तक एक लाख बीस हजार दिल्ली निवासियों को मौत के घाट उतार दिया गया था.

विश्व-युद्ध में

द्वितीय विश्वयुद्ध में 24,338 भारतीय मारे गये, 64,354 घायल हुए, 11,754 लापता हो गये और 79,489 युद्धबंदी बने.

जापान की क्षति

द्वितीय विश्वयुद्ध में 260,000 जापानी मारे गये, 412,000 घायल हुए, 9,200,000 बेघर हुए और 2,210,000 मकान ढह गये या जलकर भस्म हो गये. जापान के 206 नगरों में से 44 नगरों का नामोनिशान ही मिट गया.

नारकीय बम

हाइड्रोजन बम—जिसे विश्व की प्रथम श्रेणी के अणु विशेषज्ञ कारनेल विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर हंस बीथे ने 'नारकीय बम' कहा है, उसकी डरावनी क्षमता इस प्रकार है. यह बम 20,000 टन टी. एन. टी. की क्षमता रखता है और यूरेनियम या प्लूटोनियम के अणु बम से 50 गुणा नाशकारी है और हजार गुणा भयंकर है. एक हाइड्रोजन बम 30 अणु बम के बराबर होता है और 1200 वर्ग मील को अग्नि से जला सकता है. 100 मील के घेरे को केवल धमाके से नष्ट कर सकता है और 30,000 वर्ग मील तक विनाश के बीज बो सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयास किया गया. बैलजियम के 52,000 यहूदियों में से 25,000 मौत का ग्रास बने, बाकी को नागरिक क्रांतिकारियों ने भगा दिया. अधिकृत फ्रांस के मिलिटरी गवर्नर जनरल कार्ल हैनरिक वॉन स्टल्पगानल ने इस कायर प्रयास को दबाया और यहूदियों को बचाया. इसके अतिरिक्त दक्षिणी फ्रांस में इटली के सेना अधिकारियों ने यहूदियों पर अत्याचार के खिलाफ आदेश दे डाले. परिणामस्वरूप आइकमैन ने जर्मनी के मित्र इटली के विरुद्ध विदेशी विभाग से अपील भी की. पर इटली के अधिकारियों ने एक नहीं सुनी. इटली के इन्हीं अधिकारियों की कृपा से 300,000 यहूदियों को नया जीवन मिला. और तभी 15 जुलाई 1942 को हिटलर ने आदेश दिये, 'फिनलैंड के यहूदियों को पकड़ लिया जाये!' हिमलर की बांछें खिल गयीं.

इस बात को अत्यंत गोपनीय रखा गया था. भाग्य से तभी हिमलर के पेट में भयंकर दर्द शुरू हुआ और उसने अपने मालिशिए फोलिक्स कर्स्टन को बुलवाया. कर्स्टन को कुछ भनक पड़ गयी थी कि कुछ न कुछ दाल में काला है. तड़पते हुए हिमलर से उसने तब सौदेबाजी की थी—'पहले बतलाओ कि क्या कुछ करने जा रहे हो?' एक बार तो हिमलर ने उसे आंखें भी दिखलायीं पर भयंकर उदर पीड़ा ने उसे घुटने टेकने को मजबूर कर ही दिया. हांफता-कराहता हुआ फिर हिमलर बोला, "फ्यूहरर अडोल्फ हिटलर ने आदेश दिये हैं कि पोलैंड का एक भी यहूदी बचने न पाये."

रहस्य जान लेने के बाद ही कर्स्टन की जादुई उंगलियों ने उसके दर्द को शांत किया था. वहां से उठकर फीलिक्स कर्स्टन सीधा फिनलैंड के डेलीगेशन के मुखिया के पास गया जो बर्लिन आया हुआ था. डेलीगेशन को सतर्क करके ही 29 जुलाई को कर्स्टन अपने आका हिमलर के साथ फिनलैंड पहुंचा था. एक शाम को चुपचाप निकला था कर्स्टन—फिनलैंड के विदेशमंत्री से विटिंग नगर में मिलने. कर्स्टन ने ही उसे टालमटोल का मंत्र सुझाया था—"इसका निर्णय फिनलैंड की पार्लियामेंट ही ले सकती है."

और यह निर्णय टलता रहा दिसंबर तक. तब तक लाखों यहूदी फिनलैंड से सुरक्षित स्थान पर निकाल दिये गये थे. कर्स्टन ने मुस्कराकर अपने गले में लटके सोने के छोटे-से सलीब को चूम लिया.

जिस सलीब पर इन्हीं यहूदियों के पूर्वजों ने निर्दोष महात्मा ईसा को लटकाया था उसी सलीब में आस्था रखनेवाले कर्स्टन ने लाखों यहूदियों को जीवन दान दिया. □

महाविनाश से बचने के लिए

■ बर्ट्रेंड रसल

यह कुछ चौंकाऊ और निराशा भरी बात है कि पूरे पश्चिमी जगत में नाभिकीय-युद्ध की रोकथाम के लिए चलनेवाले आंदोलनों को वामपंथी या इसी तरह के किसी दूसरे वाद से प्रभावित मान लिया जाता है. नाभिकीय-युद्ध के इस विरोध को इस तरह से न लेकर, महामारी के विरुद्ध आरोग्यकारी उपाय समझा जाना चाहिए. नाभिकीय-युद्ध का असर तो संपूर्ण मानव-जाति पर पड़ेगा. इसीलिए इस संदर्भ में समूची मानव जाति के हित भी एक से हैं. बड़े पैमाने पर 'उद्जन बम-युद्ध' से होनेवाले विनाश को रोकने के इच्छुक लोग न किसी राष्ट्र से जुड़े हैं, न किसी वर्ग, वाद या महाद्वीप के हित से. नाभिकीय अस्त्रों से उत्पन्न नयी समस्याओं पर यदि सही तरीके से विचार करना है तो हमें एकदम अलग नजरिया अपनाना होगा. यह एक वैसा ही खतरा है जैसा कि किसी नयी किस्म की महामारी से पैदा हो जाता है.

मान लीजिए कि बर्लिन के कुत्तों में अचानक पागलपन की बीमारी फैल जाये! ऐसी हालत में क्या पूर्व और पश्चिम बर्लिन के लोग मिलकर इससे नहीं निबटेंगे? मैं यह नहीं समझता कि कोई ऐसे मौके पर यह कहेगा कि 'साहब, हम कुत्तों को सिर्फ इसलिए खुला छोड़ देंगे कि वे हमें कम और हमारे दुश्मनों को अधिक काटेंगे!'. . .और यदि उन्हें खुला नहीं छोड़ना है तो उनके मुंह पर तुरंत खुल सकनेवाली जाली ही लगा दी जाये. . . ताकि जिस वक्त दुश्मन अपने कुत्तों को खोले, उसे जवाब दिया जा सके. क्या पूर्व और पश्चिम बर्लिन के जिम्मेदार अधिकारी यह बयान देंगे कि 'दूसरी ओर के लोगों पर इत्मीनान नहीं किया जा सकता कि वे अपने पागल कुत्तों को जान से मार देंगे. इसलिए हमें भी प्रतिरोध स्वरूप पागल कुत्तों को बनाये रखना चाहिए.' यह निहायत बेहूदी और अजीब किस्म की बात है कि गुटबाजी की राजनीति में पागल कुत्तों को निर्णायक शक्ति मान लिया जाये.

एक और उदाहरण देखें. चौदहवीं शताब्दी में पूरे पूर्वी गोलार्ध में कालाजार फैला. पश्चिमी यूरोप में करीब-करीब आधी जनसंख्या कम हो गयी. इतना ही विनाश पूर्वी यूरोप और एशिया में भी हुआ. तब महामारी से लड़ने की जरूरी जानकारी थी ही नहीं. आज अगर ऐसा हो जाता है तो सभी सभ्य राष्ट्रों में यह समझ एक साथ आ जायेगी कि इस समस्या से एक जुट होकर लड़ा जाये. तब यह कोई नहीं कहेगा कि इस महामारी से हमारे दुश्मन का ज्यादा नुकसान होगा! . . . और अगर कोई कहेगा भी तो उसे 'देवता' नहीं, 'राक्षस' ही कहा जायेगा!

जितने भयावह परिणामों की आशंका नाभिकीय-युद्ध से है उतनी न तो किसी कालाजार से है न किसी दूसरी महामारी से. इसलिए मुझे भरोसा है कि जिस दृष्टिकोण की मैं पैरवी कर रहा हूं, वह दोनों पक्षों के लोग समान रूप से स्वीकार करेंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगला उपन्यास

विधवाओं की बस्ती में

प्रमथनाथ बिशी

आखिर एक हिरन मिला. पर झाड़ियों की आड़ में है इसलिए पूरा दीख तो नहीं रहा. फिर भी देखने से जैसा लग रहा है. . .हिरन ही है. बच्चा नहीं, खासा बड़ा हिरन. सो रहा है या आराम कर रहा है? उसे याद आ गया, जरती ने फटकार बतायी थी, "हरिन अब मिले भी तो कैसे? नजर जंगल की ओर थोड़े ही है, नजर तो अब सिर्फ टोले की छोरियों की तरफ है. . ." आज मुंहजली को दिखाकर ही रहूंगा कि मेरी नजर में हिरन भी आता है.

वह घुटने गाड़कर बैठ गया और जब तीर की नोक और हिरन का नजर आता हिस्सा ठीक आमने-सामने हो गया तो देवों को सुमरकर सांस रोके उसने तीर छोड़ दिया. झाड़ी के पत्तों को कंपाता, कुछ पतिंगों को उड़ाता हुआ तीर झाड़ी में धंस गया. व्याध के अनुभव ने बताया, तीर लगा—एक बारगी आर-पार हो गया. निशाना चूकता तो अब तक जंतु जान लेकर भागता नजर आता. और तीर इस पार-उस पार नहीं हो गया होता तो वह चीखता. एक ही तीर में खात्मा हो गया! शाबाश रे हरा, व्याध का बेटा जरा. वह धनुष को सिर से ऊपर घुमाते हुए मारे खुशी के झाड़ी में घुस पड़ा. और घुसा कि जीता-जागता वह खुशी से बेहाल आदमी बिल्कुल पत्थर की मूरत बन गया! हाय राम! मारे अचरज के उसके दोनों होंठ खुले के खुले रह गये. आंखें बड़ी-बड़ी हो गयीं, हाथ ढीले पड़ गये, धनुष छूटकर गिर पड़ा, शरीर कांपने लगा, कपाल पर पसीने की बूंदें आ गयीं, दम अटक-सा गया. यह क्या! कौन है यह?. . . कौन?. . . हिरन. . .? नहीं आदमी है!. . .और वह भाग चला, जैसे तीर खाकर हिरन भाग रहा हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यादवों की अठारह अक्षौहिणी सेना लेकर महाभारत के समर में शामिल हुए थे कृष्ण . . .अपने कौशल से पांडवों को विजय दिलवाकर कुरुक्षेत्र के मैदान से एक विजेता के रूप में द्वारका लौटे तो निपट अकेले थे. एक सैनिक भी साथ न था . . . और द्वारका में कोई था तो बस समर में मारे गये उन तमाम योद्धाओं की पत्नियां जो भरी जवानी में अनचाहा वैधव्य भोग रही थीं. पतियों की अनुपस्थिति में उन पर क्या बीतने लगी . . . और जब श्रीकृष्ण का वध एक व्याध ने कर दिया . . . उनके रनिवास में मौजूद हजारों रानियों का जीवन किस राह पर चल पड़ा . . .? द्वारका के प्रशासन को क्या फिर कोई एक सूत्र में बांधे रख सका या वहां भी वही सब हुआ जो कुरुक्षेत्र में अठारह दिन तक होता रहा था . . .? महाभारत के युद्ध के बाद पैदा हुए ऐसे ही तमाम सवालों का जवाब तलाशते बंगला के बहुचर्चित उपन्यास 'पूर्णावतार' का संक्षिप्त सार—

कुटिया के बाहर बैठी जरती कटारी से लकड़ी चीर रही थी. दौड़कर वह जरती के पास जा खड़ा हुआ. जरती उठी. हाथ पकड़कर उसे झकझोरती हुई बोली, "क्या हुआ?"

"मैंने एक आदमी को मार डाला है री! वह आदमी झाड़ी में छिपा हुआ था. दूर से देखकर मैंने हिरन समझा और ऐसा तीर मारा कि आर-पार हो गया."

"अच्छा! चलो तो सही, देखूं मैं. . ."

थोड़ी ही देर में दोनों घटनास्थल पर पहुंच गये. तीर बिंधा शरीर वैसा ही पड़ा था. उस शरीर को देखते ही जरती फुक्का फाड़कर रो पड़ी, "हाय रे जरा, यह क्या किया है! सर्वनाश! यह किसे मारा तूने!"

और वह मृत के पैरों में लोटकर माटी पर सिर कूटने लगी.

कई दिन पहले जरा ने सुना था कि बलराम योग से देह रखेंगे. यकीन नहीं आया. फिर सुना, अब वासुदेव भी देह छोड़ेंगे. विश्वास नहीं हुआ. लेकिन यह कौन जानता था कि इस तरह से विश्वास करना होगा.

अब उसका सारा गुस्सा जरती पर जा पड़ा. वही मुंहजली इन सारे अनर्थों की जड़ है. उसी की करतूत है यह. . . 'भगवान! हूं! भगवान था तो द्वारका में क्यों आया? आदमी के हाथों क्यों मरा? जो अपने-आप को नहीं बचा सकता, वह क्या तो दुनिया के लोगों की रक्षा करता है. वसुदेव का बेटा अगर सचमुच ही भगवान है, तो भगवान मर गया! भगवान मर गया तो डर फिर किसका? पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म सब उस कमबख्त भगवान के साथ गया. अब डर काहे का?' यह कहकर उसने चराचर को गर्व के साथ अपने दोनों अंगूठे दिखा दिये.

जरती का शरीर वासुदेव के पांवों पर लुढ़का पड़ा था. जरा नगर की तरफ भागा. कुछ दूर जाकर उसने पलटकर देखा कि सारी चिड़ियां वासुदेव की देह पर छत्ते की तरह मंडरा रही हैं और पशुओं ने चक्राकार में देह को घेर रखा है. जरा जोर-जोर से बोला, "कमबख्तो, आज भगवान का मांस खाकर अपने जीवन को धन्य कर लो, अगले जनम में देवता होकर पैदा होगे."

"मदिरा दरवाजा खोल! . . .खोल दरवाजा!"

मदिरा ने दरवाजा खोल दिया. जरा को सामने खड़ा देखकर पूछा, "इतनी रात गये किस इरादे से. . .?"

"जानती है मदिरा, मैंने आदमी को मारा है."

"फिजूल की बात छोड़ो. मैं तुम्हें वर्षों से जानती हूं. इस बीच तुमने बीस-पच्चीस आदमी मारे हैं."

"मगर यह आदमी और ही है."

मदिरा ने दिलासा देते हुए कहा, "अरे पागल, एक ठो आदमी को मारकर तुम्हें इतना पछतावा हो रहा है और राजदरबार के इतने लोग जो आपस में कट-मर गये उसका क्या हुआ?"

"सब मर गये?"

"हां. बूढ़े राजा और बलराम, वासुदेव को छोड़कर सब. सुना दो दिन पहले योग से बलराम ने भी देह रख दी."

"और वासुदेव?"

"वह अभी हैं. वह तो देवताओं के देवता हैं. स्वयं भगवान."

"उनके मरने से क्या होगा?"

"भूकंप होने लगेगा. तारे टूटेंगे. समुद्र बढ़कर चराचर को लील लेगा. आदमी, आदमी नहीं रह जायेगा. खूंखार जानवर बनकर यह उसे खा जायेगा."

"तो फिर तू यकीन क्यों नहीं कर रही कि भूकंप शुरू हो गया है, तारे टूट रहे हैं. . ."

"क्या. . .तो. . .?"

मदिरा अपने कान पर विश्वास नहीं कर सकी. कान लगाकर ध्यान से सुना और जोर से चीखकर जरा को खड़ा कर दिया. बोली, "जान बचाना चाहते हो तो फौरन भाग निकलो जंगल की ओर."

"और तुम?"

"मुझे कोई खतरा नहीं."

"औरत होकर तुम्हें कोई खौफ नहीं और मैं मर्द, मुझे है?"

"अभी जो डर है, वह मर्दों को ही है. भाग पड़ो. सुनो वह 'हर-हर' की आवाज नजदीक आ रही है. अब कल आना."

जरा चलने को तैयार हुआ तो मदिरा बोली, "सुनो, अपना कपड़ा उतारकर यह घाघरा-चोली पहन लो."

हैरान जरा को जबरदस्ती नारी का पहरावा पहनाकर अंदर से बाहर ढकेलती हुई मदिरा बोली, "जंगल की ओर भाग जाओ."

जोरों का कोलाहल करीब आ पहुंचा.

जरा जंगल की ओर ओझल हो गया तो मदिरा अपनी छत पर गयी. वहां जो दृश्य देखा, उसके लिए वह नया तो बिलकुल नहीं था, कई रातों से वह इसे देखती आयी है.

पहली बार रात को जिस उग्र और अस्वाभाविक कोलाहल से उसकी नींद खुल गयी थी तो पहले तो वह समझ नहीं सकी कि माजरा क्या है. उसके बाद छत पर गयी. देखा, ठीक वही नजारा. जैसा आज. उस उमड़ते हुए जनप्रवाह को देखकर उसे पिघले धातु का प्रवाह ही लगा था. वह भीड़ जब और करीब आयी तो उसने देखा, सैकड़ों सुंदरियों का समूह था वह. बहुत से हाथों में जलती हुई मशालें. उन मशालों की रोशनी में हरेक के चेहरे, आंखें, मुंह, अंग-प्रत्यंग फटी चोली की फांक से पुष्ट स्तन, फटे घाघरे की आड़ से सुडौल जंघाएं आदि बहुत कुछ साफ नजर आ रहा था. एक ही साथ वे सब कोई जैसे नारे लगा रही थीं. वे जब निकट आ गयीं तो उनके चेहरों के भाव से मदिरा चकित रह गयी. उसके लिए यह अजानी रहने की बात नहीं. काम-व्यवसायिनी सुंदरी के नाते इस भाव से उसका घनिष्ठ परिचय था. लेकिन ये सब हैं कौन? कहां जा रही हैं? किनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोज में? कुछ भी समझ नहीं सकी. अचानक बड़े मर्मांतक भाव से सारा कुछ साफ हो गया. उसके दरवाजे पर धक्का पड़ा. वह झट नीचे उतरी. खिड़की पर से पूछा, "क्या चाहिए तुम्हें?"

एक साथ बहुत से गलों की आवाज आयी, "तुमसे कोई वास्ता नहीं. तेरे घर में कौन मर्द है, वह मर्द चाहिए."

उस रात उसके यहां काम का अतिथि था एक परदेसी वणिक. बेचारा थका-मांदा सो रहा था.

"मेरे यहां आज कोई नहीं है." मदिरा ने कहा.

"है या नहीं, हम देखेंगी. तू दरवाजा खोल."

"दरवाजा नहीं खोलूंगी. यहां से जाओ."

जोरों के धक्के पड़े. दरवाजा टूट गया. एक साथ ही चालीस-पचास युवतियां अंदर पिल पड़ीं और एक साथ उल्लास से चीखीं, "वह रहा!"

वणिक की नींद टूट गयी. वह कुछ समझे, इससे पहले ही बीस-पचीस युवतियां उस पर टूट पड़ीं. सभी उसे पहले दखल करना चाह रही थीं. सब उसके अंग-प्रत्यंग पर कब्जा जमाने में जुट गयी थीं.

"जान गयी, जान गयी, मर गया."

कौन तो सुनती है! पहली ही खींचातानी में उसके वस्त्रों की चिंदियां उड़ गयीं. उसके बदन पर कोई भी अपना दावा छोड़ने को तैयार नहीं थी.

"तुमने मेरे कब्जे के हाथ पर हाथ क्यों लगाया?"

"अरी भाड़ में जा छोरी, हाथ जैसे तेरा ही है."

सूरतें आपस में मार-काट मचाकर चल बसीं. उनकी पत्नियां क्या करें! गुरुआनीजी, तुम होतीं तो ऐसे में क्या करतीं?'

वह जोश में कहती ही चली गयी—'पहले ऐसा था कि रोज पति के साथ सोये बिना नींद ही नहीं आती थी. पर यह जो कमबख्त कुरुक्षेत्र की लड़ाई शुरू हुई तब से मैं पतिसंग से वंचित हूं, उनींदी हूं. उसके बाद जब पति लौट आये तो मानो हाथ में आकाश का चांद मिल गया. लेकिन किसे पता था कि चांद ऐसा टेढ़ा है. ऐसा मरा हुआ, ऐसा जड़ पिंड. बस, वीरता की ही कहानी. भीष्म, भीम, अर्जुन, कर्ण, अश्वत्थामा, अभिमन्यु! और जब वीरता का किस्सा खत्म हुआ तो एक दिन पागलपन शुरू हो गया. शुरू हो गयी मारकाट. सब समाप्त हो गया. यदुवंश ही ध्वंस हो गया. राजपुरी में ऐसा एक भी पुरुष नहीं रहा कि जिसे हथिया लूं. जो बच रहे हैं सो लाचार बूढ़े हैं या निरे शिशु. जरा देखो, मेरी सारी देह तपे बालू भरी हांडी हो रही है.'—इतना कहकर उसने मेरा हाथ खींचकर अपनी छाती पर रखा. सच ही—अंदर अजीब लहक—गोया लहू टगबग उबल रहा हो."

पिछली रात की बात. घाघरा, चोली और दुपट्टा ओढ़े जरा जंगल की ओर दौड़ रहा था. जंगलों में घूमने का वह आदी था. अब पीछे मुड़कर देखा, कोई हजार आदमियों का जनपिंड पीछे दौड़ता-सा आ रहा था. सामने ही एक सेमल का पेड़ था, वह उस पर झटपट चढ़ गया और घने पत्तों की आड़ में छिप गया.

"किस देश को जाओगे! सारे में यही चल रहा है. सुना नहीं कि कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणी पुरुष मारे गये. उनकी स्त्रियां क्या कर रही हैं? जो हाल यदुवंश का है, वही हाल कुरुवंश का. कांची, काशी, मद्र, पांचाल, अंग, वंग, प्राग्ज्योतिष—सब जगह एक ही स्थिति है. सारा देश ही अकाल वैधव्य की कामना के ताप से रेती की तरह जल रहा है. जाओ तो सही, जलकर तुम्हारे पांव लावा हो जायेंगे . . . !"

जो उस वणिक की देह के पास तक नहीं पहुंच पायी थीं, वे सब आने वाली स्त्रियों पर हमला बोल रही थीं. ऐसे में दो दलों में लड़ाई ठन गयी. कमरे की सतह गिरी हुई नारी देहों से पट गयी. बदन पर वस्त्र और आभूषण नहीं रहे. बाल बिखरे, गाल, होंठ, स्तन, जांघ में नाखूनों और दांतों के खून भरे घाव. वणिक पीड़न और दंशन से अधमरा-सा हो गया. फिर भी कोई कब्जा किये उसके अंग को छोड़ने को तैयार नहीं. आखिर कई बार हिचकियां लेकर वणिक ने कब आखिरी सांस ली, किसी को खाक खबर नहीं. तब तक भी काम से उन्मादिनी स्त्रियां उसके शरीर की खींचातानी कर रही थीं. कामार्त नारी, क्षुधार्त द्वीपी.

घंटे भर बाद उन्होंने समझा कि यह मर गया है. तब उस देह के बहते लहू से अपने आंचल, चोली, अंग-प्रत्यंग को रंगकर वे सब जैसे अचानक आयी थीं, वैसे ही दूसरे घरों को चली गयीं.

दूसरे दिन सवेरे उस वारांगना टोले के घर-घर से दले-मले-से, पिंड-से बने पुरुष शरीर निकलने लगे. उन वारांगनाओं ने मिलकर श्मशान में उन सबका दाह संस्कार किया. तीसरे पहर वारांगनाओं की बैठक हुई.

चिंता का विषय वही था. ऐसा क्यों हो रहा है? अगर यही होता रहा तो हमारा क्या होगा?

सबसे बड़ी वारांगना ने बताया, "यह जानने के लिए मैं तीन दिन पहले राजपुरी गयी थी. यादवों की एक बहू से मैंने कहा, 'बहूरानी, यह जो रवैया चल रहा है, यह क्या अच्छा है. आपको तो बड़े घर की बेटी ही जानती हूं मैं, और यहां तो राजकुल की बहू हो . . .'

वह कुछ कहती कि तब तक कई बहुएं आ जुटीं. उनमें से एक बोली, 'अजी ओ गुरुआनीजी, जरा खोज-पूछकर के देखो, द्वारका से प्राग्ज्योतिष तक यही हाल है. अठारह दिन में अठारह अक्षौहिणी क्षत्रिय मारे गये. उनकी पत्नियां क्या करेंगी? इधर तीन दिन में यदुवंश की सारी मर्द

पेड़ के ऊपर से जरा ने देखा, वह स्त्रियों का झुंड लकड़हारों की बस्ती की तरफ जा रहा है. पेड़ के नीचे एक भेड़िया दुबका बैठा था. एक स्त्री दल से अलग भेड़िये की दौड़ के दायरे में थी. जरा ने सोचा, चिल्लाकर उस स्त्री को सतर्क कर दे. लेकिन चिल्लाने से पहले ही एक अनसोची घटना घट गयी. भेड़िया और वह स्त्री ठीक आमने-सामने हो गये. भेड़िया शिकार पर टूटने की खुशी में अपनी पूंछ पटकने लगा. उसकी आंखों में, चेहरे में कैसा हिंसक उल्लास! मशाल की जोत में सब साफ झलक रहा था.

एकाएक भेड़िये ने पूंछ समेट ली और बेतहाशा जंगल की ओर भाग खड़ा हुआ. जरा अवाक् रह गया देखकर. काम-पीड़ित स्त्री के चेहरे पर भूख की भीषण छाप देखकर श्वापद भी डर सकते हैं, यह जरा कैसे समझे! तभी लकड़हारों की बस्ती से स्त्रियों का हो-हल्ला शुरू हुआ. फिर चीख-पुकार, फिर आग का भभका. . . .

जरा गाछ पर उसी तरह देर तक बैठा रहा. थोड़ी देर बाद आगे बढ़ा ही था कि हंसी की आवाज सुन चौंक उठा!

"कौन हो तुम. . .? अट्टहास. . .?"

"हां, तुम जिस वक्त मदिरा के घर से निकले, मैं तभी से तुम्हारे पीछे-पीछे हूं."

"आखिर क्यों?"

"तुम्हारी बड़ी जरूरत है."

"मैं तो यह देश छोड़ कर जा रहा हूं."

"किस देश को जाओगे? सारे में यही चल रहा है. सुना नहीं कि कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणी पुरुष मारे गये. उनकी स्त्रियां क्या कर रहीं हैं? जो हाल यदुवंश का है, वही हाल कुरुवंश का. कांची, काशी, मद्र, पांचाल, अंग, वंग, प्राग्ज्योतिष, सब जगह एक ही स्थिति है. सारा देश ही अकाल वैधव्य की कामना के ताप से रेती की तरह जल रहा है जाओ तो सही, जलकर तुम्हारे पांव लावा हो जायेंगे."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खट्टास की बात से जरा को जरा भी दिलासा न हुई बल्कि उसका त्रास जैसे और भी बढ़ गया. वह एकाएक उछल पड़ा. "अरे भागो, भागो. सुन नहीं रहे हो, गरज हो रही है! डाकनियां पीछा कर रही हैं."

उसने दौड़ने की कोशिश की. लेकिन इससे पहले ही खट्टास ने उसका हाथ पकड़ लिया, "ठहरो-ठहरो, तुम्हारी सख्त जरूरत है."

"मेरी..... मैं मूरख व्याध का बेटा...."

"तुम व्याध के बेटे नहीं, राजकुमार हो!"

"किसका कुमार.....?"

"राजा का. वासुदेव, बलराम की तरह राजकुमार हो. ... तुम वसु की जारज संतान हो जरा...."

"वासुदेव मेरा भाई.... और मैंने उसका खून कर दिया!"

"तो इसमें हर्ज ही क्या हुआ? यदुवंश में यही तो हुआ है. भाई ने भाई को मारा, पिता ने पुत्र को, अपने सगों ने अपने सगे की हत्या की. लहू की धारा बहकर नीले समुद्र में जा मिली."

कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो जाने पर देश-भर में सन्नाटे का परदा खिंच गया था. जो लोग लड़ाई के जबड़े से बच गये थे, उन पर अब महामारी ने पंजा मारा. दुर्भिक्ष ने महामारी के रास्ते को साफ किया. कौन पहले और कौन पीछे, यह विचार बेमानी है. प्रजा में से जो लोग भूख और महामारी के चंगुल में बच गये थे, वे जानवरों के पेट में गये. ऐसी स्थिति में, महाशून्यता, महास्तब्धता और महाविषाद में पांडवगण निःसत्व थे. राज्य मिला-युधिष्ठिर गद्दी पर बैठे.

"यह सब क्या हो रहा है, खट्टास?"

"आज आधी रात को तुम्हारा राजतिलक कर दिया जायेगा."

"क्यों?"

"अरे बाबा, राजतिलक के बिना राजा कैसे होगा?"

"लेकिन मैं राजा बनना न चाहूं तो?"

"राजा बनाये बिना तुम्हारी जान कौन छोड़ रहा है?"

जरा चुप रह गया. वह जानता था खट्टास के चंगुल से बचना संभव नहीं. खट्टास से पहली मुलाकात के बाद वह भागकर राज दरबार में जा पहुंचा था अपने अपराध की सज़ा भुगतने. मृत्युदंड की सजा हुई थी. मगर ठीक फांसी के फंदे से लाखों लोगों की भीड़ में से खट्टास के आदमी उसे छुड़ा लाये थे.

जरा का अभिषेक होते न होते वारांगना मल्लिका भी उनके गिरोह में आ मिली और रानी बन गयी. मल्लिका के बगल से वारांगना टोले में प्रेमी को छीन लिया गया था और उसी का बदला लेने की ताक में वह वहां से निकल पड़ी थी.

"क्यों रे मघा, क्या खबर है?" खट्टास ने पूछा.

कल अर्जुन आ गये हैं. और कल सब को लेकर वह हस्तिना की ओर रवाना होंगे."

"बड़ी अच्छी खबर है. वे लोग मथुरा द्वार से निकलेंगे और उसी वक्त हमें सिंधु द्वार से घुसकर नगर पर कब्जा करना होगा. फिर वहां हमारा राज होगा. दल-बल के साथ तुम लोग ठीक जगह और ठीक समय पर तैयार रहना." खट्टास ने कहा.

मल्लिका झूले पर बैठी सब सुन रही थी. उसे राजत्व का सुख नहीं चाहिए था. वह तो यदुवंश की बेहया औरतों की दुर्गत चाहती है खासकर रत्ना और कामना नाम की दो बहुओं की. उन्हीं ने उसके बगल के आदमी को छीन लिया था.

वह झूले से उतर पड़ी. बोली, "सरदार, राजमहल की दो बहुओं को मैं दासी बनाकर रखना चाहती हूं."

"बहुत खूब, मगर महज दो को? दो सौ को क्यों नहीं? उन्हें पकड़ लाया जायेगा. तुम उनके नाम बता दो. और हां, अगर रानीगिरी करनी हो तो राजा पर नजर रखना."

मल्लिका बोली, "रानीगिरी के लोभ से न सही दासी बनाने के लोभ से इस बुद्धू को मैं नजरबंद रखूंगी."

खट्टास की सारी बनी-बनायी योजना ठप हो गयी. उनकी जान जो बच गयी, सो उसकी उपस्थित बुद्धि का नतीजा कहिए. मथुरा द्वार से अर्जुन के पीछे-पीछे जब यदुवंशी लोग निकल रहे थे तो खट्टास अपना दल-बल लिये समुद्रतट के दरवाजे पर इंतजार कर रहा था. सबसे उसने कहा, "इन लोगों को निकल जाने दो, उसके बाद नगर में दाखिल होकर दखल करने से ही काम चलेगा."

शाम तक सबके जा चुकने पर वे राजमहल में दाखिल हुए.

इतने में दौड़ते हुए कई अनुचर आये.

"गजब हो गया सरदार, समुद्र बढ़ता चला आ रहा है!"

प्राचीर के ऊपर चढ़कर समुद्र के रूप को देखकर खट्टास समझ गया कि आज अब खंड प्रलय होकर ही रहेगा.

सब लोग भागकर लाटू पहाड़ पर चढ़ गये.

दूसरे दिन सबने देखा, जहां तक नजर जाती है, पानी ही पानी. नगर का नामोनिशान तक नहीं.

मल्लिका बोली, "सरदार, यदुवंश के लोग एक ही रात में आखिर कितनी दूर जायेंगे. चलो, हम सब मिलकर कुछ लोगों को पकड़ लायें, वही लोग इन कचरों की सफाई करेंगे. बहुएं दासी का काम करेंगी. उनसे दासी और सेवादासी दोनों का काम चलेगा."

सरदार ने प्रधान अनुचरों को बुलाकर मल्लिका की बात बतायी. सबकी राय हो गयी—आगे बढ़कर हमला करेंगे. कुछ दास-दासी लायेंगे. सूनी नगरी पर राज नहीं किया जा सकता.

कई कोस का रास्ता छेंककर यदुवंश वाहिनी चली जा रही थी. खट्टास भी हजार-दो हजार आदमी लिये उस मूल वाहिनी से कुछ दूर-दूर चल रहा था.

कुरुक्षेत्र की लड़ाई के फलस्वरूप केंद्रीय शासन कमजोर नहीं, बिलकुल टूट पड़ा था, इसलिए सीमांत के जो राजा अब तक भय और भक्ति से इंद्रप्रस्थ को मानकर चलते थे, स्वतंत्र हो उठने की चेष्टा करने लगे. सीमांत से बाहर के राष्ट्र उत्तर कुरु, बाह्लीक, गांधार, मेरु-सुमेरु आदि देश आंखें गड़ाये हुए थे. उखड़ती हुई सांसों से राष्ट्र के शरीर के अंत की सूचना हो रही थी. केंद्रीय शासन का भय और उसी के साथ शक्ति भी जाती रही, रह गया सिर्फ ज्ञान. अब वह भी जाता रहा.

आभीरों का एक दल आकर अर्जुन का रास्ता रोककर खड़ा हो गया, भीष्म, द्रोण, कर्ण नहीं—मामूली गंवार लुटेरे. आभीरों का लोभ धनरत्न का था, वे लोग धनरत्न लेकर जानेवाले हाथियों को हांका ले गये. कोई-कोई हाथी डरकर पीठ का बोझ गिराकर अंधकार में भाग गये.

इधर मल्लिका के इशारे पर खट्टास के हुक्म से उसके लोगों ने यदुवंश की स्त्रियों पर हमला कर दिया. इस बीच वे लोग अंधेरे का लाभ उठाकर उनके समानांतर ही चल रहे थे.

खट्टास जितना ही अक्लमंद क्यों न हो, मल्लिका के कूट मनसूबे को नहीं समझ सका था. उसने सोचा था, राजमहल के लिए दासी जुटाने का मतलब है. उधर मल्लिका यह समझ रही थी कि दल के लोग एक बार राजमहल की खूबसूरत बहुओं को पा लेंगे तो फिर उसे छोड़ेंगे नहीं. उसने सोचा था, अच्छा ही होगा, दईमारी बहुओं को अच्छा सबक मिलेगा. सोचा, सो वे जो चाहें, मगर रत्ना और कामना उसे चाहिए ही. वे मिल जायें तो किस पर क्या बीता, इससे उसे क्या.

बहुओं के बचाव के लिए कोई नहीं आ पाया. क्योंकि जो लोग आ सकते थे, वे आभीरों के आक्रमण में ही जूझ रहे थे. खट्टास के दल ने यह नहीं सोचा था कि इतना अच्छा मौका मिलेगा. इसके सिवा और भी कुछ अप्रत्याशित घटना हुई. राजमहल की अधिकांश बहुएं भागी

—पृष्ठ 69 पर जारी...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेटों के विरुद्ध बेटा

भैरप्पा

दीये के प्रकाश में विदुर कुंती के मुख को ही देखता जा रहा था. कर्ण कुंती का प्रतिरूप है, यह जो चित्र अब उभर आया, वह पहले क्यों नहीं सूझा था? मुझे ही नहीं, दूसरों को भी क्यों नहीं, यह आश्चर्य और विषाद उसके अंतरंग में भर गया. मन अपने आपको यह समझा रहा था कि जिसकी कल्पना करना ही असंभव हो, वह सूझेगा कैसे? "मां होकर जात-संस्कार तो न कर सकी, शव संस्कार तो . . ." यह वाक्य कुंती ने बीच में ही रोक लिया. दुख उमड़ आया. अपने मन की पूरी बात उसने प्रकट नहीं की. उसे रोककर गंभीर हो गयी.

उस रात के शेष समय में विदुर भी सो नहीं सका. विषय का पता न लगने से घर के बाकी लोग आराम से सो रहे थे. कुंती और विदुर कमरे से बाहर मौन बैठे थे. नीचे नदी सांय-सांय करके बह रही थी. बीच बीच में उठकर विदुर दीये में तेल डालता जा रहा था.

प्रातः विदुर के रथ पर दोनों चल पड़े. कर्ण के गिरने के स्थान को जानने वाला संजय रथ चलाने लगा. सर्दी का सूर्य निकलने से पहले ही वे दो घड़ी यात्रा कर चुके थे. विदुर और संजय के लिए अत्यंत आश्चर्य की बात यह थी कि युद्धारंभ से मृत्यु तक कर्ण के बारे में उन दोनों ने अपने-अपने ढंग से धारणा बना रखी थी. भीष्म ने अपमान किया था, सोचकर ही क्या कर्ण ने दस दिन तक धनुष न छुआ था? और वह दूर जाकर एक कोने में बैठ गया था, यह प्रश्न विदुर को तंग किये जा रहा था. अंतिम युद्ध में कर्ण महाराज के निशाने गलत क्यों लग रहे थे? यह संजय को अब समझ में आया. कुंती के बेटे के सहारे कुंती के बेटों के विरुद्ध यह युद्ध आरंभ किया गया था. यह एक विडंबना थी, जो किसी की समझ में नहीं आ रही थी. अतः वे दोनों मूक हो गये थे. रास्ते भर जगह-जगह पर युद्ध में टूटे रथ, युद्ध से भागकर आये पेड़ों के नीचे कराहते साधारण सैनिक ही दिखायी दिये.

विदुर ने पूछा, "कुंती, इस रहस्य को तुम अकेली ने अपने पेट में कैसे छिपा रखा था?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया. रथ कच्ची सड़क पर चलने लगा था. अतः जोर से हिचकोले खाने लगा. कुंती को मिचली-सी होने लगी, "मुझे रथ पर बैठे साढ़े तेरह वर्ष हो गये न. इंद्रप्रस्थ से तुम्हारे घर आते समय बैठकर आयी थी." कहते हुए हिचकोले खाते रथ से एक ओर झुककर उसने उल्टी की. संजय ने घोड़ों की लगाम खींचकर रथ रोका. विदुर से पानी लेकर कुल्ला करने के बाद कुंती ने रथ चलाने के लिए कहा. विदुर ने जरा धीरे चलाने को कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण से अर्जुन ने पूछा, "अपने सगे-संबंधियों के विरुद्ध युद्ध करने से मुझे क्या मिलेगा?" इस प्रश्न का जवाब देने की कोशिश व्यास ने भगवद्गीता के माध्यम से महाभारत में की, मगर अर्जुन का सवाल है कि आज भी मुंह बायें खड़ा जवाब मांग रहा है. आज जबकि नियमबद्ध ढंग से आमने-सामने सिर्फ उजाले में दो-दो हाथ करनेवाली सेनाएं हर नियम और मर्यादा को ताक पर धरकर एटम बमों से लैस हो चुकी हैं तो लगता है कि अर्जुन के सवाल का जवाब अब कृष्ण नहीं, बल्कि दुनिया भर के लोग ही दे सकते हैं. प्रस्तुत है इसी सवाल के कुछ पहलुओं को उजागर करते कन्नड़ उपन्यास 'पर्व' का एक अंश कि युद्ध अंततः क्या हासिल पाता है...

"तेजी से चलाओ. कहीं गिद्ध और कौवे मुंह न नोच डालें." कुंती ने यह बात इतनी घबराहट से कही कि कहीं अनर्थ न हो जाये. "उसका कहना ही सच है. मल-मूत्र साफ करके, दूध पिलाकर, इनके लिए उससे पूछा—इनसे नहीं कहा—मां नहीं बनी, किंतु वह तो बेटा बन गया." वाक्य रचना ठीक न होने पर भी विदुर को उसका भाव समझ में आ गया, पर संजय के लिए वह पहेली बनकर रह गया. कुछ दूर जाने के बाद कुंती ने पूछा, "अर्जुन जैसा अचूक निशाना उसका नहीं था. अंतिम युद्ध में उसके निशाने कहीं के कहीं जाकर लग रहे थे. तुमने यही कहा न?"

"ऐसी बात है?" कहते विदुर ने संजय की ओर देखा.

"जी हां, मुझे भी आश्चर्य हुआ था. मैं यह सोच रहा था कि ऐसे महावीर कर्ण महाराज आज क्यों पहली बार कृषक के समान निशाना चूक रहे हैं. इसके अतिरिक्त युद्ध में प्रवेश करते समय उनके सारथी शल्य ने जानबूझकर उनसे अपमानजनक बातें कही थीं. रणयात्रा पर जाने वाले अपने दल में जैसा वीरोचित उत्साह पैदा करते हैं न, वैसे ही कर्ण महाराज जोर से दहाड़ने लगे. बीच में तीरों से भरा उनका रथ था. रथ के चारों ओर आज के युद्ध के लिए पिछली रात विश्राम लेकर खूब खा-पीकर जोश से भरा कर्ण-दल था.

"वह पिल्ला...अर्जुन कहां है? उसके दिखानेवाले को मैं अपने शरीर ~~पर पहने आभूषण पुरस्कार~~ रूप में दूंगा. यदि वह पर्याप्त न हो तो एक गांव ही पुरस्कार में दिला दूंगा. वह भी पर्याप्त न हो तो उस पर सौ दुधारू गौवें. तब भी पूरा न पड़े तो सोहलहवें वर्ष में पांव रखने वाली ऋतुमती चार सुंदरियां. सैनिकों, कम-से-कम वह दिशा दिखाओ, जिस तरफ अर्जुन है...?" रणयात्रा में जब रथी इस प्रकार घोषणा करे तो सारथी को जोर से उसके एक-एक वाक्य पूरा करने पर 'शाबाश-शाबाश' कहना चाहिए न? उस बंदर शल्य ने तो उत्साह भंग करने वाली उल्टी बात ही कही, "कर्ण, शेर को गुफा दिखाओ, कहकर कुत्ते के भौंकने के समान बेकार डींग मत मारो. कहां समस्त क्षत्रिय कुल में अजेय अर्जुन की धनुर्कला, कहां सूत के रूप में जन्म लेने वाले और रथ चलाने वाले कर्ण. कहां तुम्हारा कौशल, कहां अर्जुन का? शेर ही कुत्ते को भगाने आयेगा. चुप रहो." यह सुनकर कर्ण महाराज का उत्साह भंग हो गया. सूत जाति के प्रति ऐसी अपमानजनक बात कहने से हमारे दल के कुछ लोगों को गुस्सा आ गया. दो ने रथ पर चढ़कर शल्य की बांह ही मरोड़ दी. कर्ण महाराज ने ही उनको समझा-बुझाकर नीचे उतारा.

"शल्य माने हमारी माद्री का बड़ा भाई ही न?"

"हां वही, मांजों को छोड़कर दुर्योधन के जाल में फंसा है. अविवेकी कहीं का." विदुर ने स्पष्ट किया.

"उसको सारथी बनाना ही गलत हो गया." यह कहकर संजय आगे बोला, "युद्ध के समय भी उसने ठीक सहयोग नहीं दिया. उसने जल्दी-जल्दी सही तीर चुनकर नहीं दिये. शत्रु को व्यूह से बचाकर रथ नहीं मोड़ा. जिस स्थान से दबाव ज्यादा हो रहा हो, उस तरफ ठीक ढंग से बाण चलाने का सुझाव नहीं दिया. अंत में झगड़कर रथ से उतरकर चला गया. अर्जुन के सारथी कृष्ण के बारे में कहना ही क्या. अब शत्रु संकट में है, अभी मारो. लो यह बाण. उसके बाद एक-एक करके इनको चलाओ, कहकर निशाना दिखा-दिखाकर बाण चलवाता था."

"यह बात है? उसे मरवानेवाला कृष्ण था." यह मानो कुंती ने अपने-आपसे कहा.

रास्ते में मिले नाले पर रथ रोका गया. कुंती ने कुछ भी नहीं खाया. उसने बेटे का शव-संस्कार करने तक कुछ भी न खाने का हठ किया. विदुर ने भी कुछ न खाया. संजय ने रोटी और शहद खाकर पानी पिया. रथ आगे चला. दोपहर हो गयी. चारों ओर दुर्गंध फैलने लगी. संजय बोला, "हवा उस तरफ से बहने के कारण दुर्गंध आ रही है और हमें दूर जाना है. कम-से-कम तीन-चार घड़ी चाहिए."

कल कर्ण और अर्जुन के बीच हुए युद्ध का यही स्थल है. चारों ओर निर्जनता व्याप्त है. प्रत्येक दिन युद्ध का स्थान बदल दिया जाता है. उस दिन कहां युद्ध हो रहा था. संजय थोड़ी देर तक सोचता रहा. बाद में उसे उसकी पहचान हो गयी. शव ज्यादा सड़े नहीं थे. ऐसा लगता था कि कुत्ते और गीदड़ दूसरे स्थान छोड़कर वहां जम गये हैं. आकाश में ही नहीं, जमीन पर घूमने वाले गिद्धों की कुत्तों और गीदड़ों से मानो दोस्ती हो गयी हो, पर संजय को आश्चर्य में डालने वाली बात यह थी कि कई कुत्ते और गीदड़ वहां मरे पड़े थे. गिद्ध भी मरे पड़े थे. कुछ मर रहे थे. सड़े मनुष्य का मांस विष हो जाता है अथवा इतने दिन खा-खाकर अति होने से मर गये?

संजय जब निरंतर उस विषय पर सोच रहा था, विदुर ने भी वही प्रश्न उससे पूछा. रथ को जरा पीछे खड़ा करके तीनों आगे चले. आगे संजय, बीच में कुंती. कुंती की आंखें धूप में उस सारे मैदान में पड़े शवों का परीक्षण कर रही थीं. संजय ने तुरंत कारण पूछा, "ध्यान से कदम रखिए. विष लगे तीरों की नोंकें जमीन पर पड़ी रहती हैं. अगर पांव में घुस जायें तो हमें भी इन कुत्तों की ही मौत मरना पड़ेगा." कहकर उसने मुड़कर देखा. कुंती नंगे पांव थी. विदुर के पांवों में जूते थे.

चार कदम रखने के बाद एकदम रुककर उसने विदुर से कहा, "कल रात कहना भूल गया था. इंद्रप्रस्थ का निर्माण करते समय अर्जुन ने नागों का वध किया था न. उसमें जो बचकर निकल गये थे, वे अपने लोगों को उकसाकर अपनी ही एक टुकड़ी लेकर दुर्योधन की ओर से लड़ने के लिए आये थे. कल कर्ण महाराज के साथ महाराज ने उन्हीं लोगों को भेजा था. वे सदा अपने बाणों में विष लगाकर रखते हैं. केवल विषैले पत्ते ही नहीं, अपितु सर्प की गर्दन पकड़कर उससे विष निकालते हैं और उसमें अपने बाणों की नोंक डुबोकर सुखाकर रखते हैं. कल पांडवों की तरफ से बहुत से सैनिक इन बाणों के लगने से मरे. अर्जुन को भी लग सकता था. कर्ण महाराज ने कह दिया था कि मैं उसको देख लूंगा. आप लोग उसके दल की खबर लो. इसलिए उन्होंने अर्जुन पर तीर नहीं चलाये. अंत में उस सत्यानाशी शल्य के स्वार्थ से कर्ण अपने दल से दूर हो गये. इन विषैले बाणों के लगने से मरे शवों को देखिए. वे हरे हो गये हैं. उन्हें खानेवाले गिद्ध और कुत्ते भी मर गये हैं."

"अर्जुन को कहीं अचानक ऐसा बाण तो नहीं लगा न?" कुंती ने घबराकर पूछा. उसका आतंक संजय की समझ में आ गया.

"यदि छू जाता तो एक क्षण में वहीं ढेर हो जाता, परंतु कर्ण के मरने के बाद दोनों हाथ उठाकर 'हमारी पत्नी को घसीटकर अपमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने को उकसाने वाले कुत्ते मर गये' कहकर चीखा. अगर विष छू जाता तो ऐसे चीखने की शक्ति कहां से आती?"

वे ऐसे ही आगे बढ़े. जगह-जगह मक्खियों के झुंड मिनमिना रहे थे. डरकर भागे कुत्ते की आवाज सुनकर वहां खड़े और सात-आठ कुत्ते उनको देखकर वहां से भाग गये. गंजी लाल गर्दन और काले-काले बड़े-बड़े गिद्ध तो मस्ती से उनकी ओर देख रहे थे. कुंती को मिचली-सी आयी. वहीं उल्टी करने को बैठ गयी. सामने पड़े सड़ते शव को देख कर मिचली और बढ़ गयी, उल्टी न कर सकी. विदुर ने झुककर उसकी बांह पकड़ी. संजय चारों ओर देखने लगा. कल तो इसी मैदान में युद्ध हुआ था, पर अर्जुन किस ओर था? और कर्ण किस ओर था? उसकी टुकड़ी किस ओर गयी? नाग किस ओर गये? हां, नागों के शव पहचाने जा सकते हैं. वे पक्षियों के पंखों वाले किरीट पहनते हैं. अगर वे उस तरफ थे तो अर्जुन का दल इस तरफ रहा होगा. तो कर्ण का रथ? वह तो टूट गया था न? सारथी के न होने से घोड़े तीर लगने से पागल होकर भागने लगे थे. कम्बख्त ये गिद्ध भी दिशाभ्रम पैदा करते हैं. समस्त आकाश में भर गये हैं. कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है.

"संजय, इस स्थान पर कुंती खड़ी नहीं हो सकती. जल्दी वह स्थान दिखाओ अथवा वहां से चलो. इसको अपने रथ के पास ले चलो. बाद में हम और तुम आकर कर्ण का शव ढूंढ़कर रथ के पास ले चलेंगे. मुझमें तो उठाने की शक्ति नहीं है. तुम शरीर उठा लो तो मैं उसका हाथ या पैर पकड़ सकता हूं. अरे, पता ही नहीं चला. सूर्य उस तरफ काफी उतर चुका है. अतः वहीं पश्चिम दिशा होगी, पर कल मैंने दिशाओं की ओर ध्यान ही नहीं दिया था."

"चाचाजी, ऐसा लगता है कि मेरे और आपके जाकर ढूंढ़ने पर भी कर्ण महाराज के शव को पहचानना संभव नहीं होगा. इन हजारों आधे-सड़े तथा कुत्तों और गीदड़ों द्वारा नोचे शवों के बीच किसको पहचाना जा सकता है. गिद्ध तो सबसे पहले आंख को ही. . ."

"लंबे हाथ, चौड़ा मुख." कुंती ने उमड़ते दुख को रोककर कहा.

"मैंने नहीं देखा है क्या ? फिर भी. . . ."

कुंती एकदम खड़ी हो गयी. चारों ओर देखकर उसने पूछा, "कर्ण का रथ किस तरफ था. यह बता सकते हो?"

"वही सोच रहा हूं, पर पता ही नहीं चल रहा है."

वह तेजी से कदम रखती शवों को लांघती चक्कर काटकर उनके हाथ-पैर और मुंह देखने लगी. विदुर को यह डर हुआ कि उस दुर्गंध और शुद्ध वायु के अभाव में तेजी से चलने से शवों से टकराकर कहीं वह गिर न जाये. यह सोचकर वह उसके पीछे-पीछे भागा. संजय ने भी लंबे-लंबे डग भरने आरंभ किये. इस तरह से चलकर लगभग आधा भाग तय करने के बाद एक बार खड़ी होकर उसने चारों ओर देखा. बाद में टूटे रथों को ढूंढ़ने लगी. "कुंती तुम्हारे पाव में जूते नहीं." विदुर की कही यह बात शायद कुंती को सुनाई नहीं दी. किसी भी रथ के पास शव दिखायी न दिया. अंत में वह खंबे के समान खड़ी हो गयी.सूर्य डूब चुका था. धीरे-धीरे अंधेरा छाने लगा. सभी शवों का रंग एक जैसा दीखने लगा. सबके मुंह एक जैसे दीख रहे थे. वह एकदम फूट-फूटकर रोने लगी. विदुर को ध्यान आया कि कल आधी रात से कर्ण की मृत्यु का समाचार मिलने के बाद अब तक वह नहीं रोयी थी. उसने उसकी दायीं बांह पकड़ी. और संजय ने बायीं. कुंती खूब रोयी, उसके रुदन से छाती फटने लगी.

रथ में बैठने के बाद संजय रथ को दो घड़ी तक भगाता चला गया. काफी दूर जाने के बाद दुर्गंध जरा कम हुई. रथ को एक बरगद के पेड़ के पास खड़ा करने बाद वह बोला , "अंदाज से ही रथ यहां लाया हूं, पर मुझे मालूम नहीं कि हस्तिनापुर किस दिशा में है. प्रात : होने पर ही हम निकल सकते हैं. अंधेरे में किसी गड्ढे में भी गिर सकते हैं अथवा घोड़ों के पांव टूट सकते हैं."

विदुर के बहुत आग्रह करने पर कुंती ने जरा-सा सत्तू और शहद लिया. विदुर ने भी सत्तू खाया. अंधेरे में सूखी रोटी चबाते समय संजय के मन में विचार उठा. धीरे-धीरे वह विचार एक रूप लेने लगा. पानी उड़ेलकर उन दोनों को देकर स्वयं भी पीने के बाद उनसे पूछा, "जरा ध्यान से सुनने पर क्या ऐसा नहीं लग रहा कि काफी दूरी पर कुछ लोग बातें कर रहे हों?"

विदुर ने कान लगाकर सुना, पर उसे कुछ भी सुनायी नहीं दिया.

"चाचाजी, आप बूढ़े हो चुके हैं. मुझे सुनाई दे रहा है. आप और महारानी रथ में बैठे रहिए. मैं एक घोड़े पर चढ़कर जाता हूं और रात के युद्ध के बारे में समाचार एकत्रित करके आता हूं. यदि हमें समाचार पहुंचानेवाला ही मिल जाये तो विस्तार से समाचार मिल सकता है."

विदुर को भी कुतूहल हुआ. कुंती मौन थी. संजय ने पूछा, "महारानी, आपको डर लग रहा है?" उसने ना में अपना सफेद सिर हिलाया. संजय को अंधेरे में भी यह स्पष्ट दिखायी दिया. तब तक घोड़े चारा खा चुके थे. उनमें एक को वहीं छोड़कर दूसरे पर सवार होकर कमर की तलवार को ठीक कसकर संजय चल पड़ा. कुछ देर बाद यह भी पता नहीं चला कि वह किस दिशा में गया है.

उसके चले जाने के बाद अंधेरा और घना हो गया. चारों ओर मैदान था. हवा चाहे किसी भी दिशा से बहे, दुर्गंध का ही साम्राज्य था. आकाश में तारे धूल से ढक गये थे. अतः उनका प्रकाश मंद था. बीच-बीच में गिद्ध पंख फड़फड़ा रहे थे, जिससे पता चलता था कि वे पेड़ की चोटी पर बैठे हैं.

"कुंती, डर लग रहा है?"

"डर क्यों?"

"यह अंधेरा. चारों ओर पड़े असंख्य शव. पेड़ पर बैठे ये गिद्ध. इन सबसे?"

कुछ देर बाद कुंती ने एक लंबी सांस ली, "कल सारी रात सोई नहीं. आज सारे दिन की थकावट. रथ पर ही जरा लेट जा. मैं जागता रहूंगा." विदुर के यह कहने पर वह गुड़ीमुड़ी होकर लेट गयी. नींद भी जल्दी आ गयी. विदुर भी बैठे-बैठे ऊंघने लगा. अर्थहीन अस्पष्ट सपनों की लहरें उठने लगीं.

बीच में ही कुंती झट से उठ बैठी. विदुर ने सिर को जरा झटका दिया. वह बोली, "देखो, हमने जितने शव देखे, उन सबको एकत्रित करके लकड़ी डालकर जला दें तो शव संस्कार नहीं हुआ." यह संदेह नहीं रहेगा.

विदुर को लगा कि वह काम असाध्य है. हजारों शवों का ढेर लगाने को लोग हैं? उन सबको जलाने को पर्याप्त लकड़ी कहां से आयेगी? उभय पक्ष वाले युद्ध को अंतिम रूप देने में दिन-रात जुटे हैं. सैनिकों के अभाव के कारण भी वे परेशान हैं. दोनों पक्ष वाले इस बात की ओर ध्यान नहीं देंगे, यह बातें उसके दिमाग में स्पष्ट रूप ले रही थीं. तब तक कुंती सो गयी थी. उसकी सांस से यह पता लग रहा था. विदुर उसी बात को सोच रहा था. युद्ध में काम आये और सड़ रहे दोनों पक्षों के समस्त शवों के अग्नि-संस्कार की जिम्मेदारी विजित पक्ष की होती है, पर यह एक असाध्य काम है. हमने तो एक ही मैदान देखा है, पर संजय के कथनानुसार ऐसे सौ मैदान हैं. पुराने शवों की मांसमज्जा तो कभी की गल-सड़ गयी होगी, केवल हड्डियां ही बची होंगी. यह सोचते समय उसे भी झोंका आया. कुंती के पास ही वह भी रथ के एक तरफ कंबल लपेटकर गुड़ीमुड़ी हो गया.

काफी समय बीत जाने पर भी संजय नहीं आया. स्वयं लौटना चाहें तो पास जोड़ी का दूसरा घोड़ा भी नहीं था. जो घोड़ा था, वह भी पानी के लिए तड़प रहा था. विदुर को यह समझ में नहीं आया कि किस दिशा में जाने से पानी मिल सकता है. पीने के लिए जो पानी था, उसी में दोनों ने मुंह धोये. पीछे आकाश में चक्कर काटते गिद्धों को देखकर कुंती बोली, "कर्ण के रहने तक युद्ध के बारे में जो आतंक छाया था, वह अब नहीं है. इस बात से नहीं कि मेरे दूसरे बेटे कर्ण से मारे जायेंगे, बल्कि मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही बेटे मेरे और एक बेटे से युद्ध करेंगे, इस विचार से अब युद्ध के बारे में कोई रुचि नहीं रही."

"क्या इसका अभिप्राय यह है कि चाहे दुर्योधन जीते, चाहे धर्म, बात एक ही है."

"अब दुर्योधन का जीतना संभव ही नहीं है. मैं यह कह रही थी..."

वह आगे बोली नहीं. विदुर उसी को देख रहा था. बाद में बोला, "डरो मत. मैं योद्धा तो नहीं, परंतु समय पड़ने पर मैं गिद्ध, कुत्ते और गीदड़ों को भगा सकता हूं. अंधेरे का डर तो मानसिक होता है. एक तेलवाला मशाल या चैला लाना था. यह बात भूल ही गये."

"हिडिंब के वन में एक वर्ष रहने के बाद अंधेरे से डर तो कभी का चला गया. अब मृत्यु का डर भी नहीं रहा."

विदुर चुप हो गया. बीच-बीच में पेड़ से हवा के उतरने की-सी आवाज होती. चारों ओर सन्नाटा छाया था. वे दोनों रथ पर खूंटों के समान बैठे थे. नीचे जुए से बंधा घोड़ा भी सो रहा था. पांव पसारकर

पड़ा था. विदुर को लगा कि कोई बात करें तो अंधेरे का दबाव कम होता है, पर कुछ सूझा नहीं. काफी देर के बाद कुंती बोली, "घटोत्कच का पराक्रम और उसने जो खून बहाया था, उसके बारे में तुम्हीं ने कहा था न? ऐसा लगता है कि मैं पापी हूं."

"क्यों?"

"उस पर उसके जन्म के समय भीम को बड़ी ममता थी. उसे ऐसा ही छोड़ दिया जाये तो उसका उस राक्षस प्रदेश से और लगाव हो जायेगा और हम फिर से आर्य जीवन नहीं अपना सकेंगे. यह सोचकर मैं ही हठ करके उसे वहां से जबरन घसीट लायी. बच्चा भी कितना लंबा-चौड़ा था. मालूम है? गोद में लेने पर सांस चढ़ जाती थी. उसे पाला नहीं, पोसा नहीं. सिर्फ पैदा करके छोड़ आये. अब उसने पिता के दिये जीवन को पिता के लिए ही समर्पित कर दिया. पिता की दो-एक बूंद के बदले पूरा खून ही बहा दिया. बड़े होने के बाद मैं एक दिन भी उसका मुंह नहीं देख पायी." कहते-कहते उसका गला भर आया.

"कर्ण का भी वही हुआ. पैदा होते ही डरकर उसका दान कर दिया. मैं डरी नहीं थी. उन्होंने डराया था. पेट में नौ मास बढ़ने से उसने शायद मेरा थोड़ा-सा रक्त पाया होगा. उसने तो मुझसे कुछ भी नहीं मांगा. अब मेरे लिए घड़ों रक्त बहाकर अपने प्राण मुझे लौटा दिये. विदुर, मेरे मांगने पर उसने ऐसा किया. शर्म से सारा शरीर कांप रहा है." यह कहते उसका गला भर्राया नहीं. ध्वनि इतनी हल्की थी, मानो वह अपने-आप से कह रही हो और उसकी बात हवा में उड़ रही हो. फिर निःशब्दता. विदुर उसके सफेद बाल देखता चुपचाप बैठा था, "विचित्र बात यह है कि मेरे घटोत्कच का मेरे कर्ण ने ही अपने हाथ से वध किया."

पास आकर संजय बोला, "कर्ण की मृत्यु के बाद शल्य को सेनापति बनाया गया. कल के युद्ध में धर्म ने शल्य को मार डाला. सहदेव ने शकुनि का वध कर दिया. बाकी बचे सैनिकों और घोड़ों को शत्रुओं ने नहीं, कहना चाहिए कि पांडवों ने नष्ट कर दिया. दुर्योधन दिखाई नहीं दे रहा. यह किसी को मालूम नहीं कि कहीं मर-मरा न गया हो. और लोगों को उसके शव की पहचान नहीं हो पायी होगी अथवा कहीं छिप गया होगा. पांडव उसे रात से चारों ओर खोजते फिर रहे हैं. उनके पास भी अब केवल दो सौ योद्धा, तीस-चालीस घोड़े और दस-पंद्रह रथ बचे हैं."

विदुर ने कहा, "तो समझो युद्ध समाप्त हो गया."

युयुत्सु के मुख पर विषाद झलक रहा था. उसने पूछा, "चाचाजी, आप कहां गये थे."

"तुम यहां कैसे?"

"कल शल्य के मर जाने के बाद दुर्योधन की सारी सेना नष्ट हो गयी. हमारे पास समाचार आया कि प्रहरियों को भी युद्ध में लगा दिया है. यह ध्यान में आने से मेरा मन बड़ा दुखी हुआ कि दुर्योधन की ओर से लड़ने आये अलग-अलग देशों के सैनिक हमारे सैनिक शिविरों में घुसकर युद्ध की थकान और क्रोध उतारने के लिए हमारे राजघराने की स्त्रियों पर कहीं अत्याचार न करें." तब धर्म ने कहा.

"युयुत्सु, मेरा ध्यान उस तरफ गया ही नहीं था. तुम्हीं जाओ. तुमसे तो उन स्त्रियों का परिचय है ही. सबको सकुशल हस्तिनापुर पहुंचाना तुम्हारा उत्तरदायित्व है." मैं भागा-भागा आया, पर शिविरों में एक भी रथ नहीं था. घोड़े नहीं थे. चूल्हा सुलगे दो दिन हो गये थे. कल शाम को इन्हें लेकर पैदल ही निकल पड़ा. रात को इन्हें एक पेड़ के नीचे सुलाकर मैं धनुष-बाण लिये खड़ा रहा."

विदुर रथ से उतरकर दुर्योधन की पत्नी के सामने जा खड़ा हुआ. वह यह नहीं चाहती थी कि उसकी स्थिति को कोई देख ले. अतः उसने मुंह झुका लिया. उसके पीछे कौन? हां, अब पहचान में आ गया. दुश्शला है. उसके सिर पर पल्लू नहीं है. भाभी के पीछे दुबककर खड़ी है. वह कौन है? दुर्योधन की बहू. वह? उस तरफ? उसे भी पहचान न सका. वह तो दुःशासन की बहू है. यह सोचते कुछ भी समझ में न आने में वह खड़ा हो गया.

सोने का किरीट, केयूर, कंठहार, पांव में कड़े पहने महारानी ने पूछा, "मैंने सुना था कि विदुर किसी की भी तरफ से युद्ध नहीं करेंगे, पर आप इस तरफ से आ रहे हैं. शत्रु पक्ष में थे?"

"नहीं, युद्धरंग देखने के लिए कल गया था."

"रथ पर कौन बैठी हैं? आपकी पत्नी तो रथ पर बैठने लायक नहीं हैं. यह तो विधवा लगती हैं."

"ये?" विदुर को बताने का मन न हुआ, पर न बताये तो भी महारानी पूछेंगी ही. यह सोचकर बोला.

"ये हमारे घर में ही हैं, गत साढ़े तेरह वर्ष से. आप लोगों से मिलने का कोई प्रसंग नहीं आया."

भानुमती को अजीब-सा लगा: राजसूय के समय खांडवप्रस्थ में देखने की याद हो आयी. तब तो राजमाता के समान थीं. अब तो विरक्त दीखती हैं. सफेद मोटी साड़ी पहने हैं. दुर्योधन की पत्नी ने सिर झुका लिया. कुंती बोली, "रथ में सात-आठ लोग बैठ सकते हैं. जो थक गयी हैं, वे आ जायें." उनमें किसी ने सिर नहीं उठाया. उत्तर नहीं दिया.

"भानुमती आ जाओ. दुश्शाला, उसका क्या नाम है, वह जो भानुमती के पास खड़ी है? आ जाओ, आओ न." कुंती ने फिर से कहा.

दुश्शला आत्म-गौरव को बचाती हुई दबी जुबान से बोली, "पैदल ही ठीक है." विदुर समझ गया कि वे नहीं आयेंगी. जितना ज्यादा समय खड़े रहें, उतनी ही घुटन बढ़ती जायेगी, सोचकर, 'अच्छा नगर में मिलेंगे' कहकर रथ पर बैठकर घोड़ों को चाबुक दिखा दिया. □

प्रस्तुति : नीलम सिंह

'पर्व' नाम से प्रकाशित इस उपन्यास के प्रकाशक हैं : शब्दकार, 2203 गली [illegible]तान, तुर्कमान गेट, दिल्ली–110006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठ बजकर पंद्रह मिनट से आठ बजकर सोलह मिनट! . . . और सिर्फ एक मिनट में साठ हजार घर जलकर राख हो गये! एक लाख आदमी झुलस गये या उनके चीथड़े उड़ गये, लेकिन जो मौत का ग्रास बनने से बच गये थे . . . क्या हुआ उनका, कैसे घुट-घुट कर जिये उधार की जिंदगी जीते हुए लोग. पढ़िए, हीरोशिमा के महाविनाश पर केंद्रित अमरीकी लेखिका के विश्व-प्रसिद्ध उपन्यास का सार संक्षेप कि किस प्रकार महाविनाश के सताये हुए लोगों से उनके अपने ही देशवासियों ने किनारा कर लिया . . .

हीरोशिमा के फूल

एदिता मोरिस

उसकी आंखें केवल ओहात्सु पर टिकी हैं. ओहात्सु बाग का छोटा-सा टुकड़ा पार करने के लिए अपने उड़ते हुए लंबे किमोनो में दौड़ी चली जा रही है और वह अपनी जिराफ-सी गर्दन फैलाये उसे ताके जा रहा है.

"आप छोटी बहन की बात का बुरा न मानें! उसे. . ." मेरी बात पूरी होने से पहले ही वह पूछ बैठता है, "अरे, वह सुंदर लड़की आपकी बहन है. . .! बहुत सुंदर है." फिर एकाएक उसके गाल लाल हो उठते हैं. मैं हंस पड़ती हूं.

एकाएक मेरे विचारों का सिलसिला टूट गया. अच्छा, छोड़ो. . . दरअसल, यह अमरीकी युवक अपना रिजर्व कमरा छोड़कर हमारे यहां चले आने का फैसला कर लेता है. मैंने हल्के से उसे बता जो दिया है कि हमारे पास एक कमरा खाली है. अब येन की आमदनी के खयाल से मेरा मन हल्का हो रहा है. वह सीटल की एक जहाज कंपनी की तरफ से जापान के व्यावसायिक दौरे पर आया है. .

वह अपने बारे में बहुत कुछ बताने के बाद कहता है, "सच, यहां आपके पास रहने में बहुत मजा आयेगा." तभी मेरा हाथ बाल ठीक करने के लिए ऊपर क्या उठता है, दिल धक्क रह जाता है. . . कि कहीं किमोनो की बांह ऊपर उठ जाने से उसने मेरे दाग तो नहीं देख लिये! तभी खुशकिस्मती से कोई मुझे पुकार बैठता है और मैं भाग लेती हूं.

गली के निचले हिस्से से वृद्धा नाकानोसान मुझे आवाज देती है और मैं उसी क्षण उन्हें अमरीकन युवक की नजर से देखने लगती हूं. . . कितनी गंदली और घुन खाई है यह! हीरोशिमा के विस्फोट से जिंदा बचे सभी लोगों की तरह.

"देखिए, मैं अपना सूटकेस 'न्यू हीरोशिमा होटल' में डाल आया था. . . तो मैं भागकर ले आऊं! पांच बजे तक लौट आऊंगा." वह मुझे आगाह करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता है. उधर नाकानोसान चिल्ला रही है, "युका! युका!"

सड़ी मछली के एक ढेर से ठोकर खाकर मैं जैसे-तैसे पानी में गिरते-गिरते बचती हूं और नाकोनासान और बूढ़ी तामुरासान के पास पहुंचती हूं. हम तीनों खाली मैदान की तरफ चल देती हैं. अमरीकन युवक हैरान होकर हमारी ओर देख रहा है. उसे मैंने बताया ही था कि अपने इन दोनों पड़ोसियों को मैं इस वक्त शौच के लिए खुले मैदान में ले जाती हूं.

'छोटी बहन, यह अमरीकन युवक कुछ दिन हमारे यहां ठहरेगा." मैंने ओहात्सु को सूचना दी तो वह भीतर ही भीतर भड़क कर रह गयी. फिर मैंने उसे समझाया कि वह विदेशी के साथ अच्छा व्यवहार करे. रात के खाने के बाद बाग में ले जाकर उसका दिल भी बहलाये, पर वह है कि चट से कह देती है, "दीदी, मुझे यह हैरोसान अच्छे नहीं लगते."

". . .पर तुम्हें इस आदमी से अच्छा सलूक करना है, समझीं!" ओहात्सु को समझा रही हूं मैं और वह शायद समझ भी गयी है कि यहां उसकी सुंदरता को चारे की तरह इस्तेमाल किये जाने की बात हो रही है. अब काफी देर हो चली है. ओहात्सु मेहमान के साथ बैठी हुई है. हर बार जब वह उसका प्याला भरती है तो अपनी कमर झुका फुसफुसाती है, "तुम इतनी दुबली हो कि पता नहीं सांस कैसे लेती हो. . .इस सफेद किमोनो में तुम बिल्कुल एक छोटी-सी रूह नजर आती हो." युवक ओहात्सु से कह रहा है. उसे क्या मालूम कि वह किसी भी ऐसी चीज से बेहद खौफ खाती है, जो मौत के साथ जुड़ी हो.

बातों-बातों में ओहात्सु उठकर भीतर भाग आती है और अंधेरे में खड़ी मुझसे आ टकराती है, "मुझसे कुछ मत कहो बड़ी बहन!" वह रुआंसी हो आयी है. जाहिर है, अब मुझे उस परदेसी युवक का खयाल रखना होगा. वह आशंकित है कि ओहात्सु कहीं उससे नाराज तो नहीं हो गयी. . . मैं उसे समझा देती हूं.

मैं अपने पति के लिए लंच-बॉक्स लेकर आयी हूं. जब तक फ्यूमियो अपने बॉस से बातचीत पूरी नहीं कर लेता, मुझे इसी तरह बैठे रहना है. फ्यूमियो के साथ मैंने उतना वक्त नहीं बिताया, जितना उसकी प्रतीक्षा में. युद्ध और उसके बाद की नस्लों में लाखों-करोड़ों युवा जापानी पत्नियों की यही नियति है.

बैठे-बैठे मैं सोच रही हूं कि फ्यूमियो जब फौज में लिया गया था तब. . .फ्यूमियो के बड़े-बड़े फौजी बूट देखकर मुझे कितना अजीब लगता था. तब वह कहता था, "फौज बूट को पैरों में फिट नहीं करती, पैरों को ही बूट में फिट होना चाहिए". . .और हम हंसते रहते थे देर तक. फ्यूमियो का जर्द चेहरा देखकर मैं घबरा रही हूं इस वक्त. . .पर फिर सोचती हूं कि मुझे तनाव में नहीं आना चाहिए, नहीं तो नसें उसी तरह फटने को हो आयेंगी जैसा युद्ध के वक्त होता था, जब मेरे पेट में युद्ध के तनाव की वजह से बच्चे ठहरते ही नहीं थे.

काफी देर बाद जब फ्यूमियो को वक्त मिलता है तो मैं उससे बातचीत शुरू करती हूं. इसी बीच अमरीकी युवक भी आ गया है.

बातचीत और माहौल वह नहीं बन पाया, जो मैं चाहती थी. हम हम लोग बाहर आ गये और सैर को निकल लिये. हीरोशिमा की बगैर कोलतार की सड़कों पर हम बढ़े चले जा रहे थे.

"क्या सोच रही हो युका सान? बता दो तो तुम्हें एक पेनी. . ." सैम-सान अगली सीट से मुझे देखकर मुस्करा रहा है. मैं भला उसे क्यों बतानें लगी कि मैं क्या सोच रही थी! . . .कि मैं सोच रही थी कि मैं हरे रंग की पश्चिमी पोशाक पहन लेती. . .पर उसकी बाहें बहुत छोटी हैं. . . और इसमें मेरी बाहों के दाग साफ नजर आ जायेंगे. . .कि मैं सोच रही थी कि अब मेरी अपने बारे में सोचने की उम्र ही कहां रही?

विदेशी चारों तरफ देख रहा है. फिर पूछता है, "तोक्यो की तरह यह शहर भी युद्ध के बाद फिर बना है न! तुम लोगों ने कमाल किया है!"

"हां-हां, सब कुछ नया है. . .फिर से बना है!" कुछ हो, मैं उसे यह नहीं बताना चाहती कि पुराना हीरोशिमा भी अभी जीवित है. इसे बहुत कम विदेशी देख पाते हैं. मैं थैले में से एक फटी हुई गाइड-बुक निकालकर पढ़ने लगती हूं, "क्या तुम सुन रहे हो सैम-सान!"

शोरगुल कुछ ज्यादा ही बढ़ा है. मैं और जोर से पढ़ती हूं, "6 अगस्त, 1945 तक हीरोशिमा तीन सौ साठ साल की आबादी का एक संपन्न समुद्री बंदरगाह था, लेकिन उस दिन की सुबह यह महानगर धरती की सतह से अदृश्य हो गया. . ."

उफऽऽये काम मैं नहीं कर सकती. गाइड बुक कहती है कि आठ-पंद्रह से आठ-सोलह के बीच साठ हजार घर जलकर राख हो गये. और एक लाख आदमी झुलस गये या चीथड़े हो गये. . .एक-एक संख्या के पीछे से दर्द भरे इंसानी चेहरे मुझे घूरते नजर आते हैं. . .घबराकर मैं पढ़ना ही बंद कर देती हूं, "इस शोर में तो सुन पाना भी मुश्किल ही है."

एक मुसीबत से बची तो दूसरी मुसीबत सामने थी. अब हम 'एटम-बम अजायबघर' के सामने से निकल रहे हैं. टूरिस्ट अपने कैमरे लटकाये यहां के ध्वंसावशेषों और उनकी तस्वीरों का संग्रह देखने को टूटे पड़ रहे हैं. सैम-सान यह भी तो नहीं जानता कि यह किस किस्म का अजायब-घर है!

अनायास फ्यूमियो की हालत खराब हो गयी है. सैम-सान उसे अस्पताल ले जाना चाहता है, पर उसे पता नहीं कि जापान में अस्पताल जाने का मतलब क्या होता है! कहीं फ्यूमियो के बॉस को पता चल गया तो. . . बड़ी मुश्किल से हम घर की तरफ बढ़ रहे हैं. सैम-सान की आंखें भौंचक्क हैं. . .जैसे कह रही हों कि उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आ रहा. मैं चाहती हूं कि वह न ही समझे तो बेहतर है. अभी तो उसने हमारी दीवार के उस पार देखा ही नहीं. . .मैं चाहती हूं कि वह हीरोशिमा के बारे में अजाना ही रहे तो अच्छा है.

यह फ्यकिया स्टोर कितना प्यारा है! मैं अपने किरायेदार के साथ घूम रही हूं. मुस्करा रही हूं. . .बगैर यह प्रकट किये हुए कि मैंने इसी दूकान को सारे सामान के साथ गारा होते हुए देखा है. . . इंसान की हड्डियों को उसके मलबे में मिलते देखा है.

सैम-सान ओहात्सु के लिए ढेर सारा सामान खरीदता है और गरीब जापानी लोग फटी आंखों देखते रह जाते हैं.

जरा-सी चूक हो जाने से वह भी हो ही गया. . .जो नहीं होना चाहिए था. माएदा-सान मेरी तीन पड़ोसिनों के साथ हाजिर था. उसी ने सैम-सान को बताया कि अब वे सब शहर के सार्वजनिक हमाम में स्नान नहीं कर सकते. मैं चाहती थी कि बात इधर-उधर हो जाये. . .पर सैम-सान भी कम जिद्दी नहीं था. चाय की परवाह न करते हुए उसने चट से पूछा, "क्यों नहीं कर सकते?"

"अपने चकत्तों के कारण." मेरा मित्र माएदा-सान भोलेपन में जवाब देता है, "विस्फोट से पैदा हुए चकत्तों के कारण. तुम्हें नहीं मालूम शायद. . .कि तुम एक एटमबम से आहत आदमी से बातचीत कर रहे हो! हम लोग, यानी हम पांच लोग, एटमबम से बच रहे एक लाख व्यक्तियों में से सिर्फ पांच हैं. . .हममें से कई बुरी तरह जल गये. जख्म कितने हुए यह तो खैर भूल ही जाओ! . . .यही कारण है कि स्वस्थ शरीर वाले हीरोशिमावासियों को, जो युद्ध के बाद यहां पहुंचे हैं, हमारे शरीर पर बने तमाम तरह के दाग और जख्मों को देखकर उबकाई आती है."

मैं स्थिति संभालने की गरज से चाय वहीं ले जाती हूं और इशारे से माएदा-सान को चुप भी कराती हूं, पर वह है कि चुप होने नहीं देता. घास पर घुटने टिकाये बैठी महिला की ओर इशारा कर, वह फिर बताना शुरू कर देती है, "यह हरादा सान, एटम बम के शिकार लोगों का एक सही उदाहरण है. इसने मुझसे कहा था कि आप इसके बदसूरत चेहरे को देखकर कहीं डर न जायें! वह महसूस करती है कि उसका चेहरा बहुत सपाट है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैम-सान का चेहरा पीला पड़ गया है. माएदा-सान बोलता जा रहा है, "मेरे दोस्त, मुद्दत हो गयी हरादा-सान को दिल खोलकर हंसे हुए!"

यदि सैम-सान जापानी होता तो यही जताता जैसे कुछ हुआ ही न हो. हीरोशिमा के बाहरी खोल के भीतर की पहली ही झलक ने उसे बुरी तरह विचलित कर दिया है. मेहमानों के जाने के बाद वह बाग में चक्कर काटे जा रहा है.

मैं अंदर चली आती हूं. मैं समझ रही हूं कि वह इस वक्त एकांत चाहता है.

"फूलों के कीड़े! ओह, मैं कोई ऐसी दुनिया चाहती हूं, जिसमें ये कीड़े न हों." ओहात्सु अपनी फूलों की क्यारी में घुटनों के बल बैठकर एक सफेद पैंजी से कीड़ा निकालती है और फूल के विकृत चेहरे को चिंतित नजरों से देखती रहती है.

छोटी बहन के साथ फूल की क्यारी में घुटने टेककर बैठना मुझे अच्छा लगता है, पर मैं चाहती हूं कि ओहात्सु जो कुछ भी किया करे, उसमें इतनी ज्यादा भावुकता न भरे. वह मुझसे पूछती है, "बड़ी बहन, मैं तुमसे प्यार के बारे में कुछ पूछना चाहती हूं! क्या तुम इस पर यकीन करती हो?"

"ओह!" मुझे धीमे से हंसी आ जाती है. पहली नजर के जिस प्यार का उसने जिक्र किया था, मैं समझ जाती हूं कि वह हैरी-सान को लेकर ही होगा... ओसात्सु के लिए एक अमरीकी पति... शायद वह उस आदमी की बाहों में चैन की नींद सो सके, जिसके लिए मुसीबतें अजनबी हैं. मैं झूठ बोल देती हूं, "हां, बिल्कुल!"

"तो तुम मुझे मेरी इच्छा से विवाह कर लेने दोगी?"

"हां-हां, बिल्कुल!"

बात आयी-गयी हो गयी और फिर जब बूढ़ी नागा-सान ओहात्सु के विवाह की बात लेकर आयी तो ओहात्सु घर से ही गायब हो ली. जैसे-तैसे यह पता लग पाया कि नागा-सान ओहात्सु का विवाह एक सम्मानित प्रौढ़ से करवाना चाहती है, "हां-हां, मेरी लड़की! हमें सच्चाई का सामना करना चाहिए. तुम्हारी युवा बहन की आज मांग है, लेकिन कल?... किस प्रकार के बच्चे ओहात्सु पैदा करेगी? आजकल हीरोशिमा में तुम्हारे जैसे एटमबम से बचे लोगों की बहुत चर्चा है कि उनके अजीब तरह के बच्चे होंगे... मेरे कहने का मतलब है कि हमें जल्दी करनी चाहिए. तुम जानती हो कि एटम बम से बची लड़की को कोई भी परिवार अपनी बहू बनाना नहीं चाहता. फिर भी यह आदमी..."

हम एक-दूसरे की तरफ बनावटी ढंग से मुस्कराती हैं. वह जानती है कि उसने मैदान पार लिया है. वह मुझे अशांत छोड़कर चली गयी है.

लंबी सर्दी के बाद, खिले चेरी के वृक्ष के नीचे बैठना अच्छा लगता है. हम सब पिकनिक के मूड में बैठ गये हैं. मैं सबके बीच हूं.

बातचीत और हो-हल्ले के बीच कब समय निकल गया, कुछ पता ही न चल सका. ओहात्सु मुझे उठाती है, "वहां... वहां, वह है!" वह चीखती है.

"कौन, माएदा-सान?"

"नहीं-नहीं, मेरा मित्र... जिसके बारे में मैंने तुम्हें कल बताया था. वह रहा हिरू, जो गहरे हरे रंग का किमोनो पहने खड़ा है." फिर वह मुझे बताती है कि उसका युवा-प्रेमी एक कलाकार है. माएदा-सान का एक शिष्य. कलातियां कम बिक पाने के कारण वह अखबारों में फोटोग्राफी करता है.

"तो क्या हुआ?" मैं पूछती हूं.

वह कहती है, "वह मुझसे विवाह करना चाहता है."

वह कुछ कहे और मैं जवाब दूं, इससे पहले ही वह युवक हमारी ओर बढ़ा चला आ रहा था. मैं कुछ विचार करती, इससे पहले ही ओहात्सु ने मेरा परिचय करा दिया, "ये हैं, हिरू शिमिज़ु!" और मैं मुस्कराकर रह जाती हूं. तब तक मेरा परिवार और सैम-सान भी वहीं आ पहुंचते हैं. मुझे ओहात्सु के प्रेमी से उन सबका परिचय करवाने में खासी झिझक महसूस होती है. मैं देख रही हूं कि परिचय कराने के तुरंत बाद ही मेरे किरायेदार का चेहरा लटक गया है.

पार्टी है. सभी लोग मस्त हैं. तभी फ्यूमियो अनायास कलाबाजी खाता हुआ जमीन पर लेट जाता है. मेरे सिवाय सभी हंस रहे हैं. मैं उसके करीब घुटनों पर गिर जाती हूं.

"मैं उठ नहीं सकता... मगर तुम उन सबको नहीं बताना... उनकी शाम खराब हो जायेगी." मैं समझ जाती हूं, यह वही बीमारी है.

"संयोग का हमारी जिंदगी में कितना बड़ा स्थान है!" मैं सोच रही हूं. अगर फ्यूमियो छः अगस्त, सन् 1945 के रोज फौज से छुट्टी लेकर हीरोशिमा न आया होता तो वह निश्चित रूप से यहां न होता. और अगर यहां न होता वह, तो उन ढेर-की-ढेर लाशों में एक-एक लाश उठाकर मुझे न ढूंढ़ता और न ही रेडिएशन की बीमारी से ग्रस्त होता... पर अब क्या होगा!

अब वह अस्पताल में है. मैं सेब लेना चाहती हूं, "महंगे सेब... मैं असल में कुछ खरीद नहीं सिर्फ देख रही हूं."सेल्स गर्ल से झूठ बोलना पड़ता है, पर जैसे ही उसे पता लगा कि मेरा पति रेडिएशन की बीमारी वाले सेक्शन में है... उसने तुरंत मुझे सेब थमा दिया, "ले लो, यह तुम्हारा है. मेरा पूरा परिवार एटमबम से जल गया था... मुझे क्षमा कर देना!" मुझे लगा जैसे उसने अपनी उंगलियां बढ़ाकर मेरे दिल को छू लिया हो.

सैम-सान बुरी तरह झुंझलाया नजर आता है. अभी उसे पता चला है कि फ्यूमियो से नहीं मिलने देना चाहती. उस आजाद परिंदे को भी कहीं हीरोशिमा की त्रासदी देखने को मिल गयी तो वह कहीं का न रहेगा, तुम घर चलकर मेरा इंतजार क्यों नहीं करते! फ्यूमियो के पास जाने की इजाजत किसी को नहीं है!" पर तभी डा. दोमोतो आकर उसे सगर्व अपना विभाग देखने का आग्रह करता है. यह तो वही हो गया, जो नहीं होना चाहिए था.

"इस बेड के आदमी के बीस ऑपरेशन हो चुके हैं." दोमोत सैम सान को बताता है, "यह लड़का एटम का युवा शिकार है. इसका एक तिहाई जिस्म विस्फोट के निशानों से भरा पड़ा है." फिर जब वह जापानी में बोलने लगता है तो सैम चाहता है कि मैं उसका अनुवाद कर दूं. मैं उसे समझाती हूं, "डाक्टर बता रहे हैं कि एटम के रोगी अंदर और बाहर दोनों तरफ चोटें झेलते रहते हैं. बम के निशान तो एकबारगी मिट भी सकते हैं... पर चोट के भीतरी आघात का कोई इलाज नहीं... यह जो लड़का लेटा है, इसकी आंखों के पपोटे बम के विस्फोट से जड़ हो गये हैं... चौदह साल से यह खुली आंखों सो रहा है. इसके दोनों कानों के ढकने भी गायब हैं. मुंह तो तुम खुद ही देख रहे हो!" मैं अच्छी तरह देख पा रही हूं कि हमारा किरायेदार हताशा में डूब और उतरा रहा है.

मैं रात को किमोनो उतारकर युकाता पहने दबे पैरों फर्श पार करती हूं ताकि मेरा मुटल्ला लड़का न जाग जाये! रसोईघर में जाकर एक प्याला गरम चाय बना लूं ताकि मेरा अकेला शरीर गर्मी पा सके... शरीर, जिसका साथी अब नहीं रह गया है.

यामागुची-सान सुबह-सुबह आ धमका है, "मैं तुम्हारे पति से मिलना चाहता हूं."

हे भगवान अब इससे क्या कहूं, "मेरे पति ओसाका गये हैं..." मैं साफ झूठ बोल जाती हूं. मैं उसका परिचय अपने अमरीकी किरायेदार से करवाती हूं.

सैम-सान मुझसे कुछ पूछना चाह रहा है और बहुत सोच-विचार के बाद मेरी जबान खुल पाती है कि हम लोग जो एटम के शिकार हैं... समाज से किस तरह बहिष्कृत हैं! हमारे जख्मों को देखकर लोग किस तरह वितृष्णा से भर उठते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैम मेरा हाथ थाम लेता है, उसे क्या पता कि यह बांह जख्मों से. भरी है और जख्म युकाता के भीतर छिपे हैं.

सैम, बार-बार मेरी बेटी मिचिको के अकेलेपन में खोये रहने पर भी चर्चा करना चाह रहा था. और सोच रही थी कि जो कुछ अकेले में मिचिको देखती है, वह कोई और देख ही कैसे सकता है!

ओहात्सु की पार्टी में जब सैम को उस जाति के बारे में विस्तार से सूचना मिलती है कि रेडियेशन ग्रस्त लोगों की एक जाति ही बन गयी है तो वह भाव-विह्वल हो उठता है. . .उसे लगता है कि उसे डाक्टर ही होना चाहिए था. वह निहायत संवेदनशील है और जीवन के प्रति खास तरह का अनुराग रखता है.

पार्टी में सैम अन्यमनस्क ही रहा. फिर एकाएक उसने मुझे अपनी बाहों के घेरे में लेकर सटा लिया. . .और मेरे भीतर एक लहर दौड़ गयी.

धीरे-धीरे सैम ज्यादा ही जुड़ता चला जा रहा है. एक रोज वह फ्यूमियो को देखने पहुंचा तो बोला, "युका, मैं फ्यूमियो से दो शब्द कह सकता हूं?" फिर मेरे कान में आकर फुसफुसाया, "तुम्हें एतराज तो नहीं!"

"देखो, मुझे बात कहनी नहीं आती. . ." वह शुरू करता है, "लेकिन मैं तुम्हें धन्यवाद करना चाहता हूं फ्यूमियो. . .तुम्हें मालूम है, तुम्हारे ही जरिए मैंने हिरोशिमा का अर्थ जाना है. यह वह चीज है, जिसे ज्यादा लोग नहीं जानते. . .मैं कुछेक लोगों को बताऊंगा. . ."

मैं अनुवाद करते हुए फ्यूमियो को समझाती हूं तो वह सैम से आंखें मिलाता है. एकाएक फ्यूमियो के चेहरे में चमक आ जाती है और सैम के चेहरे पर लहू दौड़ जाता है. मुझे लगता है कि कुछ क्षणों के लिए पूरा ब्रह्मांड ठहर गया है.

समय के साथ-साथ हम और करीब आ गये हैं. मैंने सैम को मां के न रहने का वृत्तांत भी बताया. जो दृश्य मुझे बहुत साफ-साफ याद थे, उसे स्मृतियों के आधार पर दिखाने की कोशिश की. . .हिरोशिमा का शहर आग की लपटों से घिरा है. मैं कैसे उस रोज, सड़कों में भागती फिरी थी. . .मामा-सान और ओहात्सु के साथ हमारे कपड़े विस्फोट से चिथड़े-चिथड़े होकर उड़ गये थे. हम करीब-करीब निर्वस्त्र ही थीं. आग के गोले हवा में उड़ गये थे. . .सड़कों का कोलतार उबल-पिघल गया था.

कितने कुत्ते जिंदा भुन गये थे. मुझे याद है, वे कितना आर्त्तनाद कर रहे थे! मामा भी पानी में कूदने से पहले जरूर चीखी होगी!

मैं बोलती ही जाती अगर वह मुझे चुप ही न कर देता, "बस करो, अब मुझमें सुनने का माद्दा नहीं रहा."

मैं उसे टोकती हूं, "तुम्हें ताकत ढूंढ़नी पड़ेगी, क्योंकि तुम अब इसके बीच हो, हम सबके साथ-साथ!"

किओसोको पहुंचकर जैसे ही ओहात्सु की नजर हिरू के चेहरे पर पड़ती है, मैं उस मछली को उसकी आंख में प्रतिबिंबित देखती हूं. वहां 'रेडियेट' हुई मछली तैरती नजर आती है, जिसके दो मोटे सिर हैं और चार दुखभरी आंखें. . .वह, जिसकी तस्वीर हमने डा. दोमोतो के दफ्तर में देखी थी. मैं देखती हूं कि बहन के शरीर में कंपकंपी हो आयी है. क्या अचानक उसे अपने शरीर से नफरत होने लगी है. क्या उस निरंकुश बम ने हमेशा के लिए उसके लहू और हड्डियों को दूषित कर दिया है. . . ओहात्सु की खूबसूरत कोख को भी!

"मैं तोक्यो जा रही हूं. ढूंढ़ने की कोशिश न करना. हिरू मुझसे शादी के लिए जिद कर रहा है, अपने मां-बाप की इच्छा के विरुद्ध. मैं शादी नहीं कर सकती. हर युवक को स्वस्थ संतान पैदा करने का अधिकार है. हो सकता है, मेरे बच्चे उस मछली की तरह ही हों. . ." ओहात्सु खत लिखकर छोड़ गयी थी.

"युका, क्या बात है?" सैम सामने खड़ा था. उसे जवाब नहीं मिला, पर वह समझ रहा था कि हिरोशिमा के आत्महत्या वाले तरीके से ही वह गायब हुई है.

दो खत

1.

प्यारी मिस दान थान्ह,

तुम्हारा स्वास्थ्य अब कैसा है? अच्छा बुरा? जलने के जख्मों को लेकर पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन मेहरबानी करते हुए हिम्मत बनाये रखना. सबसे बड़ा डर पागल हो जाने का है, इसलिए जब तुम्हारी चीखों में पागलपन की ध्वनि सुनाई दे तो एकदम खामोश हो जाया करो. . .

तुम्हें भी 'सायोनारा'.

तुम्हारा
निशीना शिजो

पुनश्च: क्या तुम्हारे दायीं ओर थोड़ी-सी भी खाल नहीं बची है? एटम बम के बाद मेरे बायीं तरफ बिल्कुल भी खाल नहीं बची थी. एक पेड़ को अपनी छाल की जरूरत तो होती ही है. . . □

2.

नागासाकी,
फरवरी

प्यारी मिस दान थान्ह,

तो उस दिन मैं उछल-कूद करता आगे-आगे बढ़ा जा रहा था. यह गिरजाघर जाने का रास्ता था. मैं खुश था कि लौटकर अपने दोस्तों के साथ खूब खेलूंगा. . .और मैंने एक लंबी छलांग लगायी. . . तभी मुझे पता लगा कि कोई चीज आकर मुझे लगी. मैं सड़क पर पसरा पड़ा था.

"मुझे क्या चीज आकर लगी है. . .मम्मी-पापा?" मैं पूछते हुए ऊपर की तरफ देखना चाहता था, लेकिन वे लोग वहां थे ही नहीं. . .वे लोग तो वहां थे ही नहीं. . . थे ही नहीं. . .

उधर खेल में लगे अपने दोस्तों को आवाज दी कि मेरे मम्मी-पापा कहां चले गये. . .? पर वे सब तो बुत बने-से चुपचाप आसमान की तरफ तक रहे थे. न हिले, न डुले. . .न कोई जवाब ही आया!

दरअसल, एटमी विस्फोट की चमक से वे अंधे हो गये थे और बाद में भी किसी की आंख की रोशनी वापस नहीं लौटी. . .हमारे शहर में तमाम लोग निराशा के अंधेरे में अपराधी बन गये हैं.

मेरी बायीं बगल में दर्द होने लगा. मैं चीखने-चिल्लाने लगा. मुझे इस वक्त यह याद नहीं कि मैं राख होकर हवा में उड़ गये अपने मम्मी-पापा के लिए चीख रहा था. . .या कच्चा गोश्त बन चुकी अपनी बगल के लिए. अचानक मुझे भूख महसूस हुई. मैंने ईशु का फूल खा लिया. उसके बाद मैं फिर चीखने लगा. चीखता ही रहा. . . तो यह था वह दिन.

तुम्हारा
निशीना शिजो

छह बजे जब मैं यहां से गयी थी, फ्यूमियो के बेड पर कोई परदा न था. अब परदा लगा हुआ है, उसका अर्थ मैं समझ रही हूं.

फ्यूमियो फुसफुसा रहा है. . .वह मुझसे बहुत कुछ कहना चाहता है . . .और मैं सभी कुछ समझ रही हूं. वह कह रहा है, "तुम मेरे लिए सब कुछ रही हो. . .तुम अपने प्यार का उपयोग किये बिना रह जाओगी . . .तुम्हें पता है कि तुमने अपना सारा प्यार मेरे साथ बांध रखा है. मैं तुमसे यही कहना चाहता हूं कि तुम उसे बांट देना, उन्मुक्त भाव से. . ."

"फ्यूमियो ऽऽऽ" मैं फुसफुसाती हूं. . .और जानती हूं कि अब वह मेरी आवाज नहीं सुन रहा है. . . □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गैस चैंबर से फरार

क्लीर डी॰ हेडरारी

13 जुलाई, 1944 का दिन बहुत गर्म था. गाड़ी एक उजाड़ जगह पहुंचकर रुक गयी और राजनैतिक बंदियों की एक टोली लड़खड़ाती हुई गाड़ी से उतरने लगी. उनके सामने एक जगमगाता हुआ फाटक था, जिस पर यह वाक्य चमकते अक्षरों में लिखा हुआ था—'साहस स्वतंत्रता दिलाता है.' इस फाटक के अंदर एक विशाल कैंप था, जिसमें हजारों क्वार्टरों पर आधारित कई अहाते बने हुए थे. उनके गिर्द कांटेदार तार और मजबूत जंगले लगे थे, जिनमें हर समय बिजली दौड़ती रहती थी.

हर क्षण सर्चलाइट का लावा फूटता था. हर ओर मशीनगनों से युक्त सैनिक नियुक्त थे और उनके अलावा सधाये हुए कुत्ते चौकीदारी कर रहे थे. यहां से स्वतंत्रता प्राप्त करने का मौत के सिवा अन्य कोई रास्ता नहीं था, क्योंकि यह 'आशवाज' था—नाजियों का पौलैंड में कुख्यात केंद्रीय कैंप, और हम—हम कैदियों की ताजा खेप थे.

हिटलर की एस. एस. सेना की एक पलाटून हमें मार्च करवाती हुई फाटक के अंदर ले गयी. अंदर पहुंचकर हमें हुक्म मिला कि हम फौरन अपने सारे कपड़े उतार दें और उन्हें बड़े-बड़े ड्रमों में डाल दें.

निरावरण होकर एक के पीछे एक पंक्ति में हमने उस आदमी की ओर बढ़ना शुरू किया, जो अपने स्टाफ से जरा दूरी पर सैनिक डाक्टरी अफसर की निर्दोष वरदी पहने खड़ा था. यह कैंप का मुख्य डाक्टर जोजफ मंजली था. जैसे ही हर पुरुष, स्त्री या बच्चा उसके सामने पहुंचता, वह उसके नंगे शरीर का गौर से निरीक्षण करता, फिर अपने अंगूठे को दायें या बायें हरकत देता.

वह कैदी, जिन्हें निर्दयता से धकेलकर बायीं तरफ एकत्र किया जा रहा था, बूढ़े, कमजोर, बीमार और बहुत अल्प आयु बच्चे थे. उन्हें और उन लोगों को जो किसी भी काम के अयोग्य नजर आते, उस इमारत में भेज दिया जाता, जिसे 'गैस-चैंबर' कहते थे और जहां उनके 'बेकार वजूद' गैस द्वारा तिनकों की तरह भस्म कर दिये जाते थे.

जब मेरी बारी आयी तो डाक्टर ने बड़े गौर से मेरे निरावरण शरीर का निरीक्षण किया और अंगूठे से दायीं ओर इशारा कर दिया. मेरी उम्र चवालीस वर्ष थी, लेकिन उम्र की दृष्टि से मैं अधिक स्वस्थ थी. इसलिए मुझे जिंदा रखने का निश्चय किया गया. कम से कम उस समय तक जिंदा रहने की अनुमति मिल गयी, जब तक मेरे हाथ-पांवों में मेहनत करने की शक्ति बाकी रहे. हमारी टोली को, जिन्हें जिंदा रहने के लिए चुना गया, एक मेज की ओर हांक दिया गया, जहां गोदने की सुइयां रखी थीं. मैं किसी गहरे खयाल में खोयी हुई अवचेतन रूप में ध्यान के साथ देखती रही कि मेरी दायीं कलाई पर एक नंबर 82585 गोद दिया गया. यद्यपि इस क्रिया से पीड़ा बिलकुल मामूली-सी हुई, लेकिन भय की एक तीव्र लहर मैंने शरीर में दौड़ती हुई महसूस की. मैंने आंखें बंद कर लीं... और पूरी दृढ़ता के साथ मन ही मन में कहा, 'नहीं, मैं केवल एक नंबर हरगिज नहीं हूं. एक प्राणी हूं. मेरा नाम बाकी रहेगा. मैं भूमिगत नाजी-विरोधी आंदोलन की सदस्या के रूप में याद रखी जाऊंगी. मैं तुम्हारी निर्दयी व्यवस्था को इससे कहीं अधिक नुकसान पहुंचाऊंगी, जितना तुम मुझे पहुंचा सकते हो. मैं केवल नंबर नहीं हूं.'

अब हमारे दैनिक जीवन का आरंभ हो गया. दिन के समय धूप में हम बड़ी-बड़ी इमारतों के निर्माण में लगे रहते. मैं जानवर की तरह एक बेलन में जुती हुई पत्थर पीसकर रेत बनाती. रात लंबे-चौड़े सर्द बैरकों में लगे नंगे तख्[illegible] [illegible]टकर बितानी पड़ती. हमारा खाना, पानी जैसे पतले शोरबे पर [illegible]ारित था. कभी-कभी सूखी रोटी का टुकड़ा भी मिल जाता था. [illegible] भयानक गति से सबका वजन घटता और स्वास्थ्य गिरना शुरू [illegible] और साथ ही हमारे कैदियों की संख्या भी कम होने लगी. हर [illegible] वहां की चिमनियों से सुर्खी झलकने लगती, जिसे देखते ही सर्दी के [illegible] शरीर का रहा-सहा खून, पसीना बनकर निकलने लगता, क्योंकि [illegible] सुर्खी उन अभागों के खून की होती, जिनकी दुर्बलता ने उन्हें मेहनत [illegible] अयोग्य बना दिया होता और जिन्हें गैस-चैंबर में भस्म किया [illegible] होता था.

अपनी कैद के दू[illegible] महीने जब हम दिन भर के परिश्रम के बाद अपनी बैरकों की ओर [illegible] रहे थे, कैदी-स्त्रियों में से एक ने धीमे स्वर में मुझसे कहा, "डाक्ट[illegible] आपसे मिलना चाहती है." कुछ सप्ताह बाद एक अन्य कैदी के [illegible] मैंने यही नाम और यही संदेश सुना. [illegible] बार खुसर-फुसर कर[illegible] ने यह बात कही थी, "वह आपको [illegible] जरूरी संदेश देना चाह[illegible]"

अति शारीरिक [illegible] काम जो मैं कर रही थी, उसने [illegible] ही मेरे स्वास्थ्य को [illegible] कर दिया. कुछ निर्देशों के अधीन [illegible] मुझे सिलाई के काम [illegible] लगा दिया गया. सिलाई की इमारत से [illegible] चैंबर के निकट की [illegible] की चिमनियां साफ दिखाई देती थीं. जब उनसे काला धुआं और [illegible] शोले निकलने लगते तो [illegible] रोम-रोम कांप उठता. मेरे हाथों में उन जलनेवाले इंसानों के खून भरे चिथड़े होते, जिन्हें मैं मरम्मत करती और वह भविष्य में उस नरक का ईंधन बननेवालों का मुकद्दर बनते.

सिलाई का कमरा एक दैत्यकाय महिला अफसर के अधीन था जो मशीनों पर झुकी दुबली स्त्रियों की पीठ पर हंटर बरसाकर हंसती रहती. उस नाजी महिला ने पहली ही नजर में मुझसे घृणा प्रकट की. एक दोपहर जब मैं कपड़े में टांके लगा रही थी, उसने झपट्टा मारकर कपड़ा छीन लिया और भयंकर अंदाज में गरजी, "काम कर रही है या मक्खियां मार रही है कमीनी!" मैंने हिम्मत करके बताना चाहा कि मेरी ऐनक मुझसे छीन ली गयी थी. इसलिए नजर का काम करने में कठिनाई होती है, लेकिन उसने मेरी बात पूरी होने से पहले ही डांट दिया, "बको मत. एक जर्मन अफसर के सामने जुबान खोलने की हिम्मत करती है." और एक झन्नाटेदार थप्पड़ मेरे गाल पर जड़ दिया. स्वाभाविक रूप में अपनी रक्षा के लिए मैंने अपना चेहरा दोनों हाथ में छिपा लिया, लेकिन उसकी संरक्षक दो स्त्रियों ने मेरे हाथ मजबूती से पकड़ लिये और शोर मचा दिया, "इसने जर्मन अफ़सर पर हाथ उठाया है." वह जर्मन अफसर महिला कुत्तिया की तरह भौंकी, "इसे ले जाओ और इसका अभी अंत कर दो." वह संरक्षक स्त्रियां मुझे घसीटती हुई ले गयीं और मेरी बैरक में लाकर लकड़ी के तख्तों पर फेंक दिया.

कितने घंटे और घड़ियां बीत गयीं. मुझे कुछ मालूम नहीं, लेकिन उस समय अंधेरा फैल चुका था जब एक सैनिक आया और बोला, "तुम्हें दुबारा सिलाई के काम पर नियुक्त कर दिया है. चलो, उठो." दिल ने कहा, 'अभागिन, तेरी मौत अभी नहीं आयी. शायद तुझे एक और अवसर दिया गया है.' वह मुझे साथ लेकर सिलाई के कमरे में पहुंच गया और अंदर धकेलकर बाहर से दरवाजे को ताला लगा दिया. वहां पचास स्त्रियां और [illegible]थीं. पता चला कि हम सबको गैस चैंबर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिंदा रहना आदमी के लिए कितना जरूरी होता है, यह अहसास उस व्यक्ति से बेहतर किसे हो सकता है जो स्वयं मौत के मुंह का सामना करके लौट चुका हो! --प्रस्तुत है हिटलर द्वारा युद्ध के दौरान गैस चैंबर में हजारों लोंगो को आदमजाद रूप में जला दिये जाने की लोमहर्षक कहानी एक भुगतभोगी की जुबानी--

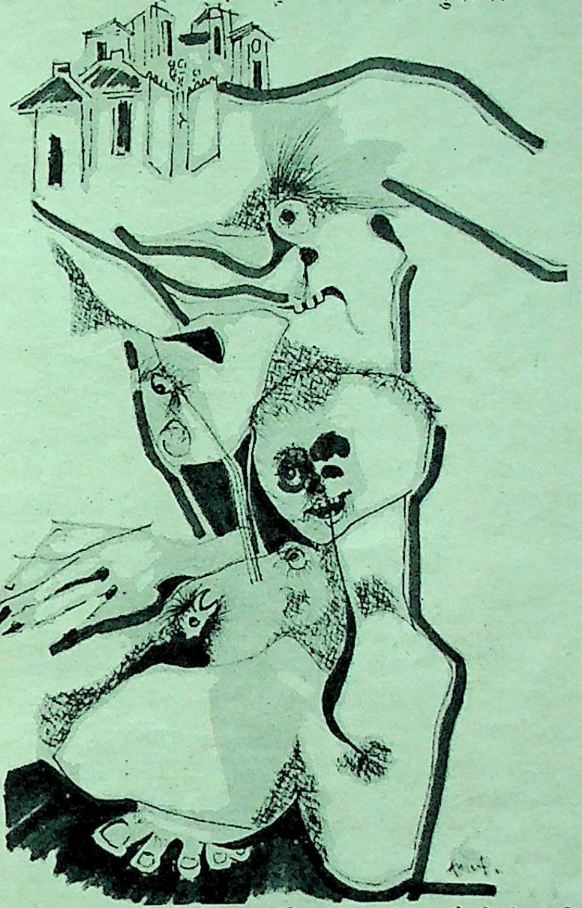

ले जाने के लिए यहां इकट्ठा किया गया है. जल्दी ही एस.एस. सैनिक आ गये और हमें वधशाला की ओर ले चले.

वहां पर नियुक्त सभी संरक्षक सैनिक कुछ घबराये हुए और परेशान-से नजर आ रहे थे. उनकी घबराहट का कारण जल्दी ही पता चल गया. वास्तव में रूसी सेनाएं पूर्व से बढ़ती हुई जिधर आ रही थीं, यह कैंप उनके रास्ते में पड़ता था.

मैंने देखा, सामनेवाला संरक्षक ताजा खबरों पर विचार-विनिमय करने के लिए अन्य सैनिकों में जा मिला है. तभी बिजली के कौंध की तरह एक खयाल आया और मैं कतार में से पीछे खिसक गयी. फिर जैसे ही हमारी कतार एक इमारत के नुक्कड़ पर मोड़ मुड़ने लगी, मैं छिपकर दीवार के साथ चिपक गयी. एक क्षण सांस रोके किसी शोर या हंगामे की प्रतीक्षा करती रही, लेकिन किसी को पता नहीं चला था. हालांकि प्राण बचने की कोई संभावना नहीं थी फिर भी मैं दौड़ उठी.

अचानक मुझे एक छोटा-सा शैड दिखायी दिया, जिसके दरवाजे पर खतरे का चिन्ह बना हुआ था. मैंने सोचा कि कोई परवाह नहीं. मैं जहां से आ रही हूं, उससे अधिक खतरनाक जगह दुनिया में और कोई नहीं हो सकती. मैंने अधीरता से दरवाजा खोलना चाहा, लेकिन अपनी दुर्बलता और कमजोरी के कारण उसे हिला तक न सकी. फिर अप्रत्याशित रूप में स्वयं ही दरवाजा पूरा खुल गया और मुझे एक आकृति-सी दिखायी दी, जो सफेद डाक्टरी गाउन पहने हुए थी. एक कोमल स्वर मेरे कान से टकराया, "ईश्वर का धन्यवाद है, तुम आ गयी!"

अब मुझे एक सुंदर स्त्री खड़ी दिखायी दी. मैंने तत्काल अनुमान लगाया कि यही डाक्टर वंकलर है. वह बोली, "मेरे संदेश निश्चय ही तुम तक पहुंचते रहे होंगे. मैं तुम्हारी मदद करना चाहती थी, लेकिन तुम तक पहुंच पाना संभव नहीं था. मैं भी आखिर एक कैदी ही हूं..."

सहसा वह चुप हो गयी और होंठों पर उंगली रखकर मुझे भी चुप रहने का इशारा किया. किसी के बूटों की चाप उधर आती हुई सुनाई दी. मेरे दिल की धड़कनें भयानक हद तक बढ़ गयीं. कोई सैनिक मेरी तलाश में आया था. मुझे दरवाजे के पीछे छिपाकर वह आगे बढ़ी मुझे आवाज सुनाई दी, "आप शायद किसी की तलाश में हैं?"

"जी नहीं, नंबर 82585 को गैस-चैंबर ले जाया जा रहा था कि वह जान बचाकर निकल भागी."

"कमाल है, लेकिन वह यहां तो नहीं आयी. यकीन न हो, तो अंदर आकर देख लो." यह पेशकश सूली पर चढ़े आदमी के पांव तले से तख्ता खिसकाने के समान थी, क्योंकि वह सैनिक अंदर कदम रखते ही मुझे देख लेता और हम दोनों की मौत यकीनी थी, लेकिन यह संरक्षक सैनिक मेरी रुपोशी के कारण इतना बौखलाया हुआ था कि 'खैर, जा कहां सकती है!' कहता हुआ वापस पलट गया. उसके कदमों की चाप ज्यों-ज्यों दूर होती गयी, मेरे दिल की धड़कनें स्वाभाविक होती गयीं. डाक्टर वंकलर ने भी निश्चिंतता की सांस लेकर कहा, "हम तुम्हें सुबह से पहले ही यहां से फरार करा देने का प्रयत्न करेंगे." यह कहते हुए उस पर कंपकंपी-सी छा गयी, "छूत के बीमारों के वार्ड की इंचार्ज डाक्टर कैथरीन इतालवी महिला हैं. मेरी सहेली हैं. छूत के डर से कोई भी उस वार्ड की ओर नहीं जाता. वह उस समय तक तुम्हें वहां छिपाये रखेगी."

"लेकिन मेरी खातिर आप यह सब कुछ क्यों कर रही हैं?"

"तुम्हारी मदद करके मैं एक पुराना कर्जा चुकाना चाहती हूं. उस स्नेहशील हस्ती के उपकार का बदला चुकाना चाहती हूं, जिसने मेरी जिंदगी बना दी थी. वह महान हस्ती तुम्हारे पिता थे."

वह हंगरी के उस बौद्धिक वर्ग में शामिल थे, जिनका दृष्टिकोण यह था कि समाज पर सभी व्यक्तियों को एक समान शिक्षा और उन्नति के समान अवसर प्रदान करने की जिम्मेदारी लागू होती है.

मैंने खिड़की से सुबह का प्रकाश फूटता हुआ देखा. डाक्टर वंकलर ने धीमे स्वर में कहा, "दिन का उजाला फैलने से पहले तुम्हें यहां से निकल जाना चाहिए. छूत का वार्ड ब्लाक नंबर आठ में है. दूसरी खिड़की को खटखटाकर यह गुप्त शब्द दुहराना—परयू गनिया."

सुबह मैं रेंगती हुई वार्ड की उस खिड़की के नीचे पहुंची. मैंने धीरे स्वर में 'परयू गनिया' कहा. मजबूत बाहों ने मुझे खिड़की में से खींचकर अंदर उतार लिया और फूस के एक बिस्तर तक पहुंचाया.

उसके बाद जो चौदह दिन बीते, हमने बहुत कम बातचीत की.

एक दिन डाक्टर वंकलर मुझसे मिलने आयी. उसका चेहरा पीला हो रहा था. लेकिन वह शांत थी. वह उदास और करुणापूर्ण स्वर में बोली, "मैं तुम्हें अलविदा कहने आयी हूं. आज दोपहर डाक्टर मंजली यह कैंप खाली करके अपना डाक्टरी स्टाफ बर्लिन ले जा रहा है."

उसके बाद बहुत जल्दी ही पौलैंड का एक रेडक्रास कमीशन रूसी विजयी सेनाओं के साथ वहां पर पहुंचा. हमने आजाद होते ही अन्य कैदियों की तलाश शुरू कर दी. उस कैंप से चौदह मील दूर एक खाई में नाजी डाक्टरी कैंप के सारे जर्मन स्टाफ की लाशें पड़ी दिखायी दीं. उन लाशों से थोड़े फासले पर डाक्टर कैथराइन की लाश पड़ी थी. जैसे उसी ने उन जर्मनों का अंत किया हो. डाक्टर वंकलर के सिर में गोली लगी थी. उन लाशों में डाक्टर मंजली की लाश नहीं मिली. मंजली डाक्टर वंकलर की कातिल. अनुमान था कि वह अभी जिंदा है. ☐

प्रस्तुति : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन रे भोपाल, क्या है हालचाल...?

प्रभाकर श्रोत्रिय

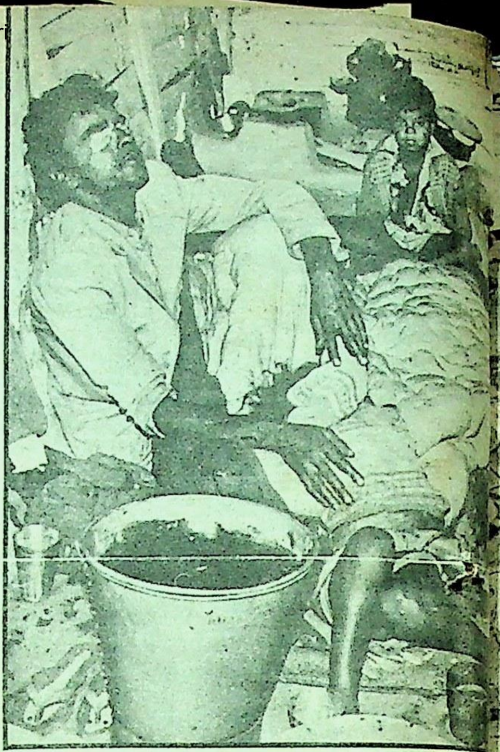

□ विनाश का सहभोक्ता एक परिवार

वह एक खामोश ठंडी रात थी. . . तीन दिसंबर, 1984 की रात. ठिठुरते बच्चे मां के आंचल में दुबके गहरी नींद ले रहे थे. झुग्गी-झोंपड़ी के गरीब लोग बच्चों को चिपटाये या खुद की गर्मी से अपने आपको गर्माते बेखबर सोये थे. एक घना सन्नाटा पूरे शहर को अपने आगोश में समेटे गहरी सांसें ले रहा था. . .

पता नहीं, ये सांसें कब धुएं से भरे घने कोहरे में बदल गयीं. पता नहीं कब सैकड़ों जहरीले सांपों ने एक साथ प्राण-वायु को डस लिया और वह लहरें लेने लगी. झोंपड़ियों में, मकानों में हलचल, करवटें, बेचैनी शुरू हुई. आंखों से आंसू बरसना शुरू हो गये. सड़े हुए बादामों की गंध के साथ बेचैनी और घुटन सांसों से उतर रही थी. किसी की समझ में, न आ रहा था कि माजरा क्या है? पलक झपकते ही चीख-पुकार हाहाकार मच गया. मोहल्ले के मोहल्ले आधी रात में मौत के किसी अनाम आक्रमण से भयाक्रांत हो उठे. हर एक को एक-सी व्याकुलता कि—प्राण निकल रहे हैं—भागो, किसी ताजा हवा की तलाश में भागो! लोगों की सहज प्रेरणा सिर्फ इस भयावह कोहरे के पार जाने को उतावली हो उठी. और पता ही नहीं चला कि कब हजारों लोग गिरते-पड़ते सड़कों पर दौड़ने लगे. कोई दो कदम दौड़कर गिर पड़ता, कोई दस-पचास कदम चलकर. इन्हें उठाने की सुध किसे थी? लाशों से सड़कें, नालियां पट गयीं. उन पर पैर रखकर जन-समुद्र, प्राणों की रक्षा की हड़बड़ी में किसी अनाम सुरक्षा-भूमि की ओर लपक रहा था. घर-परिवार के लोग अगर राह में बिछुड़ गये तो उन्हें खोजने का न वक्त था न उपाय. फिलहाल सारे संबंध निरर्थक हो गये थे.

कहीं कोई बताने वाला नहीं था कि यह क्या है. क्यों है और इससे कैसे निपटें? ज्यादातर तो भीड़ की दिशा में दौड़ रहे थे. कुछ लोग सहज बुद्धि या अश्रुगैस के पूर्वानुभव के सहारे रजाई में मुंह ढंके या गीला कपड़ा लपेटे दरवाजे-खिड़की बंद कर पड़ गये. वे आपात मृत्यु से घिरे हुए उस वक्त के टलने का इंतजार कर रहे थे. जो घर-घर दस्तक दे रहा था.

रेलवे प्लेटफार्म अनवरत योगी होता है. वह तब भी जागता है, जब दुनिया सोती है. शायद सबसे पहले कोहरे के दैत्य ने उसी का गला दबाया. उसकी असंख्य वाहिनी ने जो जहां था उसे वहीं जकड़ा. घुटते दम, जलती आंखों और उल्टियों से परेशान लोग घबराकर रिटायरिंग रूम या केबिनों में जहां-तहां घुसने लगे. जब लगा कि यहां घिर गये हैं तो सब कुछ छोड़-छाड़कर मैदान में भाग खड़े हुए. रेलवे प्लेटफार्म और उसका परिसर वैसे भी यतीमों का घर होता है. सैकड़ों का रैन बसेरा और सहारा! लोग यहां-वहां फुटपाथ पर, रास्तों पर थके पड़े थे. लेकिन वह भी उनका सहारा न रहा! ये लोग भी टकराते, लंगड़ाते, टटोलते दौड़े या वहीं दम तोड़ दिया. वे ही वहां रह गये थे जो या तो 'वहां थे ही नहीं'. या जिनमें भागने की ताकत नहीं बची थी. लेकिन नहीं! एक इंसान था मौत पर उस वक्त भारी पड़ रहा था—हरीश धुर्वे—स्टेशन अधीक्षक. मौत से झगड़ते हुए उसने असंख्य प्राणों के लिए अपनी वीर आहुति दे दी. वह दौड़-दौड़कर लोगों से भाग जाने को कहता फिरा. 'उसने भोपाल आनेवाली तमाम गाड़ियों को पिछले स्टेशनों पर रोक देने की हिदायत टेलीफोन से दी. क्रुद्ध यमराज ने उसे फोन का चोंगा टेलीफोन पर रख देने की इजाजत तक न दी!

यों, जो कुछ हुआ वह सर्वथा आसन्न, अप्रत्याशित और अकल्पनीय था. इसकी पूर्व तैयारी तीसरे विश्व के शासन-तंत्रों के पास शायद नहीं होती. क्यों नहीं होनी चाहिए, यह एक अलग सवाल है. लेकिन एक प्रत्युत्पन्नता भी होती है, एक इंसानियत जो कर्तव्य के निचोड़ के रूप में बलिदान की तत्परता से आंकी जाती है, हारी है और असफल हुई है. तो यही कर्तव्यनिष्ठा और प्रत्युत्पन्नता! 'रक्षितों' की पूरी फौज अगर वारदात के वक्त स्वयं 'रक्षित' होने के लिए ही बनायी जाती हो तब फिर उसे इतने तामझाम और प्रभुत्व मुहैया करने का अर्थ तो यही हुआ न कि वह सिर्फ 'रक्षण' के नाम पर प्रजा को काटने निचोड़ने, कुचलने और दफनाने के वास्ते ही बनी है! उस रात अगर सिर्फ एक माइक घुमा दिया जाता कि 'खतरनाक हादसा हुआ है, आप लोग रात भर रेडियो सुनते रहें और हिदायत का पालन करें.' और रेडियो से निर्देश दिये जाते तो तीन चौथाई मौतों को टरका जा सकता था. जागा हुआ रेडियो इंतजार करता रहा, किसी ने उसे शब्द नहीं दिये! क्या पूरा तंत्र तिरोहित हो चुका था? जनता के इस सवाल का जवाब स्पष्टीकरणों से नहीं दिया जा सकता. जहां कर्म चाहिए वहां शब्दों का कोई क्या करे?

आधा शहर सड़कों पर दौड़-हांफ-मर रहा था, बाकी आधा शहर आशंकाओं से कांप रहा था, कोई चार-साढ़े चार बजे ऐलान हुआ कि "अब गैस पर काबू पा लिया गया है, आप लोग अपने-अपने घरों को वापस लौटें." सरकार जाग चुकी थी, जाहिर है कि हादसा टल गया होगा. सुबह आकाशवाणी ने खबर दी की रात-यूनियन कार्बाइड़ कारखाने में गैस रिसन हुआ, जिससे भोपाल में भगदड़ मच गयी. हादसे में मरनेवालों की संख्या पंद्रह बतायी गयी. खबर ऐसी थी गोया कोई ट्रक बस से टकरा गया हो. रात तक दिल बड़ा करके यह संख्या 62 तक पहुंचायी गयी. मगर दुनिया की अंतरिक्ष आंखों ने जो देखा था और स्वयं भोपाल वासियों ने भी—उन्हें इस 'कल्पनाशीलता' पर कितना नाज हुआ होगा!

रात का गैस चेंबर भोपाल सूरज की रोशनी में श्मशान बन चुका था. हजारों शव ठिकाने लगाये जा रहे थे, फिर भी भोपाल के सारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

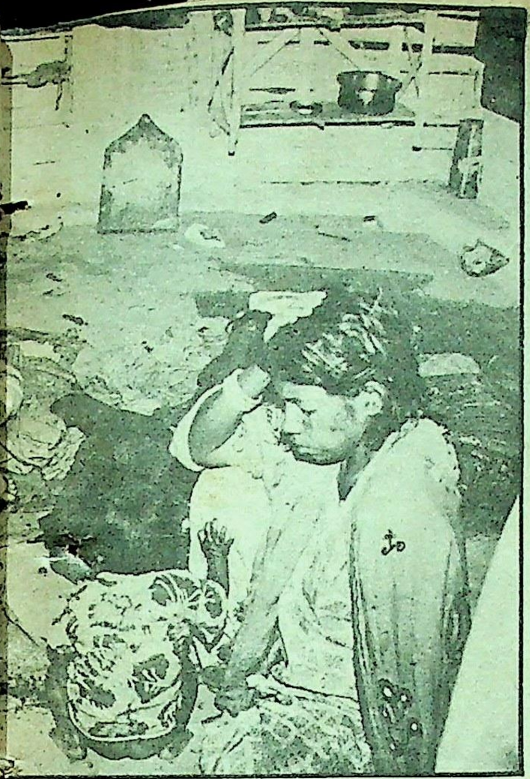

'भोपाल' एक शहर का नाम है. कल तक यह नाम एक सांस्कृतिक और साहित्यिक केंद्र के रूप में जाना जाता था और आज इसे जाना जाता है एक 'मौत के शहर' के रूप में.... क्या यह संयोग नहीं है कि इस मौत के केंद्र में उसी अमेरिका के द्वारा भारत में पाला जा रहा 'यूनियन कारबाइड' नाम का दैत्य था जिसने इससे लगभग चालीस साल पहले हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम के रूप में मौत की वर्षा की थी. तिस पर इससे भी बड़ा सवाल तो यह है कि गैस का यह रिसन दुर्घटना ही था या किसी सोची-समझी साजिश का नतीजा?..... बीसवीं सदी के उत्तरार्ध की सबसे बड़ी और भयावह औद्योगिक त्रासदी का हाल आपको सुना रहे हैं, उन दिनों भोपाल में ही मौजूद दो चश्मदीद गवाह

अस्पताल मुर्दों, बीमारों से खचाखच भरे थे. खाली घरों और नालों के इर्द-गिर्द शव पड़े थे. हजारों पशु मरे थे, जिनमें कई गलियों में यहां-वहां पड़े थे. पचासों शव कतार में या इकट्ठे जलाये जा रहे थे. भोपाल में सचमुच 'मुर्दों के टीले' दिखाई दे रहे थे. वहां यह प्रतीक का मामला न था. प्रभावित भोपाल श्मशानी घुटन से भरा था. हवा अजब कसैली हो गयी थी. पेड़-पौधे या तो मुरझा गये थे या उनके पत्ते झड़ गये थे. वे कंकालों की तरह शून्य में ताक रहे थे. लानों की दूब कत्थई हो गयी थी. मनुष्य और पर्यावरण के रिश्ते आंखों से देखे जा सकते थे. सड़कों पर लोगों के जत्थे आंखें दबाये, दबी-खुली हाय के साथ अस्पतालों की और जा रहे थे या वाहनों से ले जाये जा रहे थे. बस्तियों की बस्तियां सूनी-पड़ी थी. घरों में प्रायः ताले लटक रहे थे. यहां-वहां बचे लोगों के चेहरों पर मुर्दे पुते हुए थे. इधर आकंठ तृप्त कार्बाइड-दैत्य चिमनियों के मृत्युदंड थामे दंभ से अविचल खड़ा था!

भोपाल ने सच्ची मानवता के दर्शन भी इसी वक्त किये. सैनिक छावनी के जवानों ने उस रात जो सेवाएं कीं, उन्हें भोपाल कभी नहीं भूलेगा. सेवारत ब्रिगेडियर मैनी खुद गैस से गंभीर रूप से प्रभावित हुए. लोग जगह-जगह चादर फैलाये मदद मांग रहे थे और पा रहे थे. भोपाल का दिल उस वक्त पिघला हुआ था. जरा कुरेदने पर बहने लगता था. नये भोपाल के जयप्रकाश अस्पताल में लोग घरों से इतना खाना पहुंचाते रहे कि खानेवाले कम पड़ गये. कपड़ों के ढेर लग गये. लोगों ने, स्कूल-कालेज के बच्चों ने, समाज सेवी संस्थाओं, डॉक्टरों-नर्सों ने जितनी तत्परता से अहर्निश सेवाएं कीं, उन्हें याद न करना सेवा का अपमान होगा. युवकों-बच्चों ने जिस तरह उल्टियां, पाखाने साफ किये हैं और जान छोड़कर सेवाएं की हैं—उसे दुबारा याद करते हुए भी मन भर आता है. सरकारी एजेंसियों में भी सक्रियता आ गयी थी. जगह-जगह कैंप लगाये गये, वाहन भी मरीजों को लाने, ले जाने में लगे थे. गरज कि पूरा शहर सेवा और संवेदना का घर बन गया था.

लेकिन बदकिस्मत भोपाल के त्रास का तो अब भी अंत न था. उस रात तो सिर्फ एक ही प्रेत जागा हुआ था. अब तो दिन निकलने लगे थे? यतीम बच्चे, बीमार-उखड़े लोग इधर त्राहि-त्राहि कर रहे थे और उधर वे चांडाल किसी और सोच में थे जो श्मशान में भी अपना हिस्सा मांगते हैं. कहते हैं, मौत के व्यापार के आगे सारे व्यापार स्थगित हो जाते हैं. मगर कुछ लोग होते हैं जिनके व्यापार मौत से ही शुरू होते हैं. गौतम बुद्ध को एक शव, रोगी और वृद्ध को देखकर वैराग्य हो गया था. नरमेध के साक्षात्कार ने अशोक का निर्दयी हृदय पिघला दिया था. मगर यहां यह हुआ कि अमेरिका से गिद्धों की तरह वकील उतर आये और अपढ़, दुखी, यतीमों को नोचने लगे. मनमाने वकालतनामे उनकी छाती पर चिपकाकर उनके फोटो खींचे. राहत के नाम पर दर्ज करने और देने के बीच की कीमतें वसूल हुईं. स्वार्थ और स्वार्थी संबंध उभर आये. छुटभैये नेताओं की बहार आ गयी और इस विकराल मानवीय त्रासदी में राजनीति ने जो पैंतरे दिखाये, वे तो ऐतिहासिक हैं!

आगे का किस्सा कहने से पहले, आइए, चलें उस हत्यारी डायन की तरफ, जिसे यूनियन कार्बाइड कहा जाता है. अमरीकी कंपनी का यह कारखाना 1969 में कायम हुआ था. टार्च के सेल बनाने के निरामिश उद्योग से इसने जमने की भूमिका बांधी. ईस्ट इंडिया कंपनी की तरह फिर अपने पैर पसारे और 1976 से इसमें कीटनाशक दवाइयां बनना शुरू हुईं. 'सेविन' नाम की यह दवाई खेती के कीड़े मारने के लिए है—शायद शर्त यह है कि कीड़े अमरीकी हों और आदमी भारत के! तभी तो दवाइयों का प्रमुख निर्यात अमरीका में होता रहा है, हिंदुस्तान के कीड़ों को तो नसीब ही नहीं हुई यह दवा. उनके मुकाम पर आदमी को रखकर इसका एक प्रयोग हो गया. सेविन 'मिथाइल आइसो साइनेट' नामक जहरीली गैस की मदद से बनती है, लेकिन उसके प्रभाव को तीव्र करने और सस्ते उत्पादन के लिए इसमें 'फासजीन' नामक भयंकर जहरीली गैस भी कुछ अंशों में मिलायी जाने लगी. इसी गैस का प्रयोग हिटलर ने दूसरे विश्वयुद्ध में यहूदियों का सफाया करने के लिए किया था. इस तरह के कारखाने के आसपास एहतियात के तौर पर पचास किलोमीटर तक कोई बस्ती नहीं होनी चाहिए—जैसा कि जार्जिया (अमेरिका) में है. वैसे भी विकसित देश ऐसे कारखाने लगाने की इजाजत नहीं देते हैं, लेकिन एशियाई लोग उनकी नजरों में शायद कीड़े-मकोड़ों से ज्यादा अहमियत नहीं रखते और शायद यहां के हुक्मरान भी औद्योगिक विकास के मायाजाल में फंसकर विदेशों का कूड़ा-करकट, जहर सब कुछ अपनी जमीन पर बिछा देने के लिए उनके आगे बिछे रहते हैं.

कारखाना भोपाल स्टेशन लाइन पर शहर से छह किलोमीटर दूर है. उसके आसपास घनी आबादी है. ठीक कारखाने के सामने सड़क से लगी सैकड़ों झुग्गियां हैं, जिन्हें पिछले साल जमीनी हक के पट्टे भी दिये गये हैं. गरीबों के लिए वे मौत के पट्टे ही साबित हुए. और भी कई लगी-लगायी बस्तियां हैं. इन्हीं बस्तियों ने सबसे ज्यादा मौतें भोगीं, सबसे ज्यादा दुष्प्रभावित हुईं.

कारखाने में गैस की रिसन के किसी भी खतरे का मुकाबला करने के लिए कास्टिक सोडे से भरे पानी के फव्वारे चलाने होते हैं, जो न तो उद्घाटन के समय चले थे और न तीन दिसंबर की रात को! हर छह मास में जो पाइप बदलने थे, वे पिछले दो सालों से नहीं बदले गये थे. उस पर तुर्रा यह कि सरकारी सुपरवाइजरों की फौज बाकायदा सुपरविजन करती है!

कहते हैं, दो दिसंबर की रात सवा नौ बजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कार्बाइड के चार गैस टैंकों में से एक से रिसन शुरू हो गयी थी. रात सवा ग्यारह बजे आंख की तकलीफ का पहला मरीज हमीदिया अस्पताल में पहुंचा. डॉक्टर ने कार्बाइड के डॉक्टर से पूछा कि यह क्या मामला है और इसका उपचार क्या है? कंपनी के डॉक्टर का कहना था कि खतरे की कोई बात नहीं. आंखों से पानी आता है. उसने शायद सामान्य उपचार की सलाह दी. सुनते हैं जब मामला पैनिक हो गया, तब भी प्रशासन को भी यहां के अधिकारियों ने यही बात कही. क्या उस ज़हरीली गैस या सेविन के अत्यंत प्राणघाती फार्मूले के बारे में वहां के अधिकारियों, डॉक्टरों तक को पता नहीं था? खुद वैज्ञानिक दल के प्रमुख डॉ. वरदराजन के इस बारे में परस्पर विरोधी वक्तव्य आये. वे भी फासजीन की उपस्थिति के बारे में संभावना ही प्रकट कर सके. लोग आशंकित थे कि यहां ऐसा क्या बन रहा था, जिसका प्रतिरोध न डॉक्टर की जानकारी में था और न अधिकारी ही असलियत बता पा रहे थे? अमरीका से आये वैज्ञानिक और डॉक्टर तक सही प्रतिरोधक औषधि के बारे में अनभिज्ञ थे. यह कितना दुस्साहसिक आपराधिक कर्म था, जो यहां किया जा रहा था?

कार्बाइड की एक प्रयोगशाला है, जिसपर कारखाने से ज्यादा लागत लगी है. उसके पास दो हैक्टेयर जमीन भी है और शाही गेस्ट हाउस भी. जाहिर है कि उसमें खानपान की अच्छी व्यवस्था होगी. सेविन का निर्यात विदेशों में प्रमुखतः अमरीका में होता है और प्रयोगशाला के वैज्ञानिक यहां भारतीय खेती के कीड़ों पर प्रयोग करते हैं. जिन कीड़ों के लिए दवाई बनाने में अमरीका की दिलचस्पी नहीं है, उन पर शोध कराने में उसे क्यों दिलचस्पी है? क्या किसी को पता है कि वहां कौन सी शोधें हो रही हैं? क्या शोध-संस्थान एक गुप्त सैनिक अड्डा होता है कि उसकी गतिविधियों के बारे में इतनी गोपनीयता बरती जाये?

ईस्ट इंडिया कंपनी के आने, पैर पसारने और फिर देश को गुलामी में रौंदने का इतिहास लोग भूले न होंगे. पुराना पाठ कभी-कभी याद कर लेना ठीक होता है!

भोपाल के लोगों का मन बहुत कच्चा हो गया था. अप्रत्याशित आकांक्षा से हर वक्त मन कांपता रहता था. रात में वाहनों की आवाज या लोगों की बातचीत या हलचल तक दहशत पैदा करती थी. आप शायद इस पर भरोसा न करें, लेकिन असल बात यह है कि—'जाके लागी सो लखे.' इधर लोग टूटे हुए थे और उधर तरह-तरह की खबरें आतीं कि जिनकी आंखों पर असर हुआ है, उनमें से कई अपनी आंखें खो देंगे. फलां ने कहा है कि बचे हुए लोगों में से कुछ को कैंसर हो सकता है, शहर के पानी में गैस का असर है, उसमें काफी मात्रा में नाइट्रोजन है, मछलियां मर रही हैं सब्जियों पर गैस का असर हुआ है, गैस का वंशानुगत प्रभाव हो सकता है, जिगर और फेफड़े के कई रोग हो सकते हैं, यूनियन कार्बाइड फिर चालू होगा और लोगों से भोपाल खाली कराया जायेगा आदि आदि... पचीसों. सरकार या तो बहुत हड़बड़ी में थी या उसकी कोई अपनी राजनीति थी कि वह हर बात का खंडन करती और जिस बात का खंडन करती, वही बात उभर कर सामने आ जाती. हाल यह था कि 'ज्यों ज्यों वो ढांकते गये, खुलता गया नकाब' भोपाल में सात सौ बसें बुलायी गयीं, जिनसे बाद में लोगों को कैंपों में या शहर के बाहर पहुंचाया गया. लेकिन अंत तक सरकार कहती रही कि ये बसें तो भोपाल में कुशल-क्षेम पूछने आनेवालों की वापसी के लिए बुलायी गयी हैं. भला जो साफ दिख रहा था, उस पर भरोसा कौन न करता? हर बात का खंडन भी पेचीदा और अंतर्विरोध से भरा था. खंडनों के साथ यह भी कहा जाता रहा कि पानी उबालकर पियें, सब्जी पोटेशियम परमैंगनेट से धोकर काम में लें. मछली बाजार बंद करवा दिये गये. अगर कहीं कोई असर न था तब ऐसा क्यों किया-कहा जा रहा था? लोग भोग रहे थे और भोगे हुए थे. इस वक्त जनता का अपना सहजानुभूत ज्ञान इतना तीव्र था कि सरकार का यांत्रिक ढांचा उसका मुकाबला नहीं कर सकता था. हमारे देश का राजनीतिक सोच कुछ इस तरह का बन गया है कि वह जनता को विश्वास में तो लेना चाहता है, मगर उसकी समझदारी और सहज ज्ञान पर भरोसा नहीं करता. इस अंतर्विरोध ने जनता के बीच से राजनीति के प्रति आस्था खत्म कर दी है. वह सब सुनती है मगर गुनती कुछ और ही है. जवाहरलाल जी कहा करते थे कि 'प्लेन टू थ इज द ग्रेटेस्ट डिप्लोमसी' यह वाक्य शायद भारतीय राजनीति भूल गयी है. भारत की जनता को पाखंड से बहुत नफरत है और राजनीति का यही शगल है.

और भोपाल तो सांस्कृतिक दृष्टि से भी बहुत दीक्षित है. आये दिन यहां नाटक होते हैं नाटक के लिए यहां शानदार मंच हैं, लेकिन इस बार पूरा भोपाल ही मंच था, जिस पर अभूतपूर्व महानाटक खेला गया! 'आस्था अभियान' जिसकी त्रासद परिणति थी, अधिकांश भोपाल का खाली हो जाना. भोपाल खाली न कराने के प्रशासन के नेक इरादे के बावजूद खाली कराने के पूरे प्रबंध थे. इतनी सावधानी और इतनी तैयारी, उस पर इतने उग्र नाटकीय प्रचार से लोगों का दिल दहल उठा. अगर कोई खतरा नहीं था तो वायु सेना को क्यों सचेत किया गया. नगर में सेना क्यों बुलायी गयी, खतरे के मौके पर सावधानी बरतने की हिदायतें कई बार क्यों दी गयीं. राज्य भर से आग बुझाने की दमकलें, पानी की बरसात के के लिए हेलीकोप्टर बुलाने और टट्टों से कारखाने के घेराव जैसी भयानक कार्रवाहियों क्यों की गयीं. इसके जरिए जो आस्था पैदा की जा रही थी, उसकी बजाय लोगों ने अपनी अनास्था को ही सुरक्षित समझा. उस वक्त ऐसा लग रहा था कि पता नहीं भोपाल पर फिर कौन सा कहर बरपा होना है? इस अवसर पर हुए महामिनिष्क्रमण की कहानी इतनी दर्दनाक और हिला देने वाली है जिसका कोई सानी नहीं. गरीब लोग अपना सर्वस्व पानी के मोल बेचकर भागे. इस मौके पर भी पूंजीपतियों ने गरीबों को जी भर कर लूटा. अब भी कई घरों में ताले पड़े हैं, इन्हें कौन खोलेगा?

एम. आई. सी. से कीड़े मारने की दवा 'सेविन' बनायी गयी. राजनीतिज्ञों के ऐसे भाषा भ्रंश से लगता है कि हम अपनी भाषा के सही अर्थ ही भूल जायेंगे. अत्यंत दुस्सह मानवीय पीड़ा की कीमत पर किसी भी वजह से इस तरह का राजनीतिक सुलूक भारत के अलावा कौन सा देश बर्दाश्त कर सकता था?

यह घटना का उपसंहार नहीं है. वह तो

□ मौत किसी को नहीं पहचानती, न आदमी को और न जानवर को

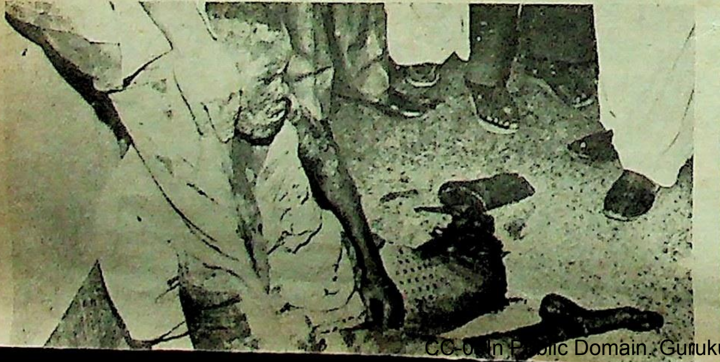

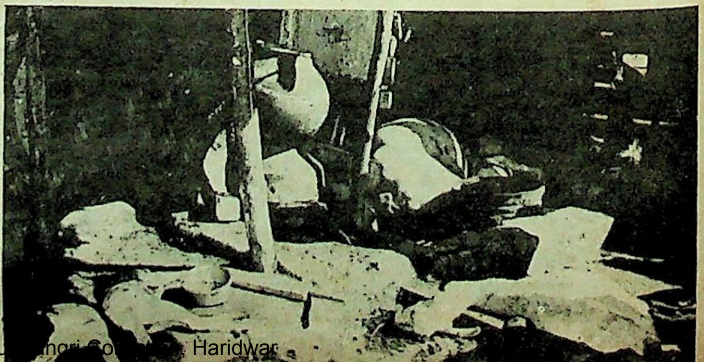

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तब होगा जब कि इस घटना से सीखकर हम अपने सोच, औद्योगिक ढांचे और दृष्टि में आमूल परिवर्तन करेंगे. हम एक घातक छलांग और हड़बड़ी की आधुनिकता में जी रहे हैं, जिसने उद्योग अपनाये, औद्योगिक संस्कृति नहीं. हिरोशिमा और नागासाकी के हादसे ने जापान का कायाकल्प कर दिया था. पूरे देश का चरित्र बदल गया था. उन नगरों के ध्वंस से एक सर्वथा नया अनपहचाना जापान पैदा हुआ था. क्या भोपाल के श्मशान से नया हिंदुस्तान जन्म ले सकेगा? अव्वल तो हमारे संवेदना वृत ही इतने संकरे हो गये हैं कि हिंदुस्तान के एक भाग की चिता, विनाश और त्रास से दूसरे हिस्से इस तरह अनुद्वेलित रहते हैं, गोया वे अलग देश हों. क्या इस तरह 'एक' होगा हिंदुस्तान? दर्द में भागीदारी के बिना कोई एक हो सकता है भला? मानवता के इतिहास में सबसे बड़ी रासायनिक त्रासदी के बावजूद मध्यप्रदेश का शोक न हो सका. इस पूरे चुनावी हल्ले में इस मानवीय पीड़ा पर नेताओं ने बात तक न की और अमरीका के वैज्ञानिक रो पड़े! जापान सरकार ने भोपाल के एक साधारण नागरिक द्वारा यहां की व्यथा-कथा लिख भर देने पर, दुखियारों में बांटने के लिए बने हुए कपड़ों की कई गठानें भेज दीं. और भोपाल में ही उन्हीं दिनों जगमगाती शादियां हुईं जब कि उस रात वाले हादसे में शहर के दूसरे भाग में एक कन्या विवाह-मंडप में अनब्याही रह गयी! एक संपादक को हादसे पर तीखी और मर्म बेधी संपादकीय लिख देने पर यह फोन आया..... "जी, आपने कमाल कर दिया कलम तोड़ दी." "धन्यवाद," "अब आपका सिर तोड़ दें तो?" इस तरह क्या सचाइयां सामने आ सकेंगी, आत्म विश्लेषण होगा? क्या पीड़ा और तड़प को लिख देना किसी लोककल्याणकारी स्वाधीन राष्ट्र में गुनाह होना चाहिए? जिसे जनता से प्यार होगा, वह दूसरी तरह का हिंदुस्तान बनाना चाहेगा. सारी त्रासदी और परवर्ती पाखंड और भ्रष्टाचारों की चर्चा करते हुए, उस हादसे की शिकार एक प्रबुद्ध महिला एक दिन तड़पकर बोली, "हम गलत प्लेनेट पर आ गये हैं." सचमुच? क्या सचमुच? हम तो गाते हैं—'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' और यह क्या कह रही हैं? क्या हिंदुस्तान के बेहतर बनने या आमूल बदलने की सारी उम्मीदें एक प्रबुद्ध नागरिक के मन से खत्म हो गयी हैं. एक लेखक ने बड़ी निराशा से मुझे लिखा कि लोग इस घटना को जल्द भूल जायेंगे. इस मुल्क की तहजीब और सामाजिकता को राजनीति के नेपाम ने अपने धुएं से स्थाई रूप से ढक लिया है! वे कौन-सी स्थितियां होंगी, वह कौन-सा झटका चाहिए हिंदुस्तान को कि वह ऐसा बने कि यहां जन्म लेना और रहना दुबारा गर्व का कारण बन सके? □

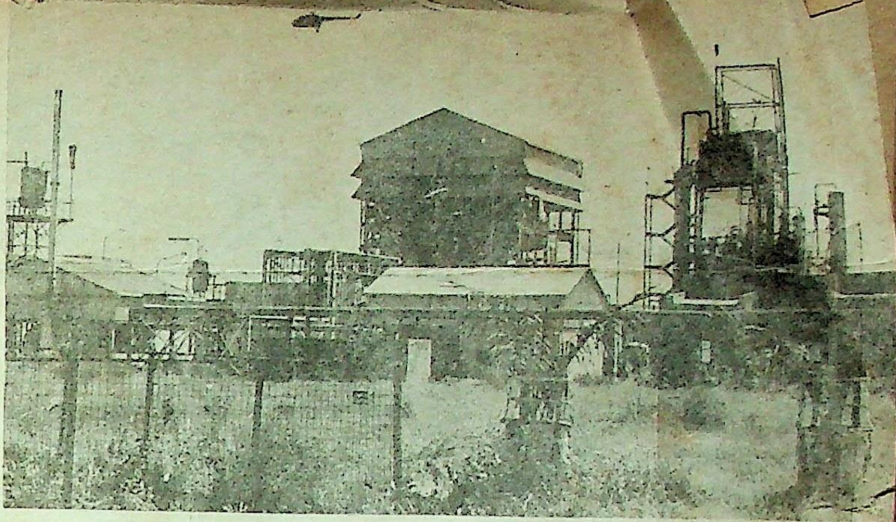

□ 'अभियान विश्वास' पर पानी छिड़कता वायुसेना का एक हेलीकोप्टर

एक श्मशान हुआ शहर

रमेश दवे

पूछता हूं हिरोशिमा और नागासाकी से—क्या ऐसा ही हुआ था तुम्हारे साथ भी, जब सोते-जागते मौत की पैशाचिक लपटों ने लील लिया था तुम्हें? क्या हिटलर के युद्धोन्मादी हिस्टीरिया से इसी तरह कोई दमघोंटू गैस घुस गयी थी उन लोगों के फेफड़ों में, जिन्हें हम इंसान कहते हैं? क्या वियतनाम में जब फेंके गये थे नापाक नेपाम बम, तब माताओं की पीठ पर झूलते बच्चे इसी तरह औंधे मुंह गिरी मां की लाश पर तड़प-तड़पकर कीड़ों की तरह झुलसे या मरे थे? ये सवाल तो आदमी के उस चंगेजी स्वभाव के प्रति हैं, जो युद्धों के वहशीपन से निकलते हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि मौत के आंकड़े उगलना केवल युद्धों का काम है. जब भी भभककर फूटता है कोई ज्वालामुखी, लावे से लपलपाती जबान निगल जाती है इसी तरह हजारों जीवन. जब भी धूजती है धरती और अचकचा कर गिरते हैं मकान, इसी तरह बदल जाते हैं मनुष्य मलबे में. जब भी सूझता है समंदर को कोई उन्माद, ऐसे ही कुछ सेकेंडों की कोई विकराल लहर खुले जबड़ों से आती है और भर ले जाती है जिंदा इंसानों को. मतलब यह कि पहाड़ हो, नदी हो, समंदर हो या आदमी की अपनी ही घृणाओं से पैदा हुआ युद्ध हो, गिने नहीं जाते जानवरों के शव, आंसू नहीं बहते जानवरों के शवों पर लेकिन आंसू और आंकड़ों की फसल जब गिनाती है तड़पकर मरते हुए इंसान, तो हमें लगता है हम जो बच गये हैं—हैं भी या जिंदा होकर भी कह नहीं पा रहे हों कि हम जिंदा हैं.

2 दिसंबर की रात भोपाल की हवा में कोई जहर घुसना शुरू हुआ. जहर पैदा करने वाले उस वक्त शायद यह नहीं जानते थे कि हवा एकदम इतनी जहरीली हो उठेगी. हवा और और जहरीली होती गयी, जहर पर काबिज लोग और और यह मानते गये कि इतना बड़ा शहर और इतना-सा जहर—पता भी नहीं चलेगा इसका. आकाशवाणी रात को लोरी गाकर सोयी थी और जब जागी तो उसने केवल मौत की भैरवी गायी.

दो और तीन दिसंबर के बीच की रात 12-30 बजे जब सोये हुए शहर का सन्नाटा चीरते हुए चीखा था सायरन—तो लोग यह जान ही नहीं पाये कि यह सायरन क्यों है और वे क्या करें? जिनके घरों के खुले दरवाजों से मौत की इस डंकदार हवा ने प्रवेश किया तो वे मिरच की धांस जैसी गंध से चौंक, उठे, गिरे, तड़पे और न ठीक से चीख पाये, न बचाओ-बचाओ का हल्ला कर पाये, न दर्द से कराह पाये, बस रोम-रोम से सहमे, सिहरे, और भय के मजबूत शिकंजों में जकड़े-जकड़े शायद निगाह की आखिरी रोशनी को उन्होंने अपने बीवी-बच्चों पर डाला, और आंखें चीर दीं. ये चिरी-चिरी आंखें मौत की सूचना तो देती थीं, मगर उनसे उनकी पुतलियां गायब थीं, लगता नहीं था कि सफेद मवाद भरे गड्ढों के आकार की ये आंखें वास्तव में आंखें हैं या मौत ने आंखों का ना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रूप दोनों दिया है. यह तो हाल था उनका जिनके पास रहने की वह जगह थी. जिसे मकान या घर कहते हैं—मगर फैक्टरी के नजदीक बनी झुग्गियों के पास तो घर या मकान जैसे शब्दों का एहसास ही नहीं था. हर तरह की हवा उनके यहां बगैर इजाजत घुसती है, आदमी तो अपने-अपने छलों की मनमानी उन पर करता ही है, प्रकृति भी हर मौसम में उन्हें रौंदे बिना नहीं रहती. सांसें घुटते लोग सिर पर पांव रखे भागे जरूर, मगर मौत की हवा आदमी के भागने से ज्यादा तेज थी—डकते, हिचकी लेते, सीना पकड़कर भारी-भारी सांस लेते लोग जब गिरते और एक आखिरी बेआवाज तड़प के साथ आंखें नटेर देते—तो उनकी इस बदहवास मौत पर रोनेवाला भी कौन? हर एक के माथे पर नाच रही थी मौत, भोपाल का पुराना शहर जिस तरफ रास्ता दिखा, उस तरफ भागा.

तीन दिसंबर और चार दिसंबर को अस्पताल बहुमंजिली मजार में बदल गये. आंखों से मवाद की शक्ल का कीचड़ बहाते या सूजी-सूजी आंखों में मिरची-की सी जलन लिये लोग अध-मुरदा हालत में आ रहे थे, दूसरी तरफ मौत के स्ट्रेचर और ट्रालियां हर मिनट इस तरह दौड़ रहे थे, मानों थोड़ी-सी देर होने पर भी मौत-ग्रस्त शरीर के लिए उठानेवाले भी नहीं मिलेंगे. तीन दिसंबर की सुबह लाशें समेट भी नहीं पा रही थी कि एक अफवाह का घिनौना धमाका हुआ और खबर फैली कि गैस फिर रिस रही है. सारी रात जागे लोग अपने-अपने घरों में जाकर बैठे भी नहीं होंगे कि फिर एक बदहवास हवा अफवाह की, और भोपाल की हर सड़क पर भागते इंसानों का रेला. गर्भिणी औरतें कभी गिरतीं, कभी भागतीं और रास्ते में ही अपने अखंड सौभाग्य की कांपती बाहों में झूल जातीं, किसने बच्चा अपनी मोटर में बिठा लिया, कौन किसके स्कूटर पर चढ़ बैठा, कौन औरत किस मर्द की सायकल पर सवार हो गयी, पता नहीं. जो ट्रक या लारियां चला रहे थे, उन्होंने अपने-अपने वाहन खड़े कर दिये, टेंपो, मिनी बस और उनकी छतें सब के सब भर-भरकर भाग चले थे; न जाने कहां, किसी को पता नहीं. शायद भाग रहे थे सबके सब वहां जहां मौत न आ सके. कोई गिरकर कुचला जा रहा था, किसी के शरीर पर लात धरे चल जा रहे थे लोग, न किसी के पास कुछ सुनने का वक्त था, न पूछने का. आदमी क्या मानों कोई धुंआ हो जो किस दहशत और खौफ की चिमनी से एकदम बाहर आ गया हो.

मौत के आंकड़ों पर बहस करना मौत की भयानकता का मजाक उड़ाना है. राहत के काम पर अविश्वास करना मानवीय संवेदन और सहानुभूति का अपमान करना है. सारा शहर दूसरे दिन एक सेवाग्राम हो गया था. कहीं नहीं लगता था कि यह विभिन्नता में एकता का देश है. लगता था, यह एकता में एकता का शहर है. हिंदू की चिता व मुसलमान के कफन मौत के सामने समान थे और शहर जो इस समय सेवा कर रहा था, उससे बढ़कर कोई पूजा, कोई इबादत, कोई नमाज हो नहीं सकती. छोटे-छोटे स्कूलों के बच्चे, कालिजों के नवयुवक, स्वयंसेवी संस्थाओं के परमार्थी, स्काउट, एन. सी. सी., फौज के जवान थे एक तरफ जो मुरदों को उठा रहे थे, मरीजों को बिठा या लिटा रहे थे; उनकी आंखें अपने हाथों से धो-धोकर दवा डाल रहे थे, उनकी उल्टी, मल, पेशाब तक उठा रहे थे. सेवा करता मनुष्य देखकर लगता था शायद भगवान कोई है तो वह यही है. भोपाल के तमाम अस्पताल के डॉक्टरों, छात्र-डॉक्टरों, नरसों, वार्डब्वायों और सफाईकर्मियों ने 24 घंटों के दिन-रात को अपनी मानवीय बाहों में भर लिया था मानों वे कह रहे हों, दिनरात और लंबे क्यों नहीं हो जाते? मनुष्यता का ऐसा अभूतपूर्व परिचय शायद ही कहीं और मिले. सेवा करते कई डॉक्टर व स्वयंसेवक बच्चे मरीजों में रहते-रहते गैस के जहरीले प्रभाव में आ गये, थे, उनकी आंखें भी जलने लगी थीं, शरीर टूट रहे थे, सांस भारी थी मगर सेवा की लगन नहीं टूटी, हिम्मत और हौसला नहीं टूटा.

सेवा, सहायता, शवदाह आदि के लगातार सिलसिले के बीच 11 दिसंबर को भोपाल फिर दहशत में आ गया. भोपाल में सैकड़ों बसें देखकर न जाने किस आशंका से यह शहर पुनः थर्राया. स्कूलों, कॉलिजों की छुट्टी ने इस थर्राहट को फिर किसी अनचीती ट्रेजेडी के सोच में डाल दिया. शंका, भय और अविश्वास से सिहरा विषपायी शहर अब आगे विष पीने की कूवत खो बैठा था. हर गली, मोहल्ले, सड़क, मकान, दूकान पर सवाल, डर और आतंक संदेह और बेबसी हर जबान सवाल थी, मगर जवाब कहां मिले, कौन दे? आखिर 12 दिसंबर को मुख्यमंत्री ने शहर को स्थायी रूप से त्रासदीमुक्त करने के लिए 'आस्था अभियान' या 'अभियान विश्वास' की घोषणा की. जनता को भविष्य में कोई डर, शक या आतंक न पालने की धीरजमयी सीख दी और कहा कि वैज्ञानिक, तकनीकी विशेषज्ञों एवं प्रशासकों की मौजूदगी में बची गैस को निष्प्रभावी किया जायेगा. और यह काम जीरोरिस्क फैक्टर पर किया जायेगा. मुख्यमंत्री ने शपथ ली कि वे पूरे अभियान के दौरान खुद फैक्टरी में मौजूद रहेंगे. फिर भी जिन्हें शक है, वे बाहर जा सकते हैं—उनके लिए बसें हैं और जो यहां रहना चाहते हैं, उनके लिए शासन शिविर लगा रहा है, मगर एक बार उड़ा या उखड़ा विश्वास इतनी आसानी से वापस आना मुश्किल था. सरकार के भरोसे जान छोड़कर कोई नहीं चाहता था इस जहर के शहर में रहना. काफिले उमड़ पड़े और 16 दिसंबर का दिन उगे, इसके पहले ही लगभग तीन लाख लोग रेलों की छतों तक मोटरों के टाप तक, ट्रकें-लारियां जिनको तो साधन मिला, लेकर भाग चले. बड़ी-बड़ी पॉश कालोनियों के सुरक्षित लोगों का भरोसा भी इस बार जवाब दे गया और उन्होंने भी या पास के शहर को चुन लिया या वे न केवल शहर बल्कि प्रदेश से ही बाहर चले गये. एक भागकर बस पकड़ते मित्र से पूछा, "कहां जा रहे हो?" बोला, "कुछ मत पूछो, मेरे घर में पांच मौतें हो चुकी हैं. अब मैं पांच सौ मील से कम पर सांस नहीं लूंगा." शासन बार-बार कह रहा था कोई खतरा नहीं है, मगर लोग बार-बार यही मान रहे थे कि हमें फिर किसी मौत के हवाले किया जा रहा है.

पांच दिन जो भोपाल में रहे, वे सवालों से भरे लोग थे, वे सरकार की घोषणा की धज्जी उड़ा रहे थे, कह रहे थे; किया जा रहा है गैस का उपयोग और कहा जा रहा है निष्प्रभावीकरण. बड़े-बड़े दिग्गज और वैज्ञानिक यह नहीं कह पा रहे गैस कौन सी थी, कितनी गैस रिसी और कितनी बची थी, कितनी मौत हुई, कितने मरीज हुए, कितने अंधे हुए, कितने अंधे होंगे और सबसे ज्यादा मजाक की बात तो यह कि कि एक बहुराष्ट्रीय आधुनिकता की तकनीकों से लैस कंपनी के पास गैस का सही माप देनेवाला तलमापक यंत्र तक नहीं.

पांच दिन 'अभियान विश्वास' ने पूरे चौकन्नेपन से शहर को जहररहित करने की कार्रवाई की—मगर सवाल हवा में अभी भी तैर रहे हैं. बुद्धिजीवियों ने जुलूस निकाला, सरकार व पूंजीपरस्त समाज को कटघरे में खड़ा किया, सरकार ने आयोग बिठा दिया—मगर सवाल मौतों के बारे में, अपाहिजों के बारे में, राहत के बारे में, पर्यावरण औद्योगीकरण, नगरीकरण आदि सबके बारे में कई-कई हैं. नयी सभ्यता के नाम पर भोपाल के ढाई हजार गरीब मासूम शहीद हुए हैं. बम के बाद तो संयुक्त राष्ट्र बनते हैं और वे बम न गिरने देने की गारंटी देते हैं. भोपाल की रसायन त्रासदी के ये शहीद क्या कोई नया राष्ट्रसंघ बनाने की प्रेरणा देंगे, जिससे औद्योगिक सभ्यता से रिसनेवाला जहर गरीबों को बेमौत मारने का विनाश कार्यक्रम देकर विकास के घिनौने सपने न दिखाये? भोपाल के सवाल अब सारे देश व सारी दुनिया के सवाल हैं—अगर इन सवालों को थैलियों या क्षतिपूर्ति के लालचभरे आंकड़ों में दबा दिया गया तो कई और भोपाल और कई और हिरोशिमा आगे भी बनते रहेंगे. □

सभी छायांकन : कमलेश जेमिनी

कालिदास का विद्रोही मेघ

मृदुला गर्ग

उद्योग की स्थापना का तात्पर्य होता है— प्रगति और विकास. मगर ज़रा-सी लापरवाही इसे किस प्रकार विनाश का कारण बना देती है, इसका ज्वलंत उदाहरण है हाल ही में भोपाल में हुआ नरसंहार, जो वस्तुतः समाप्त हो जाने के बावजूद अभी जारी है. जानकारों की जानकारी के अनुसार यह तो शुरुआत है, आगे और भी भयानक हादसे होने वाले हैं, और इन्हीं का चेतावनी भरा संकेत देती है यह मार्मिक कहानी——

किसी ने खबर दी है, इस वर्ष 'कालिदास सम्मान' कुमार गंधर्व को दिया गया है. तेरह फरवरी के दिन, एक भव्य समारोह में यह पुरस्कार कुमार जी को अर्पित किया जायेगा भोपाल में. भोपाल सांस्कृतिक नगरी है, उन सज्जन ने बतलाया है, वहां का हर कार्यक्रम भव्य होता है.

मौत भी? सामाजिक दबाव अवरुद्ध करता, इससे पहले ही सवाल उसके मुंह से निकल गया और. . . एक दुश्मन उसका और बन गया.

संस्कृति का संबंध जीवन से है, मृत्यु से नहीं, उन्होंने उसे झिड़का है. याद नहीं, शेक्सपियर ने कहा था, जो मनुष्य संगीत से सम्मोहित नहीं होता, उससे डरो, वह सहज ही खून कर सकता है. संस्कृति के बिना मनुष्य पशु समान है.

और गैस से घुटकर मरता हुआ आदमी? एक बार फिर सवाल ने समाज की मोहताजी नहीं की और दुश्मन, दुश्मन बना रहा.

कालिदास अगर आज जिंदा होते. . . . खुश होते कि उनके नाम का वर्चस्व कुमार गंधर्व जैसे नायाब कलाकार को मिला है. सुना है उसने कुमार गंधर्व को. पढ़ा है शेक्सपियर-कालिदास को. संगीत से उसे अरुचि नहीं. साहित्य से प्रेम है. शेक्सपियर उसे पशु का दर्जा नहीं दे सकते और कालिदास. . .

कालिदास अगर जीवित होते. . .न सही भोपाल में, उज्जैन में होते, तो क्या अपने उस मेघ के लिए, जिसे दूत बनाकर उन्होंने अपनी प्रेयसी के पास भेजा था, उनका मन हाहाकार न कर उठता? जब देखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि एक जहर के बादल के बीच वह बिला गया है संदेश ले जाता मेघ, प्रणय-विरह का नहीं, मृत्यु-वियोग का, आत्म-विस्मृत क्षण का नहीं, आत्म-दग्ध अनंत का. नहीं भेज पाते कालिदास उसे दूत बनाकर. नहीं रच पाते मेघदूत या शाकुंतल.

या रच देते तब भी? खबर ही नहीं पहुंचती उन तक उस दूषित मेघशृंखला की, उस अप्राकृतिक नरसंहार की?

यह भी तो हो सकता था कि मेघ खुद कह उठता उनसे, बहुत हुआ, अब और सहायता मैं मनुष्य की नहीं कर सकता. क्यों युद्ध छेड़ रखा है उसने प्रकृति से? प्रकृति ने बहुत सहा, बहुत चेताया, पर मानव नहीं चेता. बहुत हुआ कवि, अब प्रकृति को अपने बचाव के लिए हिंसा करनी होगी. मेरा दर्द तुम यदि समझ नहीं सकते, मेरी मजबूरी से द्रवित नहीं हो पाते तो कैसे कवि हो? जानते हो, अब मेरा बहाव निर्मल नहीं, अबाध नहीं. पथ अवरुद्ध है, मैला है, रुका-कटा, बोझ तले घुटा है. अपनी दिशा तलाशने के लिए मुझे लड़ना पड़ता है. पल-पल दूषित होना पड़ता है. रोज-रोज जहरीले कण पीने की बजाय एक बार ही समूचा जहर निगल जाऊंगा और बरसा दूंगा मनुष्य जाति पर. सर्वनाश होगा कवि, बचाये रख सकते हो अपनी प्रेयसी को तो बचा लो. तुम कवि हो, तुम्हारे मन में करुणा, माया-ममता शेष होगी, इसी से तुम्हें चेताये दे रहा हूं. मेरे रास्ते से हट जाओ. कहीं दूर निकल जाओ. न हो तो बनवास ले लो, पर लोगे कैसे बनवास? वन तो सब मनुष्य ने काट डाले. और उपाय नहीं है. धरती छोड़कर चले जाना होगा. जाओ वही करो. मृत्यु को अंगीकार कर लो; अपनी इच्छा से, संकल्प से, इच्छाशक्ति से. तुम्हारी मृत्यु भव्य होनी चाहिए, तुम्हारी प्रतिष्ठा के अनुरूप. जाओ, अभी निकल जाओ. कहीं मेरे प्रतिशोध की अदृश्य उंगलियां तुम्हारा गला न दबोच लें, तुम्हारी आवाज न छीन लें. बज्र गूंगेपन की यंत्रणा से क्षत-विक्षत, तुम मुंह खोलो और शब्द को अभिव्यक्ति देने को तरस जाओ. तेजाब मिले आंसुओं की दारुण व्यथा चेहरे पर अंकित करके तुम एक, केवल एक श्वास-प्रश्वास की अतृप्त इच्छा लिये मर जाओ. और तुम्हारी प्रेयसी. . . भूल जाओ उसे. तुम नहीं रहोगे तो तुम्हारा भ्रम बना रहेगा, इस अनत भूमंडल में कहीं तो निर्मल वायुमंडल होगा, जो तुम्हारे इष्ट को पालित-पोषित करता रहेगा.

मेघ की बात मान लेते कालिदास या नहीं मानते और उसके प्रतिशोध का पहला ग्रास बनते तो कैसे रचते वे मेघदूत, शाकुंतल और कुमार संभव? कैसे बनती भोपाल सांस्कृतिक नगरी?

नहीं-नहीं, यह सब उसने उन सज्जन से कहा नहीं. वे तो कब के नाराज होकर चले गये. अपनी समाजसेवी पत्नी के साथ, "राहत का बहुत काम किया मैंने, भोपाल के हादसे के बाद," उन्होंने कहा था उससे, "पर सच पूछिए तो जो हुआ, होना ही था. प्रगति और विकास की अनिवार्य शर्त है प्रदूषण, ज्यादा पाने के लिए कुछ त्याग तो करना ही पड़ता है."

"प्रदूषण नहीं शोषण; त्याग नहीं बलि," उसने कहा था, "कुछ के लाभ के लिए ज्यादा की नरबलि."

"भूखों मरने से तो अच्छा है," उनका जवाब था, "इतनी तादाद में बच्चे पैदा करेंगे तो सब को रोजगार कहां से मिलेगा?"

"यानी मरना उनका निश्चित है, भूख से मरें या जहर से. बीच के रास्ते का आविष्कार क्यों नहीं कर सकते हम?"

"हम केवल राहत पहुंचा सकते हैं," उन्होंने फिर कहा था, "विकास को रोक तो नहीं सकते. औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण हमारी नीतियां हैं और उनकी राह पर चलना अपनी कीमत मांगता है." यानी अभी और बहुत लोग मरेंगे; और अधिक पंगु होंगे. जहर उगलते कारखानों में रोजगार पाये मजदूरों के बच्चे भरपेट मरेंगे, राहत का काम और गति पकड़ेगा, उनसे जो बन पड़ेगा, वे करेंगे.

उसकी समझ में नहीं आया था, उन मृतकों के संबंधियों को उन्होंने क्या राहत दी होगी, जिन्हें उनके हिसाब से मरना ही चाहिए था. पति-पत्नी ने उसे समझाना चाहा था, समझाया था देर तक. वह समाज-सेवी नहीं है, सामाजिक तक नहीं है. समाज की पीड़ा से पीड़ित होना सामाजिक नहीं है. वह तो वैयक्तिक है, घोर व्यक्तिवादी. सामाजिक होने का मतलब है, समाज के कायदे-कानून मानकर चलना; उसके नियमों का निर्विवाद पालन करना; ऐसे प्रश्नों को दबाये रखना, जो समाज में बदगुमानी और बदहवासी पैदा करें, स्वीकृत मूल्यों को नकारें और लोगों को बार-बार सोचने पर मजबूर करें. तोड़कर फिर-फिर बनाना कितना मंहगा पड़ता है, जानती नहीं क्या? आखिर हमारा देश एक गरीब देश है. अमीर देशों ने वर्षों के कीमती प्रयोगों के बाद जो तरीके ईजाद किये हैं, उन्हीं को अपनाने में हमारा फायदा है. उनकी मेहनत का मुफ्त फल भोग सकते हैं हम. एक भव्य भविष्य की नींव रख सकते हैं, किसी और के कंधों पर. छोटे-मोटे हादसों से डर जाना कायरता है. सच पूछिए तो हमारे पास संस्कृति के सिवाय है क्या, जिसे हम प्रगति के बदले उन देशों को निर्यात कर सकें. संस्कृति है तो हम हैं, हमारा अस्तित्व है, हमारी अपनी विशिष्ट पहचान है, नहीं तो. . .

संस्कृति का मतलब क्या केवल नाच-गाना होता है? एक और असामाजिक, व्यक्तिनिष्ठ प्रश्न, सभ्य-शालीन समाज की बुदबुदाहट के घेरे को तोड़कर बाहर निकल आया.

तब वे सज्जन और नहीं ठहरे. सपत्नीक उठकर उसके घर से बाहर हो गये. शेक्सपियर तक का हवाला देना उन्हें गवारा नहीं हुआ. वैसे भी आज 1984 की अंतिम संध्या है. रात्रि का पहला पहर शुरू हो चुका है. वे दोनों किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम में हिस्सा बंटाने गये हैं. 1985 का शुभ स्वागत करके ही लौटेंगे. 1984 के अवसान तक वे संस्कृति से जुड़े रहेंगे. 1985 के प्रथम पदचिह्न अंकित होते ही भव्य भोज में सम्मिलित होंगे और नववर्ष के लिए तृप्त कामना लिये लौट आयेंगे. न-न, वे ज्यादा खाने-पीने वाले लोग नहीं हैं. कितना भी भव्य आयोजन क्यों न हो, भोजन वे अल्प ही करते हैं, पर सामाजिक-सांस्कृतिक जीव तो हैं न, परंपरा का उल्लंघन नहीं कर सकते. कालिदास सम्मान हर वर्ष दिया जाता है, इस वर्ष भी दिया जाना चाहिए, वे उसे बतला गये हैं. उसी नगरी भोपाल में, जो देश भर की सांस्कृतिक राजधानी है. यह मात्र संयोग है, दुखद संयोग, कि उसी नगरी में एक विकसित वैज्ञानिक देश के कारखाने से जहरीली गैस रिसकर हवा में जा मिली और उसे सांस में भरकर, चार-पांच हजार जन दम तोड़ गये और बीसेक हजार धीरे-धीरे तोड़ रहे हैं. कालिदास की मेघमाला का उससे दूर का संबंध नहीं है. और अकेले वे ही तो त्याग नहीं कर रहे. बरसों से इसी तरह लाखों लोग दूषित हवा और पानी का संस्पर्श पाकर धीरे-धीरे या अचानक मरते रहे हैं. हम मौत से नहीं डरते. हमारी संस्कृति हमें हमेशा उसके लिए तैयार रहना सिखाती है. मृत्यु का सामयिक, असामयिक होना क्या! मौत भी भला कभी समय से आती है? आह, असली अतिथि तो वही है, मृत्यु. ऐसा अतिथि, जिसका स्वागत नहीं किया जा सकता, झटपट तुरंत प्रयास करके आहार-उपहार नहीं जुटाया जा सकता, बस, आत्म-समर्पण कर देना होता है या दर्शक बने रहना होता है, निष्क्रिय, बेबस. मृत्यु तो अनादि है, अनंत है, अतिथि है; उसके लिए संस्कृति का स्थगन किसलिए?

दर्शन, साहित्य, अध्यात्म और सौंदर्यशास्त्र की मिली-जुली व्याख्या करके उन्होंने उसे देर तक समझाया और उठकर चले गये तब; जब उनके समझाने के बावजूद, उसके सवालों ने मर्यादा में बंधे रहना स्वीकार नहीं किया और बार-बार लक्ष्मण रेखा लांघकर बाहर झपटते रहे.

अब वह अपने कमरे में अकेली है, बिल्कुल अकेली. बाहर अंधेरा छा चुका है, प्राकृतिक अंधेरा. न-न, हंसिए मत. हम जिस युग में जी रहे हैं, उसने प्रकृति से अंधेरा भी छीन लिया है. बिजली के बल्बों की रोशनी उसे पराजित करने में सूरज को लज्जित करने लगी है, पर आज नहीं. मेघ ने कहा था न, वह प्रतिशोध लेगा. प्रकृति प्रतिहिंसा करेगी. कहा था मेघ ने या उसने कहा था या सिर्फ सोचा था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पंजाबी लघुकथा

विनाश के बाद

हमदर्दवीर नौशहरवी

तीन लाशों की पहचान हो चुकी थी. एक लाश की बाज़ू पर लिखा था—

'मानवता मेरा धर्म है.'

दूसरी की जेब से प्राप्त डायरी में लिखा हुआ था—'मैं भारत माता की संतान हूं.'

एक लाश का सिर धड़ से अलग था.

एक की लाश मिल ही न सकी.

भयावह रेल दुर्घटना हुई थी. बहत्तर यात्री मारे गये थे. इनमें से जो हरियाणा प्रांत से संबंधित थे, उन्हें हरियाणा सरकार ने एक-एक हजार रुपये की तत्काल सहायता की घोषणा की. . .जो महाराष्ट्र के थे, उन्हें महाराष्ट्र सरकार ने दो-दो हजार रुपये की सहायता की घोषणा की.. . .इसी तरह आंध्र, उड़ीसा, बिहार आदि प्रांतीय सरकारों ने भी मृतकों के परिवारों को सहायता के लिए राहत की घोषणाएं कीं.

बंगला परिषद ने बंगला भाषी मृतकों के परिवारों की सहायता की घोषणा की. कन्नड़ भाषी मृतकों के परिवारों की सहायता की घोषणा कन्नड़ परिषद ने की. सभी ने अपने जाति-बंधुओं के परिवारों के लिए सहायता कोष एकत्र किये. हिंदू, ईसाई, बौद्ध, जैन, मुसलमान, सिख आदि के परिवारों की सहायता के लिए धर्म-संस्थाओं ने हाथ आगे बढ़ाये, मगर जिस लाश की बाज़ू पर खुदा था—'मानवता मेरा धर्म है' उसके बेसहारा बीवी-बच्चों की सहायता के लिए किसी ने भी न राहत की घोषणा की, न सहायता की.

जिस लाश की जेब से मिली डायरी में लिखा था—'मैं भारतमाता की संतान हूं.' उसके विवश परिवार के लिए भी कोई मददगार हाथ आगे नहीं बढ़ा.

जिस लाश का सिर धड़ से गायब था, वह लावारिस था, पर उसके हिस्से की राहत पाने के लिए भी एक वारिस आ ही पहुंचा.

"बेटा जाते समय मुझसे मिलकर भी न गया. . .बुढ़ापे में मुझे अकेला छोड़ गया! . . . हाय, अपना चेहरा भी छिपाकर ले गया." अविवाहित बूढ़े की चीत्कारें समूचे वातावरण को भाव विह्वल कर रही थीं.

एक लाश मिल नहीं सकी थी. फिर भी विभिन्न प्रांतों से कितने वारिस आ पहुंचे. . . कि अहमद मेरा भाई था. . .कश्मीरा मेरा दामाद था. . . रामू से मेरी अभी-अभी सगाई हुई थी. . .रेड्डी से अभी चार दिन पहले ही मेरी शादी हुई थी! . . .आभार चैटर्जी दा! . . . हाय! . . . □

अनुवाद : सुरजीत सिंह 'विषाद'

बाहर अंधेरा बिजली की बत्तियों को लील गया है, इतना तो सच है, आंखों दीखता सच, मेघ आसमान से नीचे उतर आया है और धरती से जरा ऊपर तंबू की तरह तन गया है. कोहरे ने बिजली के बल्व की नाकाबंदी कर रखी है. धुंध में कैद वह नामर्द-सा लटका है और हाथ भर दूरी तक रोशनी नहीं फेंक पा रहा.

वह खिड़की के सामने बैठी है, अकेली. अंधेरे की भागीदार. भीतर कमरे की बत्ती भी उसने बुझा दी है. अब कालिदास का विद्रोही मेघ ही उसका साथी है.

मेघ कह रहा है और वह सुन रही है. . . .अब मैं न कभी बरसूंगा, न धरती से उठकर आसमान में तैरूंगा, न हवा के साथ-साथ बहकर तुम्हारी सांसों को तरोताजा करूंगा. यह 1984 के अवसान का नहीं, मानव जाति के अवसान का अंधेरा है. चार-छह घंटों बाद जब 1985 की सुबह होगी, तब तुम देखना, अंधेरा ऐसे ही कायम रहेगा. मैं और मेरे साथ हवा, यहीं धरती से एक हाथ ऊपर कैद रहेगी.

सूरज ? नहीं, सूरज अब कभी नहीं निकलेगा. जब-जब कारखाने जहर उगलेंगे, सर्द हवा उसे नीचे खींचे रहेगी. धूप होगी नहीं तो जहर का धुआं भाप बनकर ऊपर कैसे उठेगा, यहीं बिछा रहेगा तुम्हारे सिरों के ऊपर और धंसता जायेगा लगातार तुम्हारे फेफड़ों के अंदर.

क्रूर ? कौन है ? नहीं, यह क्रूरता नहीं प्रतिबद्धता है मेरी, प्रकृति से, भूमंडल से, सच कहूं तो मानवजाति से. क्रूर नहीं हूं मैं. मनुष्य की तरह बधिर-जड़-निर्मम कदापि नहीं. मेरे यहां सुनवाई है. पश्चाताप अकेला लेकिन काफी नहीं होगा. युक्ति की, आविष्कार की, मानवीयता की बात करनी होगी, तभी तुम बरी हो सकते हो. विकल्प तुम्हारे अपने हाथ में है. अपने लिए खुद सोचो, तय करो, उद्योग तंत्र के हाथों बिको नहीं. अपनी स्वाधीनता का ऐलान कर दो, तुम बच जाओगे. मैं अपने देश अंतरिक्ष को लौट जाऊंगा, तुम अपनी धरती के एकछत्र अधिकारी होगे.

बोलो, चुनना तुम्हीं को है, क्या चुनना चाहते हो, मेहनतकश जिंदगी या रिस-रिसकर रेंगती मौत ?

क्या कह रहे हो मेघ, मैं कोई राजनेता नहीं. मेरे चुनने से क्या होगा? राजतंत्र और उद्योग तंत्र का गठबंधन तोड़ने का अधिकार मुझे नहीं; उन्हें है, जो जहर के बादलों के घिरते-घिरते सुरक्षित भाग खड़े हो सकते हैं; जिनके हाथ में सत्ता है; जिनके घर जहरीले कारखानों से दूर बनाये जाते हैं; जो सांस्कृतिक नगरी भोपाल में भव्य समारोह करने की सामर्थ्य रखते हैं; लाशों से पटे चौराहों को जल्द से जल्द साफ करके.

उसका तर्क सुन मेघ हंस दिया. बिके हुए देश का कोई राजनेता नहीं होता, कोई सत्ताधारी नहीं होता. आज वे बचे रहे तो तुम क्या सोचती हो, कल भी बचे रहेंगे. प्रकृति का प्रतिशोध बहुत भयानक होता है. देख नहीं रहीं? वह देखो. . . . .

उसने देखा, चारों दिशाओं से एक साथ गोल-गोल घुमड़ते स्याह बादल उठ रहे हैं और बेझिझक एक दूसरे की तरफ फैलते बढ़े चले जा रहे हैं. . . .

तब उसने समझा, स्याही और अंधेरे के बीच कितना फर्क होता है. इतनी देर तक उसकी आंखों के सामने अंधेरा ही तो था, पर उस अंधेरे में भी एक फैलाव था. साफ दिखलाई न पड़ने पर भी पेड़-पौधों का एहसास था. अब सब कुछ मिट गया, अंधेरा तक.

घबराकर उसने खिड़की खोल दी. हवा की बजाय धुआं उसके फेफड़ों में घुसा और फिर बाहर नहीं निकला. पूरा दम लगाकर उसने सांस लेने की कोशिश की. . . . . यह भोपाल का जयप्रकाश नगर नहीं, दिल्ली का भव्य महात्मा गांधी मार्ग है. . . . यहां सांस क्यों नहीं आ रही ? इस बार सवाल को जबान देने की ताकत उसमें नहीं थी.

पानी-पानी! उसके होंठ खुले, पर बुदबुदा तक न सके. बस, याचना में खुले रहे. अनदेखती आंखों में एक आग भभक उठी और छाती-गले-पेट में आग से आग मिली, पर धुआं तक नहीं उठा. देह का हर सिरा चिता की लकड़ी बन गयी और उसका शरीर, एक-एक अवयव करके उसमें जलने लगा. आंसू निकलने से पहले सूख गये. बेआवाज खांसी के दमघोंटू फंदे में बेहाल होकर वह पीछे को लुढ़क गयी.

उसके चेहरे पर कुछ शीतल छींटे पड़े. सांस फिर भी नहीं आयी, पर आंखों की जलन कुछ कम हो गयी. देखा तो उसने कुछ भी नहीं, पर पूरी शिद्दत के साथ महसूस किया कि कालिदास का वह सांवला प्रणयी मेघ खुली खिड़की की राह उसके कमरे में घुस आया है और अपने अपरिहार्य प्रतिशोध के निर्मम आघात पर खुद रो दिया है, ठीक उसके चेहरे से सटकर. □

● सी-1/9 सफदरजंग विस्तार क्षेत्र, नयी दिल्ली-110016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहर जिन पर अंगार बरसे

वीरेंद्र जैन

प्रकृति सुख तो देती है पर कभी-कभी दुख भी. तूफान, भूचाल, आंधी, बाढ़ आदि मौत की तरह आते हैं और लील जाते हैं उस क्षेत्र का समूचा संसार! और अब ऐसा होता है तो क्या कुछ बीतता है, क्या कुछ टूट जाता है, बिगड़ जाता है—लोगों पर, पेड़-पौधों पर, धरती पर?—इस क्रम में इस पृष्ठ पर प्रस्तुत है, ज्वालामुखी के अट्टहासपूर्ण विस्फोट का खेल और अगले पृष्ठों में प्रकृति द्वारा जारी महाविनाश के संदर्भ में लिखी गयी कुछ संवेदनशील रचनाएं—

सन् 79 का साल था. अगस्त का महीना. इटली के प्राचीन नगरों हरकुलेनियम और पांपियाई के पड़ोस के ज्वालामुखी विसूवियस में कुछ हड़कंप हुई, हल्की-सी हलचल, धुएं के कुछ बादल आसमान पर घिरे और मंडराये, पर किसी ने उन पर ध्यान नहीं दिया. ध्यान कोई दे भी कैसे जब विसूवियस पर आये दिन धुएं के बादल मंडराया करते थे. जैसे वे आज भी मंडराया करते हैं. पर जैसे ही 24 अगस्त का दिन निकला, विसूवियस की अंतर की आवाजें कुछ मुखर हुईं और जसे-जैसे दिन चढ़ा वैसे ही वैसे अघट घटनाएं घट चलीं. यकायक धुएं के बादल आसमान पर घिर आये, घिरते चले गये. हजारों तोपों के दगने की आवाजें एक साथ दिशाओं में गूंज उठीं और लोगों के कानों के परदे फट चले, दिल दहल उठे. लोगों ने एक-दूसरे को विस्मय से देखा, किसी के पास उन बिन पूछे सवालों का उत्तर न था. लोगों ने पृथ्वी की ओर देखा फिर आसमान की ओर, पृथ्वी थर-थर कांप रही थी, भीतर ही भीतर घुमड़ती, आसमान आग की लपटें बखेर रहा था, धुएं के काले मेघों में बिजलियां कौंध रही थीं.

लोग अनायास भागे. बाहर के लोग घरों के भीतर, घरों के लोग मैदानों में बाहर. मैदानों में आग बरस रही थी. घरों में गंधक की तेज गंध कोनों-कतरों तक को भरे जा रही थी. दोनों नगरों का तजरबा अपना-अपना था, दोरुखा, एक-दूसरे से भिन्न. हरकुलेनियम को जमीन ने गलाया, पांपियाई को आसमान ने. हरकुलेनियम लावा का शिकार हुआ, पांपियाई लापिल्ली का.

लावा विविध खनिजों से बनी पिघली चट्टानों की धारा होती है जो ठंडी होते ही चिकनी शिला बन जाती है, लापिल्ली अंगार के साथ, राख के साथ पृथ्वी की फटी छाती से फेंकी जाकर टूटी नन्हीं चट्टानों के साथ बरसने वाली आग होती है जो नगरों को जिंदा दरगोद कर देने की ताकत रखती है.

खनिजों और चट्टानों की पिघली हुई अजस्र धारा हरकुलेनियम के राज मार्गों, उसकी गलियों से होती हुई घरों के भीतर बह चली थी और घर-बाहर सर्वत्र के प्राणी जलकर राख हो गये थे. सड़कों और गलियों की सतहें पिघली चट्टानों के चलते हुए मलवे से ऊंची होने लगीं और धीरे-धीरे घरों की छतों की ऊंचाई तक जा पहुंचीं. लोग इधर से उधर भागे मगर त्राण कहीं नहीं मिला. जो जहां पहुंचा वहीं दफन हो गया. नगरों का एक आदमी भागकर ऐसा न बचा जो अपने पर बीती कहानी कहीं दूसरे से कह पाता. जिन लोगों ने मीलों दूर समुंदर की सतह पर बंधे डोलते जहाजों से नगरों का इस प्रकार नष्ट होना देखा बस वही कहानी कहने को जिंदा रह गये और उनमें से भी वस्तुतः सभी नहीं, बहुत थोड़े, जो दूर की लहरों पर क्षितिजावलंबी हो लपटों का यह मारक व्यापार देख रहे थे वरना तीर का समुंदर मीलों दूर तक जैसे बड़वानल से खौल उठा था और उसके जंतु जल-जलकर निर्जीव हो उछलती लहरों में बहते जा रहे थे. रोम का प्रसिद्ध इतिहासकार प्लिनी स्वयं उस आग में जलकर इतिहास की घटना बन गया..

पांपेई लावा का नहीं, 'लापिल्ली' का शिकार हुआ. लोग पार्कों में पड़े थे, गरम घरों में गरमी से निकल मैदानों में रम रहे थे, बाजारों में बेच-खरीद रहे थे कि सहसा कर्णभेदी विस्फोट सुनाई पड़ा और धुएं के बादलों में लिपटी आग की लपटें नागों के उठे फैले फनों की भांति आसमान चाटने लगीं. धुएं के बादल ऊंचे चढ़ चले, इतने ऊंचे कि दूर सीरिया के लोगों ने, मिस्र के, अफ्रीका के लोगों ने, भूमध्यसागर पार से उन्हें आसमान में फैलते, उसे काला करते देखा था.

पांपियाई के लोगों को पहले तो लगा कि जैसे पाउडर-सी कोई हलकी राख हलके ही बरस रही है.

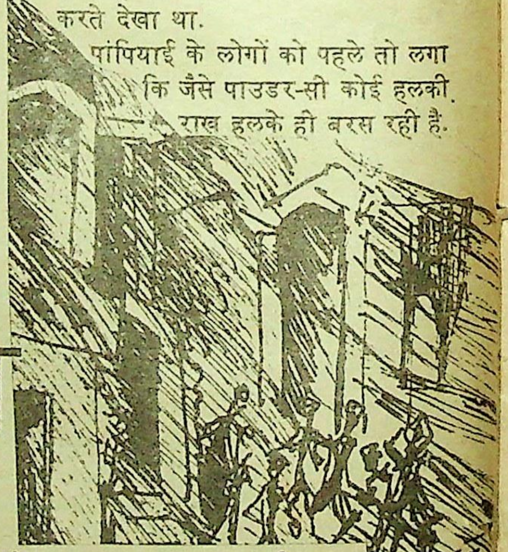

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उन्होंने अपने कंधों से, हाथों से, टांगों से उस राख को हलके-हलके पोंछ दिया पर शीघ्र ही वह राख भारी हो चली—कुछ गरम, फिर ज्यादा गरम और फिर आसमान से पत्थरों के अंगार बरसने लगे.

लोग भागें कहां? किसी को पता न था. पर भागे सब. जहां जिसको राह मिली वहीं भागा. बाहर अंगार बरस रहे थे और भीतर गंध का धुआं सर्वत्र फैलता जा रहा था. कुछ समय कपड़ों में सांस की राहों को ढंक-ढंककर प्राणों की रक्षा की पर कब तक? दम घुट गये, कोई किसी को न बचा सका.

अभी बरसती राख जलते अंगार भी न बन पाई थी कि आसमान के झुलसे हुए पक्षी नीचे गिरने लगे थे, पशु अनागत भय से मांदों की ओर भाग चले थे, मनुष्य शंकित कुछ सोच न पाया था कि अगला कदम किधर को उठाये, और अब अपने ही घरों में उसे यकायक भस्मीभूत होकर दम घुटकर सदा के लिए समाधिस्थ हो जाना पड़ा.

सत्रह सदियों बाद ज्यों का त्यों पुराविदों ने हरकुलेनियम और पांपियाई के भग्न स्तूपों को जब खोद निकाला तब लोगों ने देखा कि वहां के निवासियों का जीवन धागा यकायक टूट गया था, जो जैसा रहा था वैसा ही रह गया था, वैसा ही खोदकर निकाला भी गया.

एक कमरे में कुत्ता जंजीर से बंधा था. नीचे का धरातल जब लावा से उठने लगा तब वह उठता हुआ जंजीर के साथ ही छत तक जा पहुंचा और वहीं झुलसा हुआ मरा पड़ा मिला था. हरकुलीज के द्वार के पास एक अस्थि पंजर पड़ा था जिसके हाथों के आसपास सोने-चांदी के सिक्के बिखरे पड़े थे जिन्हें समेटने का, लगता था वह मरकर भी समेटने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा था. शूकरी अधलेटी अपने बच्चों को दूध पिला रही थी तभी ज्वाल-धारा आ धमकी और स्तनों पर झुके बच्चे और अधलेटी मां सब झुलसकर मर गये. माता-पिता और बच्चे, परिवार के परिवार, घर में जो कुछ मिला, अनुपाततः कीमती, उसे उठाकर बाहर भागे और सहसा मर गये थे, चीजें बिखरी पड़ी थीं. कितनी ही माताएं अपने बच्चों को लिए कपड़ों की तहों से अपनी और बच्चे की आखिरी दम तक गंधक के धुएं से रक्षा करती मर मिटी थीं. और दो युवतियां खासा सामान लेकर, सोने-चांदी भरी पिटारियां लेकर, भागी थीं पर नगर के द्वार तक पहुंचते-पहुंचते सिक्कों के साथ ही पिघल गयी थीं.

हरकुलिस के द्वार का दृश्य अत्यंत बीभत्स था. लाशें एक पर एक गिरी पड़ी थीं. लगता है जैसे मृत्यु नगर-द्वार का प्रहरी बन खड़ी हो गयी थी और जैसे-जैसे लोग आते गये अपने झोले में वह उन्हें डालती गयी.

नरबलि का कुआं

स्पेन की राजधानी माद्रिद में 1863 में एक डायरी पुरातत्वविदों को मिली. डायरी युकातान के आर्चबिशप दिएगो दे लांदा ने लिखी थी, प्रायः तीन सौ साल पहले 1566 में. दे लांदा ने मय ख्यातों के आधार पर लिखा था—

'जब-जब देश में अकाल पड़ता, उस पर संकट आता, तब-तब पुजारियों और साधारण जनता का, पाताल के देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जुलूस निकलता. पुजारी कीमती और पवित्र चढ़ावे की वस्तुएं लिए जाते और उन्हें बलि के कुएं में झोंक देते. चढ़ावे की इन वस्तुओं में लावण्यवती सुंदरियां होतीं, युद्ध में पकड़े तरुण होते.

'देश के स्वामियों और श्रीमानों की रीति थी—साठ दिन संयमपूर्वक उपवास कर वे पौ फटते ही बलि के कुएं पर जा पहुंचते. फिर उनमें से प्रत्येक स्वामी और श्रीमान इंडियन (रेड इंडियन) जाति की अपनी स्त्रियां कुएं में यह कहकर डाल देते कि देवता से मांगना कि स्वामी का साल उसके मनोरथों को पूरा करे.

'हाथ-पैरों से निर्बंध नारियां धमाके के साथ तेजी से जल में गिरतीं. अगले दोपहर उनमें से जो चिल्लाकर पुकार सकती थीं, पुकारतीं, ऊपर से डोरे लटका दिये जाते. जब वे अधमरी ऊपर आतीं, उनके चारों ओर अलाव जला दिये जाते, सुगंधित द्रव्यों का धुआं कर दिया जाता. जब धीरे-धीरे वे होश में आतीं तब कहतीं—नीचे हमारी जाति के अनेक लोग हैं, उन्होंने हमारा स्वागत किया था. जब वे उन्हें देखने को सिर ऊपर करतीं तब उनपर मार पड़ती और जब चोट से तिलमिलाकर वे अपने सिर नीचे झुकातीं तब उन्हें लगता कि नीचे अतल गहराइयां और गढ़े दिखाई पड़ रहे हैं और तब नीचे वाले लोग स्वामियों के वर्ष-फल के संबंध में उनके प्रश्नों के उत्तर देते.'

इस बलि-कूप को 1885-90 में टाम्सन ने खोज निकाला. किस तरह वह वहां पहुंचा, यह अपने आप में कम रोमांचपूर्ण नहीं है. लेकिन चिचेन इत्जा के उस पवित्र बलि-कूप में सबसे अधिक महत्व की मिली वस्तुओं में प्रधान नर-कंकाल थे जिनमें अधिक संख्या नारी अस्थि-पंजरों की थी और उनसे भी कहीं अधिक दिलचस्प एक खोपड़ी थी, बूढ़े मर्द की खोपड़ी. बूढ़े आदमी का भोग कूप का देवता कभी स्वीकार नहीं करता था, इससे स्पष्ट है कि बूढ़े आदमी को कूप में डाला जाना पुजारियों को सम्मत न रहा होगा.

क्या यह संभव है कि कोई जवान मर्द या लड़की अपने भाग्य के साथ क्रूर पुरोहितों को भी एक झटके में बलिकूप के देव की भेंट के लिए घसीटती चली गयी हो? □

प्रस्तुति : वीज

एक कमरे में स्वामिनी और कुत्ता दोनों बंद थे. अपने प्रिय श्वान को लिये स्वामिनी संभवतः घर से बाहर भागी थी परंतु जब बाहर की गंध से दम घुटने लगा तब वह कुत्ते को लिए कमरे के भीतर घुसी और कमरे का दरवाजा भीतर से बंद कर लिया. कमरे के भीतर ही उसका दम घुट गया. अभी कुत्ता मरा नहीं था. स्वामिभक्त कुत्ते ने स्वामिनी का अंग चिचोड़ लिया, स्वामिनी की हड्डियां बिखरी पड़ी मिलीं और कुत्ते का अघाया तन अनंत निद्रा में सोया मिला. सात बच्चे एक ही कमरे में खेल रहे थे. खेलते ही खेलते सातों एक साथ दम घुटने से मर गये.

यह मृत्यु का तांडव, उसका मारण कार्य इतने वेग से हुआ था कि चूल्हे पर पकती रोटियां पकती ही रह गयी थीं, मेजों पर रखी मोम की मुहरें रखी ही रह गयी थीं, ग्रंथागारों में पेपीरस कागज के ग्रंथ पढ़े जाते खुले ही रह गये थे. सरायों में मेजों पर शराबें चुनी थीं, खाने चुने थे, लोग खाकर जो पैसे गिनकर मालिक को उसके बिलों का भुगतान कर चले गये थे सो पैसे काउंटर पर पड़े थे. सराय की दीवार प्रेमियों, कामियों की कविताओं से अब भी भरी थीं, खोदकर निकाले जाकर सत्रह सदियों बाद भी.

और उस प्रसंग की चर्चा कैसे करते बने जिसमें मृत्यु के प्रकरण का ही उल्लेख हो? एक मरे हुए व्यक्ति के ताबूत को दफनाने के लिए उसके परिवार के लोग और मित्र-समुदाय कब्रिस्तान में उपस्थित थे. अंत्येष्टि क्रियाएं संपन्न हो रही थीं कि पांपियाई नगर के विनाश का प्रकरण शुरू हुआ और मरे को दफनाने वाले स्वयं जिंदा दफन हो गये.

समुंदर के किनारे जहां आज नेपल्स का विशाल नगर है, वहां से गुजरनेवाले राही आज भी राह टेढ़ी होने पर भी, उस बियाबां की ओर मचल पड़ते हैं और सभ्यता के, समृद्धि और शालीनता के, खड़े भग्न स्तूप देख आहें भरते निश्चित दिशाओं की ओर लौट जाते हैं. □

संदर्भ : पुरातत्व का रोमांस : भ.श. उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पॉम्पियाई के अंतिम दिन

लार्ड लिटन

क्या स्थिति थी पांपियाई की विनाश से पहले . . .? किस तरह के छल-छद्म में लिप्त थे वहां के लोग... और कि क्या किसी को इस विनाशलीला का पूर्वानुमान भी हो गया था. . .? इस शहर के ध्वंसावशेषों को देखकर द्रवित हो जाने पर लिखे गये उपन्यास का एक महत्वपूर्ण अंश कि प्रकृति का विकराल रूप मनुष्य को किस प्रकार असहाय कर छोड़ता है . . .

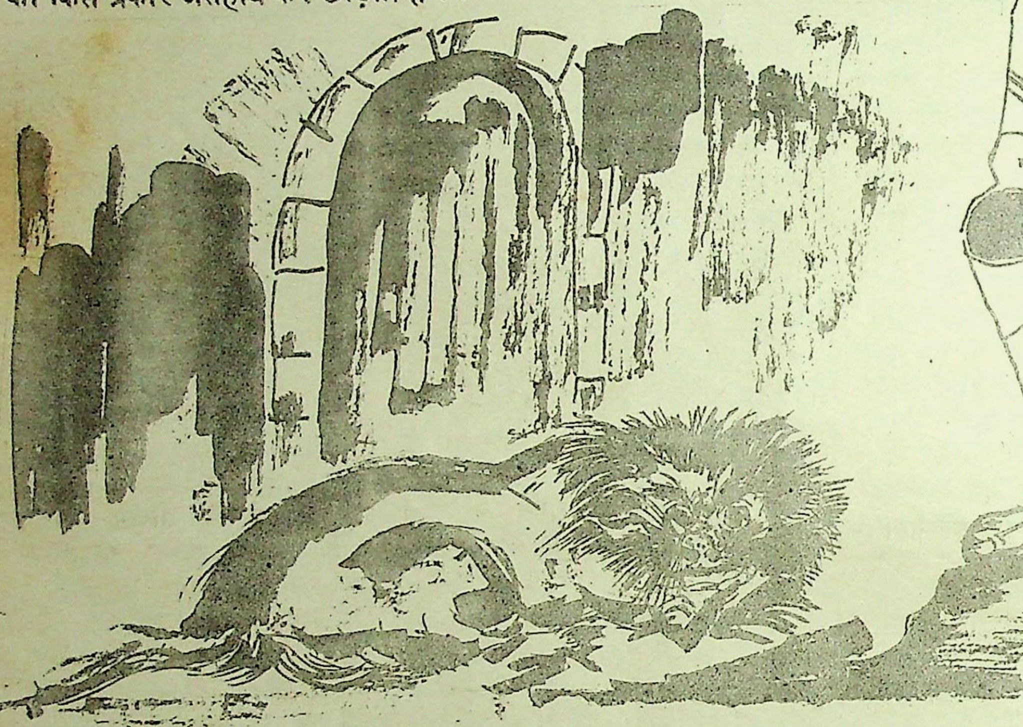

कुलीन, सुशिक्षित, संपन्न, यूनानी वीर ग्लाकस का विवाह यूनानी सुंदरी आयोनी के साथ तय हुआ तो अलग-अलग स्त्री-पुरुषों पर इसकी प्रतिक्रिया भी तरह-तरह की हुई. जूलिया इस खबर को सुनकर जल मरी. वह तुरंत तांत्रिक आर्बेसिस के पास गयी कि उससे कोई वशीकरण औषधि ले आये जिसे पिलाकर वह ग्लाकस को अपने वश में कर सके. आर्बेसिस खुद आयोनी पर मरता था. उसने मौके का फायदा उठाया और वशीकरण औषधि के नाम पर उसने जूलिया को विष पकड़ा दिया कि ग्लाकस मरे तो उसका रास्ता साफ हो.

जूलिया ने अपनी तांत्रिक दवा का रहस्य ग्लाकस की दासी को बता दिया. उसे क्या पता था कि दासी नीदिया खुद ग्लाकस पर मरती है. नीदिया ने वह दवा रात में हथिया ली और सवेरे अपने मालिक को शराब में मिलाकर पिला दी. लेकिन दासी के वश में होने की बजाय ग्लाकस पागल हो गया. पागलपन में वह शहर के चक्कर लगाने लगा.

एक दिन रात में आर्बेसिस ने आयोनी के भाई की हत्या कर दी क्योंकि वही उन दोनों के बीच में बाधा डालता था. लाश को बगीचे में डाल वह ग्लाकस को पकड़ लाया और खूनी तलवार उसके हाथ में पकड़ाकर उसने हल्ला मचाना शुरू कर दिया. शोर सुनकर नागरिक और सैनिक इकट्ठे हो गये. चश्मदीद गवाह के बयान पर ग्लाकस को पकड़कर जेल में डाल दिया गया. इस तरह चालबाजी से ग्लाकस को फंसाकर आर्बेसिस आयोनी के पास गया कि उसका मन भाई के हत्यारे के विमुख कर सके.

रोम के कानून के अनुसार अपराधी को एंफीथिएटर में छोड़ दिया जाता था जहां उसे भूखे शेर या बाघ से लड़ना पड़ता था. थिएटर में सुरक्षित स्थानों से हजारों दर्शक यह कौतुक देखते थे. अब रोमवासी उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जब मजिस्ट्रेट ग्लाकस का मुकदमा पूरा कर उसे सजा सुनायेंगे और तमाशा देखने को मिलेगा. इसमें कोई संदेह नहीं रह गया था कि मुकदमे का फैसला क्या होगा.

दासी नीदिया ने कभी सपने में भी यह न सोचा था कि वशीकरण औषधि का यह नतीजा निकलेगा. अपने मालिक ग्लाकस के बारे में सुन-सुनकर उसका मन पश्चाताप में गला जा रहा था. ग्लाकस को बचाने की युक्ति सोचने के लिए वह आर्बेसिस के पास गयी. आर्बेसिस ने उसे पकड़कर अपने महल में बंदी बना लिया. बंदीगृह में उसे एक पुजारी मिला जिसने आर्बेसिस को आयोनी के भाई की हत्या करते देखा था. पुजारी इस राज को राज ही रहने देने की कीमत लेने के लिए आर्बेसिस के पास आया था. बदले में उसे पकड़कर बंदीगृह में डाल दिया गया था. सारी बात सुनकर नीदिया दासी ने कारागार के एक दास के हाथ एक चिट्ठी अपने दोस्त के पास भिजवायी जिसे लेकर वह मजिस्ट्रेट के पास दौड़ा.

ग्लाकस को दंड दिया जा चुका था. उसे एंफीथिएटर में धकेला जा चुका था. पिंजड़े में बंद बाघ को उसके सामने लाया जा चुका था. कसाइयों ने पिंजड़े का पटका खोल दिया था. तभी मजिस्ट्रेट को खबर मिली कि आर्बेसिस के महल में मंदिर का पुजारी कैद है जो जानता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

असली हत्यारा कौन है.

पिंजड़े से निकलकर भूखे बाघ ने एंफीथिएटर में एक चक्कर लगाया. अनमने भाव से उसने आसमान में छाये काले बादलों को देखा और फिर घूमकर वापस पिंजड़े में चला गया. यह क्या हुआ? भूखे बाघ ने निहत्थे इंसान की बोटियां नहीं नोंची. उसके चिथड़े-चिथड़े नहीं किए.

इतने दिनों में ग्लाकस पर विष का दुष्प्रभाव समाप्त हो चुका था. अब वह स्वस्थ था. वीर योद्धा बाघ के सामने धीरज से खड़ा था. लेकिन बाघ था कि वापस अपने पिंजड़े में जा बैठा था.

तमाशबीनों को मजा नहीं आ रहा था. वे चिल्लाने लगे कि बाघ को कोंच-कोंचकर बाहर निकालो. पर बाघ था कि जैसे उसे सांप सूंघ गया हो. तभी दर्शकों के बीच बैठा तांत्रिक आर्बेसिस उठा और आसमान की ओर उंगली उठाकर चिल्लाया, "देखो, भगवान बेगुनाहों को कैसे बचाता है."

लोगों ने देखा कि आसमान काले धुएं से भरा जा रहा है. धुआं विसुवियस पहाड़ की चोटी से उठा आ रहा था. जैसे कि कोई विशाल पेड़ हो जिसका तना धुएं का बना है और डालें आग की हैं. आग की लपटें चमक रही थीं और इधर-उधर नाच रही थीं. तभी जैसे आग की वर्षा होने लग गयी जिससे पहाड़ की एक ओर आग का दरिया बहने लग गया.

चारों ओर आतंक का सन्नाटा व्याप गया जिसे अचानक बाघ के रुदनपूर्ण शोर ने ही तोड़ा. शायद बाघ को पहले ही इस आतंक का अंदाज लग गया था. तभी वह अनमना हो रहा था.

ग्लाकस के लिए जीवन और मृत्यु का यह खेल अप्रत्याशित ही था. पल भर में जो कुछ हो गया उससे हतप्रभ हो वह धरती पर पड़ा रहा. तभी उसे लगा कि नीचे की जमीन खिसक रही है और तभी उसे सुनाई पड़ी लोगों के चीत्कार और रुदन की आवाज. "भूकंप! ज्वालामुखी!" जैसे शब्द चारों ओर गूंजने लगे. उसके पहरेदार भीड़ के साथ भाग खड़े हुए थे. वह अकेला रह गया था.

लेकिन वह अकेला नहीं था. उसने सुना कि कोई उसे आवाज दे रहा है. और अगले ही क्षण नीदिया उसके पास थी. नीदिया बोली, "चलो, आयोनी को ढूंढ़ें."

और हाथों में हाथ डाले दोनों खतरनाक गलियों से होते हुए अंधेरे में आयोनी के घर पहुंचे. घर में बीमार, दुखी आयोनी बिस्तर पर पड़ी थी. ग्लाकस को वहां पाकर वह हर्ष और विस्मय से दंग रह गयी. ग्लाकस ने उसे अपनी मजबूत बाहों में उठा लिया और बाहर की ओर भागा. वह बड़े मौके से वहां आ गया था क्योंकि अगले ही पल आर्बेसिस वहां आयोनी को हथियाने के लिए आ गया था. अंधेरे ने ग्लाकस की सहायता की और वह नीदिया के साथ आयोनी को बाहों में लिये-लिये शरण स्थल की तलाश में अंधकार में खो गया.

हजारों लोग मौत के मुंह में जाने लगे. बड़ी-बड़ी चट्टानें टूटने लगीं और बहुत से घर ज्वालाओं में धधकने लगे. अग्निकांड, ज्वालामुखी के लावा और खौलते पानी के परनालों के बीच सभ्यता के शिखर पर पहुंचे पांपियाई नगर ने अपना अंतिम दिन देखा.

इस वीभत्स दृश्य में होकर ग्लाकस आयोनी को उठाये-उठाये आगे बढ़ा. नीदिया उसके साथ थी. तभी भीड़ का जबरदस्त रेला आया. सभी लोग समुद्र तट की ओर भागे जा रहे थे. मृत्यु से बचने का एकमात्र रास्ता लोगों को यह दिख रहा था कि सागर तट के बंदरगाह से जहाज या बड़ी नाव लेकर देश के किसी अन्य सुरक्षित स्थान को पहुंच लिया जाए. तभी आग की एक जबरदस्त बौछार पड़ने लगी. क्षीण रोशनी में पास के मंदिर में शरण लेने के लिए वह चला गया.

मंदिर के एक कोने में दो आंखें चमक रही थीं. ध्यान से देखने पर ग्लाकस डर से कांपने लगा. वहां एक बाघ पड़ा हुआ था. थोड़ा प्रकृतिस्थ होने पर ग्लाकस ने देखा कि बाघ से सटा एक आदमी भी पड़ा था. विनाश लीला के व्यापक आतंक ने बाघ और आदमी के मन से पारस्परिक भय को भगा दिया था. इसी कारण से बाघ आदमी के सामीप्य में सुरक्षा महसूस कर रहा था.

वैभव बनाम विनाश

भगवत शरण उपाध्याय

थेसाली की चट्टानी भूमि पर जब फारसेला के मैदान में जान लेवा जंग छिड़ा था, तब जूलियस सीजर ने रुबिकन पार कर रोमन सिनेट की शक्ति को चुनौती दी थी और रक्षा का भार सौंपा था वीरकर्मा जनरल पांपे को. फिर पांपे की पीठ यूरोप ने कभी नहीं देखी और एशिया ने भी तब देखी जब पांपे अपनी कब्र की ओर कदम बढ़ा रहा था.

इसी जनरल पांपे ने पांपियाई नगर का निर्माण कराया था. पांपियाई शहर कितना विख्यात, कितना समृद्ध था इसका अंदाज वहां की टूटी संगमरमर की लाटों से, भवनों के खंडित गुंबजों से लगाया जा सकता है. पांपियाई को मिट्टी की ईंटों के दिन कभी देखने नहीं पड़े थे. उसकी घटिया इमारतें भी कम से कम अलाबास्तर की बनी थीं और ऐतिहासिक इमारतों का तो कहना ही क्या.

पांपियाई नगर अपने-आप उलट गया या विसुवियस की लपटों से जलकर राख हो गया—इसका निर्णय न कर सकने पर भी इस संदर्भ में सोदोम और गोमोरा की याद स्वाभाविक है. प्राचीन रोमनों का कहना है कि प्रांतों की लूटी, पराजित जातियों से छीनी धनराशि पांपियाई के संगमरमरी प्रासादों में अंटी पड़ी थी. वहां की रातें दिन के उजाले को चौंधिया देती थीं और वहां नंगी, तरुण रूपसियां धनाढ्य रोमन तरुणों को मद्य-पान कराने में व्यस्त रहती थीं. प्राची नगर से मिटती उषा की आखिरी ललाई तक ये कामशिथिल नग्न तरुण औंधे पड़े रहते. फिर तो वासना इस नगर में इतनी बढ़ी कि लगा जैसे नगर बेलशेजार का बाबुल हो, जिसके पाप से झल्लाकर जेहोवा का रहस्यमय हाथ दीवार से निकलकर उसके ऊपर लिख चला था—'मेने मेने तेकेल उफासीन.'—तुम्हें तराजू पर तौला गया है और तुम अपूर्ण प्रमाणित हुए हो, तुम्हारा अंत निकट है! □

प्रस्तुति : बीज

तभी आसमान में बड़ी तेज रोशनी होने लगी. उस प्रकाश में लोगों ने देखा कि विशाल पर्वत विसुवियस आग का ढेर बना हुआ था. उसका शिखर टूटकर जैसे अलग हो चुका था. शिखर से पिघला हुआ लावा तीन धाराओं में होकर बह रहा था. जैसे पिघले हुए लोहे की तीन नदियां ऊपर से उतर रही हों.

तभी एक जोरदार धमाका हुआ. जुपिटर की विशाल मूर्ति अपने स्तंभ से गिरकर धराशायी हो गयी. मंदिर का एक बड़ा खंभा भी गिर पड़ा. मंदिर में शरण लेनेवाले लोग बाहर की ओर भागे. वे सब बेतहाशा भागते ही गये, भागते ही गये.

अंत में समुद्र तट आ गया. थके हारे लोगों ने एक नाव ढूंढ़ निकाली. अंधेरे में ही नौका को विनाश लीला की भूमि की विपरीत दिशा की ओर दौड़ा दिया गया. रात भर नाव दौड़ती रही. सवेरे के धुंधलके में उन लोगों ने देखा कि वे काल के मुख से दूर आ गये थे. □

रूपांतर : प्रभाकर द्विवेदी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16 अप्रैल की सुबह जब डॉक्टर रियो अपने ऑपरेशन-रूम से निकले तो उन्हें अपने पैरों के नीचे किसी नरम चीज का स्पर्श महसूस हुआ. जीने के बीचों-बीच एक मरा हुआ चूहा पड़ा था. डॉक्टर ने तत्काल पैर से ठोकर मारकर चूहे को एक तरफ हटा दिया और उसके बारे में और अधिक सोचे बगैर जीने से नीचे उतरते गये, लेकिन सड़क पर जाने से पहले उन्हें खयाल आया कि आखिर उनके जीने पर मरा हुआ चूहा क्यों पड़ा रहे, इसलिए उन्होंने मकान के चौकीदार को बुलाकर चूहा हटाने का आदेश दिया.

उस दिन शाम को, जब डॉक्टर रियो अपने फ्लैट के जीने पर चढ़ने से पहले दरवाजे के पास खड़े होकर जेब में चाबी टटोल रहे थे तो उन्होंने बरामदे के अंधेरे कोने की तरफ से एक मोटा चूहा अपनी ओर आते हुए देखा. चूहा डगमगाता हुआ चल रहा था और उसकी बालदार खाल भीगी हुई थी. उसने रुककर अपने को गिरने से बचाने की कोशिश की, डॉक्टर की ओर आगे बढ़ा, फिर रुका और एक चीख के साथ कलाबाजी-सी खाकर बगल की ओर उलट गया. चूहे का मुंह थोड़ा-सा खुला था और उसमें से खून की धार निकल रही थी. उसकी ओर एक क्षण तक गौर से देखने के बाद डॉक्टर जीने पर चढ़कर ऊपर चले गये.

अगले दिन 17 अप्रैल के आठ बजे तक डाक्टर बाहर जा रहा था तो पोर्टर ने उसे रोककर बताया कि कुछ निकम्मे बदमाश छोकरे हॉल में तीन मरे हुए चूहे पटक गये हैं. साफ जाहिर है कि उन चूहों को बड़े मजबूत स्प्रिंग वाले शिकंजे में पकड़ा गया था, क्योंकि उनमें से खून की धार बह रही थी.

इस घटना से हैरान रियो ने उस दिन पहले शहर के छोर की

फ्रांसीसी उपन्यास

प्लेग

अलबेयर कामू

बस्तियों का मुआयना करने का फैसला किया, जहां उसके गरीब मरीज रहते थे.

सड़क के दोनों ओर फुटपाथ के किनारे रखे कूड़े के कनस्तरों पर नजर डाली. एक सड़क में ही डाक्टर ने गिना कि सब्जियों के छिलकों और दूसरे कचरे से भरे टिनों के ऊपर एक दरजन से भी ज्यादा मरे चूहे पड़े थे.

रियो को जल्द ही पता चल गया कि शहर के उस हिस्से में चूहे बातचीत का सबसे बड़ा विषय बन गये थे. मरीजों के घरों का राउंड करने के बाद डाक्टर मोटर में बैठकर घर आ गया.

अगले दिन, 18 अप्रैल की सुबह जब डाक्टर स्टेशन से अपनी मां को लेकर लौट रहा था तो उसने देखा कि माइकेल पहले से भी ज्यादा परेशान है. तहखाने से लेकर बरसाती तक जीने में एक दरजन के करीब मरे हुए चूहे पड़े थे. सड़क के सब मकानों के कूड़े के कनस्तर चूहों से भरे थे.

28 अप्रैल को जब रेन्सडॉक सूचना विभाग ने घोषणा की कि आज आठ हजार चूहे जमा किये गये हैं तो सारे शहर में डर और घबराहट की लहर-सी फैल गयी. लोगों ने अधिक कारगर कदम उठाने की मांग की. अधिकारियों पर लापरवाही दिखाने का आरोप लगाया.

लेकिन इसी दिन के दोपहर की बात है कि डाक्टर रियो ने लौटकर जब अपने फ्लैट की इमारत के सामने कार खड़ी की तो चौकीदार माइकेल को गली के सिरे से अपनी ओर आते देखा. वह अपने को घसीटकर चल रहा था, उसका सिर झुका हुआ था और बाहें और टांगें अजीब ढंग से फैली हुई थीं. बूढ़ा माइकेल एक पादरी की बांह का सहारा लेकर चल रहा था, जिसे रियो पहचानता था. वह फादर पैनेलो था.

माइकेल की आंखें बुखार से चमक रही थीं और वह बड़ी मुश्किल से सांस ले रहा था. बूढ़े ने बताया कि कुछ 'बेचैनी-सी' महसूस करने पर वह खुली हवा में सांस लेने के लिए बाहर चला गया था. लेकिन वहां जाकर उसे अपने शरीर में हर जगह दर्द महसूस होने लगा—गरदन में, बगलों में और जांघों के बीच में. इसलिए मजबूर होकर लौट आया और उसे फादर से अपनी बांह का सहारा देने के लिए कहना पड़ा.

"फौरन जाकर बिस्तर में लेट जाओ और अपना टैंप्रेचर लो. मैं तीसरे पहर तुम्हें देखने आऊंगा."

बूढ़े के जाने के बाद डॉक्टर रियो ने फादर पैनेलो से पूछा कि चूहों की इस विचित्र घटना के बारे में उसका क्या खयाल है?

"ओह, मेरा खयाल है कि उनमें कोई महामारी फैल गयी है." गोल और बड़े चश्मे के पीछे से पादरी की आंखें मुस्करा रही थीं.

अखबार बेचनेवाले सबसे ताजी खबर चिल्ला-चिल्लाकर सुना रहे थे कि चूहे एकदम गायब हो गये हैं. रियो ने अपने मरीज को पलंग की पट्टी पर झुका हुआ पाया. वह एक हाथ से अपने पेट को और दूसरे हाथ से गरदन को दबा रहा था, और चिलमची में गुलाबी रंग के पित्त की कै कर रहा था. कुछ देर तक कै करने के बाद माइकेल बिस्तर पर लेट गया. उसका दम घुट रहा था. उसे 103 डिग्री बुखार था गले, बगल और जांघों की गिल्टियां सूज रही थीं और उसकी जांघों में दो काले धब्बे उभरने लगे.

अपने फ्लैट में लौटकर रियो ने अपने सहयोगी रिचर्ड को टेलीफोन किया, जो शहर का प्रमुख डाक्टर था.

"क्या कोई बुखार का केस नहीं देखा, साथ में गिल्टियां भी हों?"

"जरा ठहरो. हां, मेरे पास सूजी हुई गिल्टियों वाले दो केस हैं."

"गिल्टियां क्या असाधारण रूप से सूजी हुई हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"खैर, इसका फैसला तो इस बात पर निर्भर करता है कि तुम 'साधारण' का क्या मतलब लगाते हो," रिचर्ड ने उत्तर दिया.

उस रात को चौकीदार का बुखार 104 डिग्री तक चढ़ गया और वह सरसाम में लगातार 'ये चूहे', 'ये चूहे' की ही रट लगाए रहा. रियो ने गिल्टी का मुंह बंद करने की कोशिश की. माइकेल को जब तारपीन की चुभन महसूस हुई तो वह चिल्लाया, "हरामजादे!"

गिल्टियां और भी सूज गयी थीं और लगता था जैसे गोश्त में ठोस गांठें-सी गड़ी हुई हों. माइकेल की बीवी एकदम थकान से चूर हो गयी थी.

"उसके साथ बैठो, और अगर जरूरत पड़े तो मुझे बुला लेना," डाक्टर ने कहा.

अगले दिन 30 अप्रैल को बूढ़े माइकेल का टैंप्रेचर उतरकर 99 डिग्री पर आ गया था और यद्यपि वह बहुत कमजोर दिखाई दे रहा था, फिर वह मुस्करा रहा था.

दोपहर के समय बीमार माइकेल का टैंप्रेचर एकाएक फिर 104 डिग्री तक चढ़ गया. अब वह लगातार सरसाम की अवस्था में था और फिर उल्टियां करने लगा था.

"सुनो," रियो ने कहा, "हमें इसको अस्पताल ले जाना होगा. वहां

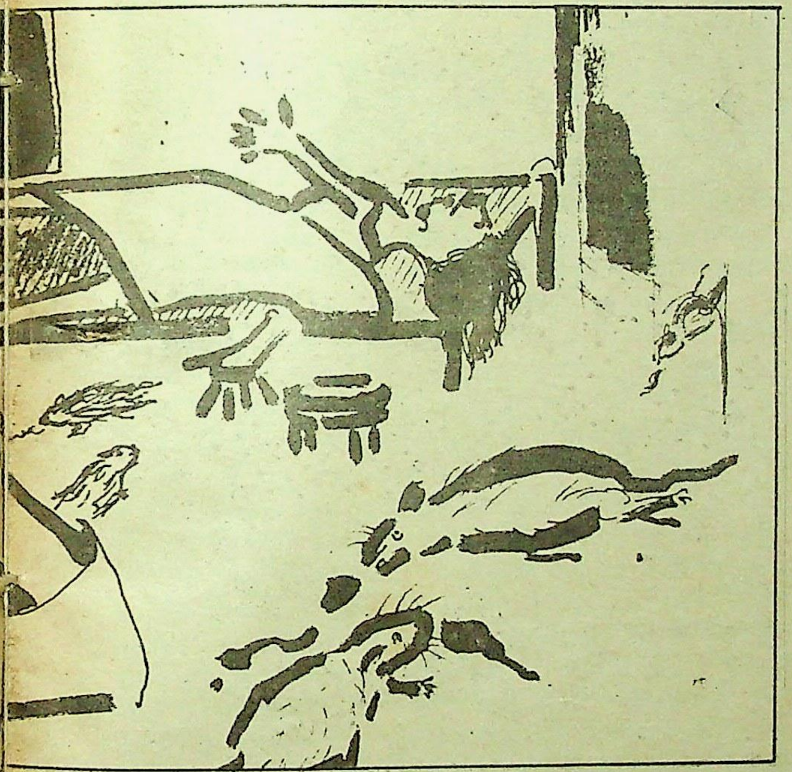

हम इसे एक नयी दवा देकर देखेंगे. मैं एंबुलैंस गाड़ी के लिए टेलीफोन किये देता हूं."

दो घंटे बाद रियो और मदाम माइकेल एंबुलैंस गाड़ी में बैठे चितापूर्वक रोगी की ओर देख रहे थे. माइकेल के खुले गंदगी से भरे हुए मुंह से रह-रहकर कुछ शब्द निकल रहे थे. वह बार-बार दुहरा रहा था, "ये चूहे. ये हरामजादे चूहे." उसका चेहरा बेजान और सलेटी रंग का हो गया था. उसके रक्तहीन होंठ सफेद पड़ गये थे और हठात झटकों के साथ उसकी सांस चल रही थी. रक्त की शिराओं में गांठें पड़ जाने से उसके हाथ-पैर फैले हुए थे. वह एंबुलैंस की बर्थ में इस तरह घुसकर पड़ा था जैसे वह उसमें ही अपने-आपको दफन कर रहा हो या जैसे जमीन की गहराइयों में कोई आवाज उसे नीचे की ओर बुला रही हो. लगता था जैसे किसी अनदेखे दबाव से बेचारे का दम घुट रहा था. उसकी बीवी सुबक-सुबककर रो रही थी...

"डाक्टर, क्या कोई उम्मीद बाकी नहीं रही?"

"वह मर चुका है."

स्थिति ने कितना गंभीर मोड़ ले लिया था, इसका डाक्टर रियो को पूरा एहसास था. चौकीदार की लाश को अलग रखवाने के बाद उसने रिचर्ड को टेलीफोन करके पूछा कि गिल्टियों वाले बुखार के इन केसों के बारे में उसकी क्या राय थी.

"मैं उनके बारे में कोई राय नहीं कायम कर सका," रिचर्ड ने स्वीकारा, "मेरे दो मरीजों की मौत हो चुकी है—एक अड़तालीस घंटों में मरा और दूसरा तीन दिन के भीतर. और दूसरे मरीज में तो, जब मैं उसे अगले दिन देखने गया था तब बुखार से अच्छा होने के चिह्न दिखाई दे रहे थे."

"अच्छा, तो अगर तुम्हारे पास और केस आयें तो मेहरबानी करके मुझे इत्तिला देना," रियो ने कहा.

उसने अपने कुछ और साथी डाक्टरों को टेलीफोन किया. पूछताछ के फलस्वरूप उसे पता चला कि पिछले कुछ दिनों में इसी किस्म के करीब बीस केस हो चुके थे. और ये सभी संघातिक साबित हुए थे. इस पर उसने रिचर्ड को, जो स्थानीय मेडिकल असोसिएशन का चेयरमैन था, यह सलाह दी कि अब जो नये केस आयें, उन्हें छूतवाले वार्ड में रखा जाये.

स्थानीय अखबार, जो चूहों के बारे में इतनी तो बड़ी-बड़ी सुर्खियां देकर खबरें छापते थे, अब बिलकुल खामोश हो गये थे, क्योंकि चूहे सड़कों पर मरते हैं और आदमी अपने घरों में. और अखबार सिर्फ सड़कों में ही दिलचस्पी रखते हैं. सरकारी और म्युनिस्पैलिटी के अफसर आपस में मशविरा कर रहे थे. जब तक कि एक-एक डाक्टर

प्लेग नाम है उस महामारी का जिसका जिक्र करते हुए भी लोग सिहर उठते हैं. उसी महामारी के शिकार फ्रांस के ओरान नामक शहर की त्रासदी को शब्द दिये हैं, फ्रांस के नोबेल पुरस्कार विजेता कथाकार अल्बेयर काम्यू ने. यहां पर प्लेग मात्र महामारी बनकर नहीं रह जाती बल्कि समग्र मानवीय त्रासदी का एक प्रतीक बनकर उभरती है.

के पास दो या तीन केस ही पहुंचे थे, तब तक किसी ने इस बारे में कोई कदम उठाने की बात ही नहीं होगी. यह सिर्फ संख्याओं को जोड़ने का सवाल था, लेकिन जब ऐसा किया तो कुल संख्या हैरतअंगेज निकली. कुछ ही दिनों में मरीजों की संख्या दिन दूनी, रात चौगुनी की रफ्तार से बढ़ गयी थी और इस विचित्र बीमारी के दर्शकों को इसमें जरा भी संदेह न रहा कि जरूर कोई महामारी फैल गयी है. स्थिति इस हद तक पहुंच चुकी थी, जब रियो का एक सहयोगी डाक्टर कास्तेलं, जो उससे उम्र में काफी बड़ा था, एक दिन उससे मिलने आया.

"जाहिर है कि तुम तो जानते ही होगे कि यह कौन-सी बीमारी है," उसने रियो से कहा.

"हां कास्तेल, इस बात पर यकीन करना मुश्किल है. लेकिन बीमारी के सारे लक्षण इसी ओर इशारा करते हैं कि यह प्लेग है," रियो ने उत्तर दिया.

उसने याद करने की कोशिश की कि उसने इस बीमारी के बारे में क्या-क्या पढ़ा था. उसकी स्मृति में आंकड़े तैर गये, और उसे याद आया कि प्लेग की जिन तीस महामारियों का इतिहास को पता है, उन्होंने करीब दस करोड़ लोगों की जान ली है. लेकिन दस करोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौतें क्या होती हैं? जो युद्ध में लड़ आता है, वह कुछ दिन बाद यह भूल जाता है कि मुर्दा आदमी क्या होता है. और चूंकि मुर्दा व्यक्ति वास्तविक नहीं होता, जब तक कि उसको प्रत्यक्ष मरते हुए न देखा गया हो, इसलिए इतिहास में करोड़ व्यक्तियों के शवों की वह घोषणा मनुष्य की कल्पना में धुएं के एक कश से ज्यादा वास्तविकता नहीं रखती. डाक्टर को कुस्तुनतुनिया की प्लेग की याद आयी, जिसके बारे में प्रोकोपियस ने लिखा था कि एक ही दिन में उससे दस हजार मौतें हुई थीं. मरे हुए दस हजार की संख्या किसी बड़े सिनेमाघर के दर्शकों से पांच गुनी हुई. हां, ठीक है, इसी तरह इसको समझना चाहिए. आपको चाहिए कि पांच बड़े सिनेमाघरों के दरवाजों पर ही उनके दर्शकों को जमा कर लें, फिर उन्हें शहर के चौक में ले जायें और फिर उन्हें ढेर के ढेर में मर जाने दें, अगर आप दस हजार मौतों का साफ-साफ मतलब समझना चाहते हैं. फिर मुर्दों की इस अज्ञात भीड़ में कुछ परिचितों के चेहरे भी जोड़ दें. लेकिन जाहिर है कि ऐसा करना एकदम असंभव है. इसके अलावा ऐसा कौन आदमी है जो दस हजार चेहरों को पहचानता हो? जो भी हो, प्रोकोपियस की तरह उन पुराने इतिहासकारों के दिये हुए आंकड़ों पर भरोसा नहीं किया जा सकता, यह आम धारणा थी. सत्तर साल पहले कैंटन शहर में प्लेग से जब चालीस हजार चूहे मर चुके थे तब जाकर बीमारी नगरवासियों में फैली थी. लेकिन कैंटन की महामारी में भी चूहों की गिनती करने का कोई प्रामाणिक तरीका नहीं था. केवल मोटे तौर पर अंदाज ही तो लगाया गया था, जिसमें गलती की काफी गुंजाइश थी.

अगले दिन बहुत कह-सुनकर रियो ने प्रीफेक्ट के दफ्तर में एक 'स्वास्थ्य कमेटी' की मीटिंग बुलाने के लिए अधिकारियों को राजी कर लिया. कई लोगों को यह उचित नहीं लगा.

प्रीफेक्ट ने स्नेहपूर्वक उनका अभिवादन किया, लेकिन उसके ढंग से मालूम पड़ता था कि वह बहुत घबराया हुआ है.

प्रीफेक्ट ने उससे कहा, "मैंने आंकड़ों पर गौर किया है, और जैसा कि तुम्हारा कहना है, ये आंकड़े बहुत चिंताजनक हैं."

"सिर्फ चिंताजनक ही नहीं, उनसे निश्चय निष्कर्ष निकाला जा सकता है."

"मैं सरकार से आदेश जारी करने की मांग करूंगा."

फिर एकाएक मौतों की संख्या एकदम बढ़ गयी. जिन दिन यह संख्या तीस तक पहुंची, प्रीफेक्ट ने डाक्टर रियो को एक तार पढ़ने के लिए दिया और कहा, "तो अब लगता है वे लोग भी घबरा उठे हैं." तार में लिखा था : "प्लेग फैलने की घोषणा कर दो. शहर के फाटक बंद कर दो."

फाटकों के बंद होने का सबसे बड़ा नतीजा यह हुआ कि लोग अचानक एक दूसरे से बिछुड़ गये. वे इस आकस्मिक घटना के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे. माताएं और बच्चे, प्रेमी, पति और पत्नियां, जिन्हें कुछ दिन पहले पक्का यकीन था कि वे कुछ ही दिनों के लिए एक-दूसरे से बिछुड़ रहे हैं, जिन्होंने प्लेटफार्म पर एक-दूसरे को चूमकर विदाई ली थी और इधर-उधर की मामूली बातें की थीं, उन्हें यकीन था कि कुछ दिनों या ज्यादा-से-ज्यादा कुछ हफ्तों बाद वे फिर मिलेंगे, निकट भविष्य में अंधी मानवीय आस्था से वे ठगे गये थे. विदाई के बाद भी उनकी जीवनचर्या में कोई खास फर्क नहीं आया था, लेकिन बिना किसी चेतावनी के अब वे अपने को असहाय रूप से एक-दूसरे से दूर पा रहे थे. वे न एक-दूसरे से मिल सकते थे, यहां तक कि एक-दूसरे से पत्र व्यवहार भी नहीं कर सकते थे.

प्रीफेक्ट ने ट्रैफिक और खाने-पीने की चीजों पर कंट्रोल लगा दिया. पेट्रोल राशन पर मिलने लगा और खाने की चीजों की बिक्री पर पाबंदियां लगा दी गयीं.

बिलासिता की सामग्री की दूकानें रातों-रात बंद हो गयीं और दूसरी दूकानों ने 'सारा माल बिक चुका है' के नोटिस लगा दिये. खरीदारों की भीड़ दूकानों के दरवाजों के आगे जमा रहती थी.

औरान की शक्ल एकदम बदल गयी. सड़कों पर पैदल चलने वाले लोग ज्यादा नजर आते थे. फुरसत के वक्त सड़कों और रेस्तराओं में बहुत से लोग जमा हो जाते थे. इन दिनों वे निकम्मे हो गये थे, क्योंकि बहुत सी दूकानें और दफ्तर बंद हो चुके थे. फिलहाल ये लोग बेकार नहीं थे, सिर्फ छुट्टी पर थे.

रियो के ऑपरेशन-रूम की बगल में डॉक्टरी सामान से लैस एक कमरा था, जहां मरीज को सबसे पहले लाया जाता था. इसके फर्श को खोदकर एक उथली-सी पानी और क्रेसलिक एसिड की झील बना दी गयी थी, जिसमें बीच में ईंटों का एक छोटा सा द्वीप-सा बनाया गया था. मरीज को इस द्वीप पर ले जाया जाता था, तेजी से उसके कपड़े उतारकर कीटाणु-नाशक पानी में डाल दिये जाते थे. नहलाने-सुखाने अस्पताल की मोटी-खुरदरी नाइट-शर्ट पहनाने के बाद उसको जांच के लिए रियो के पास ले जाया जाता था, फिर उसके बाद किसी वार्ड में. इस अस्पताल में, जो स्कूल की इमारत को कब्जे में लेकर खोला गया था, पांच सौ बैड थे. लगभग सभी बेड भरे हुए थे. मरीजों को रियो स्वयं अपनी देख-रेख में दाखिल करने के बाद उन्हें टीके लगाता था, गिल्टियों में नश्तर लगाता था और आंकड़ों की दोबारा जांच करने के बाद फिर दोपहर के वक्त अपने मरीजों को देखने के लिए लौट आता था. अंधेरा होने पर वह मरीजों का हालचाल पूछने के लिए निकलता था और रात को बहुत देर से लौटता था.

डाक्टर हृट्टे-कट्टे बदन का आदमी था और अभी तक थकान से चूर नहीं हुआ था. फिर भी बार-बार मरीजों को देखने जाने की वजह से उसकी सहन-शक्ति पर बोझ पड़ने लगा था. एक बार यह पता चलने पर कि किसी को प्लेग हो गयी है, उसे फौरन ही घर से हटाकर अस्पताल पहुंचा दिया जाता था. उसके बाद 'सैद्धांतिकता' और परिवार के साथ संघर्ष शुरू होता था, जिन्हें अच्छी तरह मालूम था कि अब वे मरीज को उसके मरने या स्वस्थ होने से पहले नहीं देख सकेंगे.

फिर संघर्ष का दूसरा दौर शुरू हुआ, आंसू और मिन्नतें, जिसे संक्षेप में 'अव्यवहारिकता' कहा जा सकता है. मरीजों के कमरों में, जहां बुखार की गरमी और स्नायविक विक्षिप्ति छायी थी, पागलपन के दृश्य होते थे. हर बार एक ही मामले पर संघर्ष होता था. मरीज को हटा लिया जाता था, इसके बाद रियो भी वहां से चला जाता था.

शुरू के दिनों में तो रियो सिर्फ अस्पताल में फोन कर देता था और एंबुलैंस के आने की इंतजार किये बगैर दूसरे मरीजों को देखने चला जाता था. लेकिन उसके जाते ही परिवार के लोग घर में ताला लगा देते थे. वे मरीज से बिछुड़ने की बजाय प्लेग की छूत के संपर्क में आना ज्यादा पसंद करते थे, क्योंकि उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि बिछुड़ने का नतीजा क्या होगा. इसके बाद गाली-गलौज, चीखों, दरवाजे तोड़ने और पुलिस और फौज की कार्यवाही का सिलसिला शुरू होता था. मरीज पर धावा बोल दिया जाता था. शुरू से कुछ हफ्तों में रियो को एंबुलैंस के आने से पहले मरीज के पास रुकने के लिए मजबूर होना पड़ता था. बाद में जब हर डाक्टर के साथ एक वालेंटियर पुलिस अफसर जाने लगा तो रियो निश्चित होकर जल्दी से दूसरे मरीजों को देखने के लिए जाने लगा.

अनेक लोग, मिसाल के लिए रैंबर्त, इस बढ़ती हुई परेशानी के वातावरण से मुक्ति पाने की कोशिशें कर रहे थे, लेकिन ज्यादा चतुराई और धैर्य के साथ. हालांकि उन्हें भी अपनी कोशिशों में ज्यादा कामयाबी नहीं मिली थी. कुछ दिन तक पत्रकार रैंबर्त लगातार अफसरों से संघर्ष करता रहा. हमेशा से उसका खयाल था कि धैर्य और सहनशीलता से ही कामयाबी हासिल हो सकती है और एक माने में संकट के मौके पर रसूख और पहुंच ही काम आती है. इसलिए वह लगातार सभी तरह के अफसरों और ऐसे लोगों से मिलता रहा जिनसे रसूख से साधारण परिस्थितियों में बहुत से काम हो सकते थे, लेकिन संकट के इन दिनों में ऐसे रसूख का कोई फायदा नहीं था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खैर, रैंबर्त को जब भी मौका मिला, वह इन सब लोगों से मिला और अपना मामला पेश किया. उसकी दलीलों का एक ही सारांश था, वह इस शहर में परदेसी था, इसलिए उसकी प्रार्थना पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए था. आमतौर पर सब लोग फौरन उसकी इस दलील का समर्थन करते थे, लेकिन वे साथ ही यह भी कहते थे कि रैंबर्त जैसे कई और लोग भी शहर में मौजूद हैं इसलिए उसकी स्थिति में कोई ऐसी विशेषता नहीं जैसा कि वह सोचता है.

एक बार रैंबर्त को क्षणिक आशा की एक किरण दिखाई दी. प्रीफेक्ट के दफ्तर से उसे एक फार्म भेजा गया था, जिसमें उसे हिदायत की गयी थी कि वह सावधानी से सारे खाली खानों की पूर्ति करे. फार्म में उसके हुलिये, परिवार, मौजूदा और भूतपूर्व आमदनी के जरियों के के बारे में पूछताछ की गयी थी. दरअसल उससे जिंदगी के तथ्यों की पूरी सूची मांगी गयी थी. उसे लगा यह पूछताछ उन लोगों की सूची बनाने के लिए की जा रही है, जिन्हें शहर छोड़कर अपने घरों में लौटने का आदेश दिया जायेगा.

बाद में उसे पता चला कि इसका उद्देश्य तो दरअसल यह था कि अगर वह बीमार होकर मर जाता है तो इस जानकारी के आधार पर अधिकारियों को उसके परिवार के सदस्यों को सूचित करने में और यह फैसला करने में मदद मिलेगी कि अस्पताल का खर्च म्युनिसिपल कमेटी को उठाना चाहिए या उसके रिश्तेदारों को.

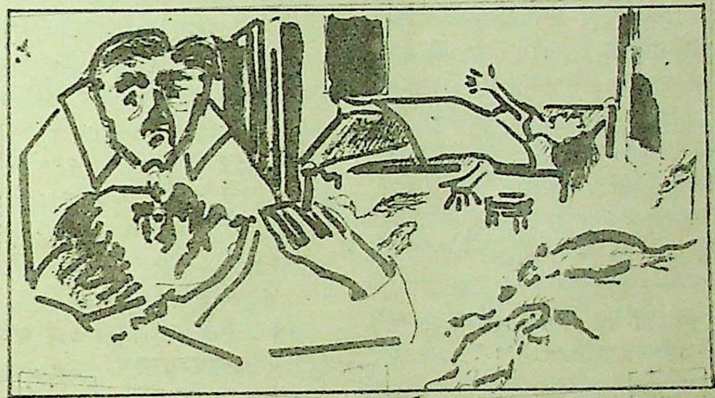

अगला दौर रैंबर्त के लिए सबसे ज्यादा आसान होते हुए भी सबसे अधिक कठिन था. यह अतीव आलस्य का दौर था. रैंबर्त दफ्तरों के चक्कर काट चुका था और भरसक सारे कदम उठा चुका था. अब उसे एहसास हो गया था कि इस किस्म के सारे रास्ते उसके लिए बंद हो गये थे. इसलिए अब वह निष्प्रयोजन एक रेस्तरां की बालकनी पर गुजारता और इस उम्मीद से अखबार पढ़ता था कि शायद महामारी के प्रकोप के कुछ कम होने की खबर मिले. वह सड़क पर चलनेवालों के चेहरों की तरफ देखता रहता और अक्सर उन चेहरों के नीरस अवसाद को देखकर वह ग्लानि से मुंह फेर लेता था.

कागज की दिनों-दिन बढ़ती हुई कमी से मजबूर होकर कुछ दैनिक अखबारों ने अपने पृष्ठ कम कर दिये. एक नया अखबार शुरू हुआ है, 'प्लेग समाचार' इसका उद्देश्य है सचाई और ईमानदारी से शहर के लोगों को बीमारी के घटने या बढ़ने की सूचना देना, प्लेग के भविष्य के बारे में विशेषज्ञों की राय को छापना, हर किसी को, चाहे वह जीवन के किसी भी क्षेत्र से संबद्ध हो, और जो इस महामारी का मुकाबला करना चाहे, लिखने के लिए खुला निमंत्रण देना, जनता के साहस और विश्वास को बनाए रखना, अधिकारियों के नवीनतम आदेशों को प्रकाशित करना, और उन तमाम शक्तियों का केंद्रीयकरण करना जो इस मुसीबत में लोगों की सक्रिय सहायता करना चाहती हैं. दरअसल कुछ दिन बाद ही इस अखबार के कॉलमों में प्लेग से बचने के नये और अचूक 'तरीकों' के विज्ञापन छपने लगे.

शुरू के दिनों में जब लोगों का खयाल था कि यह महामारी भी दूसरी महामारियों की तरह है, धर्म का काफी जोर रहा, लेकिन ज्योंही लोगों को तत्काल खतरा नजर आया तो वे ऐय्याशी की तरफ ध्यान देने लगे. दिन के वक्त लोगों के जिन चेहरों पर घृणित आशंकाओं की मोहर लगी रहती वे डर, धूल-भरी प्रचंड रातों में एक विक्षिप्त हर्षोन्माद में बदल जाते हैं और उनके खून में एक रुक्ष स्वच्छंदता दौड़ने लगती है.

बूढ़ा डाक्टर कॉस्तेल अटल विश्वास से, लगातार मेहनत करके थोड़े सामान और वक्त में ही प्लेग की सीरम तैयार कर रहा था. रियो को भी यकीन था कि प्लेग के ताजे कीटाणुओं से तत्काल बनी सीरम बाहर से मंगायी जाने वाली सीरम से ज्यादा जल्दी असर करेगी, क्योंकि ट्रॉपिकल रोगों की पाठ्य-पुस्तकों में प्लेग के जिन जीवाणुओं का जिक्र पाया जाता है, वे हमारी प्लेग के जीवाणुओं से कुछ अलग किस्म के थे. कॉस्तेल को उम्मीद थी कि वह बहुत कम वक्त में सीरम की शुरू की सप्लाई तैयार कर लेगा.

जिस दौर की हम अब चर्चा कर रहे हैं. उसमें अभी तक मर्दों और औरतों की लाशों को अलग-अलग रखा जाता था और अधिकारी इस बात पर जोर देते थे, हर गड्ढे के नीचे बिना बुझाये हुए चूने की एक गहरी परत बिछा दी गयी थी, जो जोर से खौलता था और जिसमें से भाप उठती थी. गड्ढे के होंठों के पास चूने की एक मेड़ में से बिल्कुल बुलबुले उठ रहे थे जो ऊपर आकर हवा में फूट जाते थे. जब एंबुलेंस अपना काम खत्म कर चुकती थी तो स्ट्रेचरों को सीधी कतार में गड्ढों के पास लाया जाता था. नंगी लाशें, जो ऐंठकर बदसूरत हो जाती थीं, एक साथ गड्ढे में धकेल दी जाती थीं और उन पर चूने की परत बिछाकर मिट्टी डाल दी जाती थी. मिट्टी की परत सिर्फ कुछ इंच गहरी होती थी, ताकि बाद में आनेवाले लाशों के ढेर के लिए जगह की गुंजाइश रखी जा सके. अगले दिन मृतकों के रिश्तेदारों से मुर्दों के रजिस्टर में दस्तखत करने के लिए कहा जाता था, जिससे जाहिर होता था कि इंसान और दूसरे जीवों की मौत में, मिसाल के लिए कुत्तों की मौत से फर्क किया जा सकता है. इंसानों की मौतें बाकायदा रजिस्टर में दर्ज की जाती हैं और आंकड़ों का सावधानी से हिसाब रखा जाता है.

डाक्टर कास्तेल सबसे ज्यादा थका-मांदा दिखाई देता था. जिस दिन उसने आकर रियो को बताया कि प्लेग की सीरम तैयार हो गयी है और जब उसने पहली बार सीरम को मोसिये ओथों के नन्हें बेटे पर आजमाने का फैसला किया था, जिसके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी तो अचानक रियो ने ताजे आंकड़े पढ़कर सुनाते हुए देखा कि डाक्टर कास्तेल अपनी कुरसी में पड़ा गहरी नींद सो रहा था. अपने पुराने दोस्त का बदला हुआ चेहरा देखकर रियो को बड़ा सदमा पहुंचा.

अक्तूबर के अंत में प्लेग से लड़ने के लिए कास्तेल की सीरम पहली बार आजमायी गयी. एक माने में यह रियो का आखिरी दांव था. अगर इसमें असफलता मिलती तो डाक्टर को यकीन था कि सारा शहर महामारी की दया पर निर्भर करेगा. या तो अनिश्चित काल के लिए प्लेग अपनी तबाही जारी रखेगा या अचानक अपने आप ही खत्म हो जायेगी.

जिस दिन कास्तेल रियो से मिलने आया था उससे एक दिन पहले मोसिये ओथों का बेटा बीमार पड़ गया था परिवार के सब लोगों को क्वारंटीन में नजरबंद कर दिया गया था. इस तरह बच्चे की मां ने, जो अभी क्वारंटीन वार्ड से छूटकर आयी थी, अपने-आपको फिर परिवार से अलग पाया. सरकारी कायदों की पाबंदी करते हुए मजिस्ट्रेट ने ज्योंही बच्चे में प्लेग के लक्षण देखे त्यों ही उसने डाक्टर रियो को बुलवा भेजा.

लड़के को सहायक अस्पताल के एक छोटे कमरे में रखा गया जो प्लेग से पहले छोटे बच्चों की पढ़ाई का कमरा था. बीस घंटे बाद रियो को विश्वास हो गया कि लड़के के बचने की कोई उम्मीद नहीं. छूत लगातार बढ़ रही थी और लड़के का शरीर बीमारी से लड़ने की कोई कोशिश नहीं कर रहा था. बच्चे की छोटी-छोटी बांहों और टांगों के जोड़ों में छोटी-छोटी गिल्टियां, जो अभी पूरी तरह से नहीं उभरी थीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिपकी हुई थीं. साफ जाहिर था कि इस लड़ाई में प्लेग की जीत होने वाली थी. इन परिस्थितियों में लड़के पर कास्तेल की सीरम आजमाने के विचार ने रियो की अंतरात्मा को बिलकुल नहीं धिक्कारा. उसी रात खाने के बाद बच्चे को टीका लगाया गया, इसमें काफी देर लगी, लेकिन रत्ती-भर फायदा न हुआ. अगले दिन तड़के ही वे इस टीके का असर देखने के लिए बच्चे के पलंग के गिर्द जमा हुए—इसी नतीजे पर सब कुछ निर्भर करता था.

बच्चे का शैथिल्य कुछ कम हो गया था और वह बिस्तर पर छटपटाता हुआ करवटें बदल रहा था. तड़के चार बजे से डॉक्टर, कास्तेल और तारो बच्चे के सिरहाने बैठे बीमारी के बढ़ने और घटने की हर अवस्था को नोट कर रहे थे.

सफेदी की हुई दीवारों पर रोशनी का रंग गुलाबी से पीले में बदल रहा था. नये गरमी से तपे हुए दिन की पहली तरंगें खिड़कियों से टकराने लगीं. ग्रांद यह कहकर कि वह फिर लौटेगा, उठ खड़ा हुआ. किसी ने उसकी आवाज न सुनी. सब इंतजार कर रहे थे. बच्चे की आंख अभी बंद थी. वह पहले से अधिक शांत दिखाई देने लगा. पक्षी के नाखूनों की तरह उसकी नन्हीं उंगलियां बिस्तर के दोनों छोरों को नोच रही थीं. फिर उसकी उंगलियां उठीं, उसने घुटनों पर पड़ा कंबल नोचा और अचानक उसका शरीर दोहरा हो गया. वह अपनी जांघें पेट पर ले आया और बिना हिले-डुले पड़ा रहा. पहली बार उसने आंखें खोलीं और रियो की तरफ देखा, जो उसके ऐन सामने खड़ा था. उसका नन्हा चेहरा भूरे रंग की मिट्टी के नकाब की तरह सख्त हो गया था. धीरे-धीरे उसके होंठ खुले और उनमें से लंबी अविराम चीख निकली, जो सांस लेने के बावजूद ज्यों-की-त्यों बनी रही. इस चीख ने वार्ड को एक भयंकर क्षोभपूर्ण विरोध से भर दिया, शैशव का यह नन्हा क्रंदन वार्ड के सब संतप्त लोगों की वेदना की सामूहिक अभिव्यक्ति बन गया. रियो ने अपने होंठ भींच लिये, तारो दूसरी तरफ देखने लगा, रैंबर्त जाकर कास्तेल के पास खड़ा हो गया, जिसके घुटनों पर बंद किताब पड़ी थी. फादर पैनेलो ने बच्चे के नन्हें मुंह की तरफ देखा, जिसे प्लेग की मलिनता ने विषाक्त कर दिया और जिसमें से मौत की कुछ चीत्कार निकल रही थी जो आदिकाल से मानवता सुनती है. फादर पैनेलो घुटनों के बल बैठ गये और सबने उस अनाम, अनंत क्रंदन में उनके भर्राये गले की आवाज़ सुनी.

"मेरे खुदा इस बच्चे को जिंदा रहने दो. . ."

लेकिन बच्चे की चीत्कार जारी रही और दूसरी मरीज भी बेचैन हो उठे. वार्ड के छोर वाला मरीज, जो लगातार चीख रहा था, अब और जोर से चीखने लगा था. उसकी चीखें एक अखंड चीख में बदल गयीं. दूसरे मरीजों की कराहटें भी तेज हो गयीं.

कास्तेल पलंग की दूसरी तरफ चला गया था. उसने कहा कि अंत नजदीक आ गया है. बच्चे का मुंह अब भी खुला हुआ था, लेकिन खामोश था और उसका नन्हा सिकुड़ा शरीर अस्त-व्यस्त कंबलों के बीच पड़ा था. उसके गाल अब भी आंसुओं से गीले थे.

फादर पैनेलो बच्चे के पलंग के पास गये और उन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया. फिर अपना चोगा समेटकर वे पलंगों की कतार में से निकलकर बाहर चले गये.

बाद की घटनाओं का ब्यौरा सिर्फ वृद्धा की जबान से पता चला. अगले रोज सुबह वह अपनी आदत के मुताबिक जल्दी उठी. करीब एक घंटे तक इंतजार करने के बाद भी जब पैनेलो कमरे से बाहर न निकला तो वृद्धा ने हिचकिचाते हुए कमरे का दरवाजा खटखटाया. पादरी अभी तक बिस्तर पर लेटा था, रात-भर उसे नींद नहीं आयी थी. उसे सांस लेने में दिक्कत हो रही थी. चेहरा भी पहले से ज्यादा लाल था. वृद्धा ने विनीत स्वर में (यह वृद्धा का कहना है) कहा कि फौरन किसी डाक्टर को बुला लेना चाहिए, लेकिन पादरी ने उसके सुझाव को बड़ी 'बदतमीजी' से ठुकरा दिया. वृद्धा कमरे में चली आयी. इसके सिवा वह और कर भी क्या सकती थी.

अपना कर्त्तव्य निभाने के दृढ़ निश्चय से प्रेरित होकर वह हर दो घंटे बाद बीमार के पास जाती रही. पादरी की बेचैनी जो दिन-भर जारी रही थी, उसे देखकर बुढ़िया को हैरत हुई थी. वह कंबल उतारकर फेंक देता था, फिर उसे ओढ़ लेता था. वह लगातार अपने पसीने से तर माथे पर हाथ फेरता जा रहा था. बीच-बीच में वह उठकर बिस्तर पर बैठ जाता था और भर्राये गले से खांसकर अपना गला साफ करता था.

दोपहर को उसने एक बार फिर पादरी से बात करने की कोशिश की, लेकिन पादरी के मुंह से सिर्फ चंद अनर्गल वाक्य ही निकले. वृद्धा ने फिर डाक्टर को बुलाने का सुझाव दिया. इस पर पादरी उठकर बैठ गया और उसने दृढ़ लेकिन घुटी हुई आवाज में इंकार कर दिया.

रियो दोपहर को पहुंचा. वृद्धा की सारी बातें सुनने के बाद उसने उत्तर दिया कि पैनेलो ठीक है, लेकिन शायद अब उसे बचाया नहीं जा सकता. फादर ने बिलकुल उदासीन भाव से रियो का स्वागत किया था. रियो ने उसकी जांच की और उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि सिवा फेफड़ों की रुकावट के, न्यूमोनिया या ब्यूबोनिक प्लेग के कोई लक्षण नहीं थे, जो अक्सर नजर आते हैं. लेकिन नब्ज इतनी धीरे चल रही थी और पादरी की हालत इतनी चिंताजनक थी कि अब उसके बचने की बहुत कम उम्मीद थी.

रियो ने पादरी को बताया, "आपके शरीर में प्लेग का कोई भी विशिष्ट लक्षण नहीं, लेकिन मैं ठीक से नहीं कह सकता, इसलिए आपको अलग वार्ड में रखना होगा."

पैनेलो जैसे विशिष्टतावश, बड़े विचित्र ढंग से मुस्कराया. रियो टेलीफोन करने के लिए बाहर गया और लौटकर उसने पादरी की तरफ देखा.

"मैं आपके पास ही ठहरूंगा," रियो ने मृदु स्वर में कहा.

पैनेलो ने अधिक सजीवता दिखायी और डाक्टर को देखकर उसकी आंखों में एक प्रकार का उत्साह आ गया. फिर वह बड़ी कठिनाई से बोला. यह कहना भी असंभव था कि उसकी आवाज में उदासी थी या नहीं. उसने कहा, "धन्यवाद, लेकिन पादरियों के दुनिया में कोई दोस्त नहीं होते. वे अपना सर्वस्व ईश्वर को सौंप देते हैं."

पादरी ने कहा कि उसे सलीब दे दिया जाये, जो पलंग के ऊपर टंगा था. वह मुंह फेरकर सलीब की तरफ देखने लगा.

अस्पताल पहुंचकर पैनेलो ने मुंह से एक शब्द भी नहीं निकाला. उसने बिना किसी विरोध के अपना इलाज होने दिया. लेकिन क्षण-भर के लिए भी सलीब को अपने से अलग न होने दिया. पादरी को संदिग्ध हालत में देखकर रियो यह फैसला न कर सका कि उसे आखिर क्या बीमारी है. पिछले कुछ हफ्तों से प्लेग ने जैसे पकड़ में न आने का हठ कर रखा था. पैनेलो की अनिश्चित हालत का कोई परिणाम न निकला.

उनका बुखार बढ़ गया, दिन-भर खांसी जोर पकड़ती गयी, जिसने उसकी क्षीण देह को झकझोर दिया. रात को जाकर पैनेलो के फेफड़ों से वह चीज निकली जो उसका दम घोंट रही थी. यह लाल रंग की थी. तेज बुखार में भी पैनेलो की आंखों की शांति कायम रही. अगले दिन सुबह जब वह मरा हुआ पाया गया, उसका शरीर बिस्तर पर झुका हुआ था, तब भी उसकी आंखों से कुछ जाहिर न हुआ. पादरी के नाम के कार्ड पर लिख दिया गया—'संदिग्ध केस.'

दोपहर के वक्त रियो कार से निकलकर सर्द हवा में आया, कुछ दूर उसे अभी ग्रांद की एक झलक दिखाई दी थी. ग्रांद एक दूकान की खिड़की के शीशे से चेहरा सटाकर खड़ा था. खिड़की के भीतर फूहड़ ढंग से तराशे हुए लकड़ी के खिलौने रखे थे.

ग्रांद ने खिड़की के शीशे में डाक्टर की परछाई देखी. वह अभी भी रो रहा था. उसने अपनी गरदन घुमायी और दूकान के सामने के हिस्से का सहारा लेकर खड़ा हो गया, उसने रियो को अपनी तरफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते देखा.

"ओह, डाक्टर, डाक्टर. . . !" इससे ज्यादा वह कुछ न कह सका. वह जोर से कांप रहा था. उसकी आंखों में बुखार-जैसी चमक थी. रियो ने उसका हाथ छूकर देखा, हाथ बुखार से जल रहा था.

"तुम्हें घर जाना चाहिए."

लेकिन ग्रांद ने अपना हाथ छुड़ा लिया और तेजी से भागने लगा. कुछ दूर जाकर वह रुक गया, उसने अपनी बाहें आगे फैलाकर घुमानी शुरू कर दीं. फिर एक एड़ी के बल लट्टू की तरह घूमने लगा और धम्म से फुटपाथ पर गिर गिर पड़ा. कुछ लोग, जो नजदीक आ रहे थे, हठात् रुक गये और दूर से ही इस दृश्य को देखने लगे—उन्हें नजदीक आने की हिम्मत नहीं हो रही थी. रियो को बूढ़े को उठाकर कार में पहुंचाना पड़ा.

ग्रांद बिस्तर में लेटा था, उसे सांस लेने में दिक्कत हो रही थी, उसके फेफड़ों में सूजन आ गयी थी. रियो गहरे सोच में पड़ गया. बूढ़े के परिवार में कोई नहीं था. उसे अस्पताल ले जाने से क्या फायदा था? उसने सोचा कि वह और रियो मिलकर उसकी देखभाल कर लेंगे.

कुछ घंटे बाद देखा गया कि ग्रांद बिस्तर में आधा उठकर बैठ गया है. उसके चेहरे पर अचानक जो परिवर्तन आया था, उसे देखकर रियो भयभीत हो उठा.

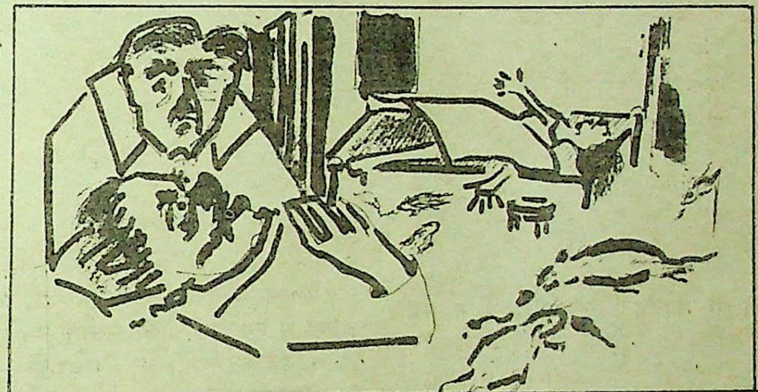

रात भर रियो को ग्रांद की मौत का खयाल सताता रहा. लेकिन अगले दिन सुबह उसने देखा कि ग्रांद बिस्तर में बैठकर तारो से बातें कर रहा था. उसका बुखार उतरकर नार्मल हो गया था और साधारण कमजोरी के सिवा उसके शरीर में बीमारी का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता था. अंधेरा होने तक खतरा टल या था. ग्रांद के इस 'पुनर्जन्म' का रहस्य समझना रियो की बुद्धि परे की चीज थी.

हफ्ते के आखिर में जब रियो और तारो दमा के बूढ़े मरीज से मिलने लिए गये तो उसके उत्साह का कोई ठिकाना न था.

"क्या आप यकीन करेंगे." वे फिर बाहर निकल रहे हैं!"

"कौन?"

"अरे वाह, चूहे और कौन!"

अचानक कास्तेल के प्लेग-निरोधक इंजेक्शनों को अक्सर ऐसी कामयाबी मिलने लगी जो अभी तक नहीं मिली थी. दरअसल डाक्टरों के सारे अस्थायी इलाज जिनके अभी तक कोई नतीजे नहीं निकले थे, सब रोगियों पर असर करने लगे. ऐसा लगता था जैसे प्लेग का पीछा करके उसे घेर लिया गया हो और प्लेग की आकस्मिक कमजोरी से उसके इस्तेमाल होने वाले कुंद हथियार तेज हो गये.

मौत के साप्ताहिक आंकड़ों में इतनी भारी कमी हो गयी कि मैडिकल बोर्ड से मशवरा करने के बाद अधिकारियों ने यह घोषणा की कि अब यह निश्चित रूप से कहा जा सका है कि महामारी थम गयी है. विज्ञप्ति में यह भी कहा गया था कि अक्लमंदी से काम लेते हुए प्रीफेक्ट ने यह भी तय किया है कि शहर के फाटक पंद्रह दिन और बंद रखें जायें, और एक महीने तक प्लेग-निरोधक तरीके इस्तेमाल में लाये जायें. यह आशा प्रकट की गयी थी कि लोग निश्चय ही इस कदम की सराहना करेंगे. इस काल में अगर जरा-सा भी खतरा दिखाई दिया तो स्थायी आदेशों का कठोरता से पालन किया जायेगा और जरूरत पड़ने पर अगर अधिकारी उचित समझेंगे तो इस अवधि को अनिश्चितकाल के लिए बढ़ा दिया जायेगा. लेकिन सब लोग सहमत थे कि ये वाक्य सिर्फ सरकारी शब्दाडंबर हैं.

तारो पीठ के बल बिस्तर पर लेटा था, उसका भरकम सर तकिये में गहरा धंसा था और उसकी विशाल छाती पर चादर आगे की तरफ निकली हुई थी. उसके सिर में दर्द था और टैंप्रेचर बढ़ गया था. उसने रियो को बताया कि लक्षणों से तो कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती, लेकिन हो सकता है, वे प्लेग के ही लक्षण हों.

उसकी जांच करने के बाद रियो ने कहा, "नहीं, अभी तक तो कोई निश्चिप लक्षण नहीं दीख रहा."

रियो सर्जरी में चला गया और जब वह लौटा तो तारो ने उसके हाथ में एक संदूक देखा, जिसमें प्लेग के सीरम की बड़ी शीशियां थीं.

तारो ने कहा, "आह, तो 'यही' मामला है."

"कोई जरूरी नहीं, लेकिन हमें कोई जोखिम नहीं उठानी चाहिए."

बिना कुछ कहे तारो ने अपनी बांह आगे बढ़ा दी और देर तक इंजेक्शन लगवाता रहा. ये वही इंजेक्शन थे, जो उसने खुद बहुत बार दूसरे लोगों को लगाये थे.

रियो शाम को घर लौटा. ओवरकोट उतारे बगैर ही वह अपने दोस्त के कमरे में आया. तारो जैसे निश्चल लेटा था, लेकिन उसके मिचे हुए होंठों से जो बुखार से, सफेद पड़ गये थे, मालूम होता था कि उसने लड़ाई जारी रखी थी.

"कहो, कैसे हो?" रियो ने पूछा.

तारो ने चादर में से अपने चौड़े कंधों को जरा-सा उठाया और कहा, "मैं मुकाबले में हार रहा हूं."

दोपहर के वक्त बुखार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया बलगम मिली खांसी ने मरीज के शरीर को झकझोर दिया और अब वह खून थूक रहा था. गिल्टियों की सूजन खत्म हो गयी.

रियो की आंखों के सामने उसका दोस्त महामारी की अंधकारमय बाढ़ में तड़प रहा था. रियो उसे तबाही से बचाने में असमर्थ था. वह सिर्फ निष्फल रूप से किनारे पर खाली हाथ, दुखित हृदय निहत्था और असहाय खड़ा होकर मुसीबत के इस हमले का दृष्टा-मात्र रह सकता था. और अब अंत आया तो रियो की आंखें आंसुओं से भर गयीं. वे असहायता के आंसू थे. उसने तारो को लुढ़ककर, दीवार की तरफ मुंह किये खोखली कराहट के साथ मरते नहीं देखा, लगता था जैसे उसके भीतर कोई जरूरी तार टूट गया था. . . . .

अंधेरे बंदरगाह में से म्युनिसिपैलिटी द्वारा आयोजित आतिशबाजी का पहला रॉकेट छूटा. शहर ने खुशी की एक लंबी आह के साथ उसका स्वागत किया.

और सचमुच जब रियो ने शहर से उठती हुई खुशी की आवाजों को सुना तो उसे याद आया कि ऐसी खुशी हमेशा खतरे का कारण होती है. उसे वह बात मालूम थी जिसे खुशियां मनाने वाले नहीं जानते थे, लेकिन किताबें पढ़कर जान सकते थे. बात यह भी थी कि प्लेग का कीटाणु न मरता है, न हमेशा के लिए लुप्त होता है. वह सालों तक फरनीचर और कपड़े को अलमारियों में छिपकर सोया रह सकता है. वह शयनगृहों, तहखानों, संदूकों और किताबों की अलमारियों में छिपकर उपयुक्त अवसर की ताक में रहता है, फिर से चूहों को उत्तेजित करके किसी सुखी शहर में भेजने के लिए. □

संक्षिप्त रूपांतर : सु. उ.

(संपूर्ण उपन्यास 'राजकमल प्रकाशन : 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीडन की कहानी

जलता हुआ शहर

ह्येल्मर सोदेरबर्ग

किसी भी विनाश की घटना का भोक्ता या गवाह कोई भी होना पसंद नहीं करता. पर उस बच्चे के मन को आप क्या कहेंगे जो जलते हुए शहर की तस्वीर को असली मानता हुआ सपने में भी स्वयं को उसमें देखता है! प्रस्तुत है जलते हुए शहर की त्रासदी की पृष्ठभूमि में एक बाल मन की प्रतिक्रियाएं . . .

दो खिड़कियों पर लगे जालीदार पर्दों से छनकर आती, सर्दियों की सुबह की रोशनी हल्के हरे रंग के कालीन पर दो उजली आयताकार आकृतियां बना रही थी. एक छोटा बच्चा उछल-उछलकर कभी एक नर्म गुनगुनी आकृति पर आता और कभी उछलकर दूसरी पर चला जाता. इस दुनिया के बारे में अधिक कुछ वह अभी नहीं जान पाया था. उसे यह तो पता था कि वह अभी छोटा था और बाद में बड़ा हो जायेगा, पर वह यह नहीं जानता था कि वह पैदा हुआ था और कभी मरेगा भी. वह जानता था कि उसकी उम्र चार साल की है और जल्दी ही वह पांच साल का हो जायेगा, पर यह 'साल' क्या होता है, उसे पता नहीं था. समय का पैमाना उसके लिए कल, आज और कल तक ही सीमित था.

"पापा!" अचानक उसने अपने पिता को पुकारा जो नाश्ता खत्म करके अपना सिगार सुलगा रहा था और वह समय को अपने सिगार से नापता था.

"पापा, रात सपने में मुझे कई चीजें दिखीं. इस पूरे कमरे को मैंने देखा. कुर्सियां, हरा कालीन, शीशा, घड़ी, स्टोव, अलमारी, दरवाजे सब कुछ दिखे."

वह उछलकर स्टोव के पास गया. उसमें से लपटें निकल रही थीं. फिर एक उल्टी कूद से वापस पहले वाली जगह पर आ गया. उसके विचार से स्टोव तथा उसके आगे वाली जगह कमरे की सबसे अधिक गौरवपूर्ण जगहें थी.

पिता ने अखबार के कोने से मुंह निकालकर गर्दन हिलायी और हंसने लगा. जवाब में बच्चा भी हंसा और हंसता चला गया. वह उम्र के उस दौर में था जहां हंसना केवल प्रसन्नता को प्रकट करने का माध्यम था, किसी की मजाक उड़ाने का नहीं. अभी कुछ दिन पहले जब वह खिड़की पर खड़ा होकर चांद को देखते हुए हंसा था तो उसमें उसे कोई हास्यास्पद चीज नजर नहीं आयी थी, बल्कि उसके गोल चमकदार चेहरे को देखकर उसे आनंद मिला था.

जब वह हंस चुका तो कुर्सी के ऊपर चढ़ गया और दीवार पर टंगी एक तस्वीर की ओर इशारा करके बोला, "और सपने में सबसे ज्यादा तो मुझे यह तस्वीर दिखाई दी थी."

यह एक पुरानी डच पेंटिंग 'ए बर्निंग सिटी' का प्रिंट था.

"सपने में तुमने इसमें क्या देखा?" पिता ने पूछा.

"सपने में मैंने देखा कि सब कुछ जल रहा है और मैं कुत्ते के एक पिल्ले को थपथपा रहा हूं."

"पर वैसे तो तुम पिल्ले से डरते हो."

"हां, पर तस्वीर के पिल्ले को तो मैं अच्छी तरह थपथपा सकता हूं." कहने के बाद वह हंसने लगा और उछल-कूद करने लगा.

फिर वह अपने पिता के पास आया और कहने लगा, "पापा, जरा वह तस्वीर नीचे उतार दीजिए और मुझे फिर से वैसे ही दिखाइए जैसे कल दिखायी थी."

यह तस्वीर तीन दिन पहले ही इस घर में आयी थी, कमरे में लगी दूसरी तस्वीरों से तो बच्चा पहले ही अच्छी तरह परिचित था पर यह जलते हुए शहर की तस्वीर उसके लिए नयी थी और दूसरों से काफी अलग भी थी. पिता तस्वीर को नीचे उतारकर बच्चे को दिखाता है.

इसमें नदी का एक विस्तृत मुहाना है. हवा समुद्र की ओर बह रही है और जहाज तथा पतवार वाली नावें उसी दिशा में कतार बांधे चले जा रहे हैं. एक धनुषाकार पुल है, जिसके बगल में ही एक मजबूत मीनार है. इसके दायें तट पर है जलता हुआ शहर. कतारों में बने संकरे घर, ऊंची तिकोनी छतों वाले गिरजे, और मीनारें . . इधर-उधर लोगों के समूह . . . आग और लपटों का, धुंए के बादलों का विस्तीर्ण सागर. . . दीवारों पर लगी सीढ़ियां, पीठ पर लदे सामान को कंपाते, भागते हुए घोड़े. . गोदी में इधर-उधर फैले बैरलों तथा और कई तरह के सामानों के ढेर. . . नदी पर किनारे से लगी एक पतवार वाली नाव, भगते लोगों से ठसाठस भरी, चलने की तैयारी में है. . . कुछ लोग पुल के ऊपर से दौड़ते हुए अपनी प्यारी जान को बचाने की फिराक में हैं. . . इस पृष्ठभूमि में दो कुत्ते आमने-सामने खड़े एक दूसरे पर गुर्रा रहे हैं. . नदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मुहाना जहां समुद्र के साथ एकाकार हो जाता है, वहां दूर क्षितिज पर पीले बादलों के कोहरे के भीतर से एक छोटा चांद झांक रहा है और इस सारे कांड का उदास गवाह है.

"पापा," बच्चा पूछता है, "शहर जल क्यों रहा है?"

"किसी ने आग के साथ लापरवाही बरती होगी." पिता का जवाब था.

"कौन था वह लापरवाह आदमी?"

"इतनी देर बाद तो अब निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता"

"कितनी देर बाद?"

"इस शहर को जले तो अब कई सौ साल हो गये हैं." पिता कहता है.

छोटे बच्चे की समझ में यह बात नहीं आती. यह बात पिता भी समझता है, पर उसके पास इसके अलावा कोई और जवाब है भी तो नहीं. बच्चा कुछ देर तक चुप रहता है और सोचने लगता है. उसके दिमाग में कुछ नये विचार तथा प्रभाव कुलबुलाने लगते हैं. तथा पुराने विचारों के साथ घुलने-मिलने लगते हैं. वह जलते

"पापा", अचानक वह चिल्ला उठता है, "क्या चांद भी अब नहीं रहा?"

"नहीं, चांद तो अभी है. इन सबमें वही एक है, जो अभी तक है. यह वही चांद है जिसे खिड़की से देखकर तुम उस दिन हंसे थे."

बच्चा फिर चकरा जाता है. पूछता है, "पापा, इस शहर को जले बहुत समय बीत गया, क्या यह तब जला था जब हम 'प्रिंसेज आइजेनबर्ग' नाम की स्टीम बोट पर यात्रा करने गये थे."

"नहीं, उससे भी बहुत पहले." पिता का जवाब था. "जब यह शहर जला था, तब न तुम थे न मैं और न तुम्हारी मां."

अचानक बच्चे का चेहरा गंभीर हो गया. काफी देर तक वह चुपचाप कुछ सोचता रहा. पर लगा जैसे वह इस पहेली का हल तलाश नहीं कर पायेगा आखिर उसने पूछ ही लिया, "पापा, एक बात बताओ, क्या यह शहर तब जला था जब मैं मां के साथ नानी के घर गया हुआ था?"

"नहीं मेरे बच्चे," पिता ने उसे समझाया, "जब यह शहर जला था, तब तुम थे ही नहीं."

बच्चे ने फिर अपना निचला होंठ फैलाया, जैसे कह रहा हो कि मुझे तुम्हारी इन बातों पर कोई विश्वास नहीं है. उसने फिर पूछा,

हुए शहर के ऊपर लगे शीशे पर अपनी नन्हीं सी उंगली रखते हुए कहता है, "पर यह शहर तो कल भी जल रहा था और आज भी जल रहा है."

अब पिता तस्वीर और यथार्थ के बीच अंतर समझाने लगता है, "यह कोई सचमुच का शहर नहीं है. यह तो एक तस्वीर है. सचमुच का शहर तो बहुत पहले जला था. अब वह नहीं है. जो लोग दौड़-भाग रहे हैं और अपने हाथ हिला रहे हैं, वे तो कभी के मर चुके हैं. ये सारे मकान जल गये हैं, मीनारें गिर गयी हैं और पुल भी अब नहीं रहा!"

"ये मीनारें जलकर गिरीं या उजड़कर?"

"वे जली भीं और उजड़कर भी गिरीं."

"क्या ये स्टीमबोट भी मर गयी हैं?"

"ये नावें भी कभी की खत्म हो गयी हैं, ये स्टीम बोट नहीं हैं, ये तो पानी के जहाज हैं, उस जमाने में स्टीम बोट नहीं होती थी."

छोटा बच्चा अपना निचला होंठ बाहर की तरफ निकालता है और इस प्रकार अपनी असंतुष्टि प्रकट करता है.

"लेकिन उस समय मैं था कहां?"

पिता ने समझाने की कोशिश की, "तब तुम पैदा ही नहीं हुए थे."

बच्चे ने आंखें गोल करके पिता की ओर देखा. अचानक उसके चेहरे पर चमक आ गयी. उसने खुद पर से पिता का प्रभाव खत्म किया और फिर से पहले की तरह हरे कालीन पर धूप की बनी आयताकार आकृतियों पर उछलने लगा और पूरे जोर से चिल्लाने लगा—"ओ हो हो... मुझे बेवकूफ समझते हो...मैं तो था...कहीं न कहीं था...!"

उसने सोचा था कि पापा उसके साथ मजाक कर रहे हैं. उसकी खिल्ली उड़ा रहे हैं... घर की नौकरानियां भी तो कई बार ऊटपटांग बातें करके उसका मजाक उड़ाती हैं. पापा भी जरूर यही कर रहे होंगे.

इसलिए वह उस ओर से निरपेक्ष होकर फिर से उछलने में मगन हो गया. □

अनुवाद : सु.उ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोपहर को अचानक मूसलाधार वर्षा हो गयी. मरे को मारे, शाहमदार. रात के समय पहले ही बाढ़ आ चुकी थी और जल थल एक हो गये. गांववालों ने उस बांध पर आकर शरण ली थी. दृष्टि सीमा तक पानी ही पानी था. दूर-दूर तक फैले हुए पानी की लहरें बांध से टकरा रही थीं.

दो दिन बीत गये. बाढ़ कम होने का नाम ही न लेती थी. लोग पिंजरे में बंद पंछियों की तरह फड़फड़ा रहे थे, लेकिन सब्र के सिवा क्या कर सकते थे. थोड़ी-सी जगह थी और लोग एक दूसरे से जकड़े खड़े थे. बेचैन लोगों के हंसने, खांसने और रोने की आवाजें एकाकार होकर उभर रही थीं. नयी नवेली दुल्हन का आंगन में कदम रखना और नरक में कूदना एक समान लगता है. वह भी यहां मौजूद थी, लेकिन कुछ घूंघट उठाये हुए. ससुर और जेठ को भी अपनी इज्जत का कोई खयाल नहीं रहा था. कल एक बार बहू की बेपरदगी पर उनकी आंखों में आंसू आ गये थे, लेकिन आज मजबूरियों को देखते हुए उन्हें हालात से समझौता करना पड़ा.

वर्षा के समय बहुत-से लोगों ने चावल भिगोकर खाने का प्रबंध किया. गायें और बकरियां, जिन्हें मालिक अपने साथ ले आये थे, उनके दूध से नवजात बच्चों की भूख-प्यास किसी सीमा तक बुझ सकी. लेकिन जानवर कुछ खाये बिना तो दूध नहीं दे सकते. फजल मुरीद कुफैल मुंशी की गाय दुहने बैठा तो उसने एक जोरदार लात लगा दी. जानवर थनों को छूने न देते थे. बकरियां देर तक मिमियाने के बाद चुप हो गयीं. पेट में तिनका तक नहीं गया था. खाली मुंह कितनी देर तक जुगाली करतीं. गला सूखकर रह गया. जानवर तो जानवर, इंसानों के बच्चे भी भूख से रो-रोकर सो गये.

रात को पांच सौ गज लंबे बांध पर थकन से चूर अधिकांश लोग सो गये. कुछ नवयुवक पहरा देने लगे, ताकि सांप और अन्य कीड़े-मकोड़े बांध पर न चढ़ने पायें. चारों ओर एक भयंकर खामोशी छायी हुई थी. कभी-कभार पानी के बहने की आवाज उभरती और फिर उदास वातावरण में विलीन होकर रह जाती. सहसा खामोशी में एक वाद्ययंत्र की आवाज उभरने लगी. बांध के एक कोने में बैठे हुए गांव के अंधे फकीर ने इकतारे पर एक करुणापूर्ण गीत छेड़ दिया था. चांदनी चटकी हुई थी और तीन-चार मील दूर तक पानी ही पानी नजर आ रहा था. यदि कोई रोमांटिक कवि इस दृश्य को देख लेता तो दुख और उल्लास के मारे पागल हो जाता.

पहरेदारों और गांव के कुछ नवयुवकों ने बांध के निकट बहते हुए चावलों की एक बोरी पकड़ ली. खुशी से उनके चेहरे दमकने लगे. मौजें बहुत तीखी और तेज थीं. वे बड़ी मुश्किल से बोरी को पकड़कर बाहर लाये. जब बोरी किनारे पर रखी तो सब बुरी तरह हांफ रहे थे. पानी की सिर पटकती हुई मौजों को देखकर बोले, "शायद यह बाढ़ बरसों में उतर पायेगी."

अगले दिन नवयुवकों ने बांस और लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों से जगह-जगह दायरे बना लिये, ताकि बच्चे पानी में न गिरें. बांध कुछ अधिक चौड़ा न था. अधिक से अधिक पचास फुट होगा. गांव का बूढ़ा सरदार सलीम नवयुवकों की इस कार्यकुशलता पर बेहद खुश हुआ और बोला, "चुपचाप बैठे रहना जवानों को शोभा नहीं देता... तुम लोगों ने अच्छा काम किया है."

अचानक जवानों की नजरें गौशाला की छत पर पड़ीं, जो बहती चली जाती थी. लहरों की विरोधी दिशा में तैरना कोई खेल नहीं, लेकिन फिर भी कुछ जवान पानी में कूद पड़े और गौशाला की छत से कुछ पुआल खींच लाये. पुआल गाय-बकरियों के लिए तीन-चार दिन की खुराक का काम दे सकता था. इस प्रकार बच्चों के लिए दूध का प्रबंध भी गांव के जवानों ने कर दिया. बकरियां पुआल खाकर दूध दिये बिना कहां जा सकती हैं. पेट जल रहा था, इसलिए दुलत्ती झाड़ रही थीं.

इस छोटे-से स्थान पर जिंदगी की धारा बिलकुल बदल कर रह गयी थी. हर व्यक्ति का दिल हमदर्दी की भावना से भरपूर था. बाढ़ की लहरें जितनी तेज थीं, उससे कहीं अधिक हमदर्दी की लहरें उनके दिलों में प्रवाहित थीं. हर आदमी दूसरों के लिए कुछ न कुछ करना चाहता था, लेकिन उस छोटी-सी जगह में सुविधा ही कितनी प्राप्त थी. जवानों से जो कुछ हो सकता था, उन्होंने किया और जब कुछ करने को बाकी न रहा तो उकताहट-सी महसूस करने लगे.

उसी दिन सरदार दोहपर के बाद जवानों को लेकर बांध के किनारे जा बैठा. आकाश मेघाच्छन्न होने के कारण धूप में तेजी न थी. आकाश के एक किनारे से दूसरे किनारे तक पानी ही पानी नजर आता था.

नौजवानों ने अपनी नजरें बूढ़े सरदार पर जमा रखी थीं लेकिन सरदार खामोश था, जैसे उसके पास बातों का भंडार खत्म हो गया.

बहुत दूर से एक गोल-सी चीज डूबती-उभरती बहती चली आती थी. सरदार ने उसकी ओर इशारा करते हुए पूछा, "बताओ, वह क्या है?"

"फुटबाल." एक जवान ने बेसाख्ता कहा.

"मुरदा बैल भी हो सकता है."

"कशल है कशल."

मतलब यह कि जितने मुंह, उतनी बातें. आखिर वह चीज निकट

बंगला देश की कहानी

बैल, चींटी और इंसान

शौकत उस्मान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुंच गयी. सब विस्मित रह गये. सब के अनुमान गलत निकले. हजारों लाल-लाल चींटियों की एक टोली थी, जो गुच्छा-सी बनी हुई बहती चली जाती थी. बूढ़े सरदार ने कहा, "बच्चो, देखो एक भारी-भरकम बैल बाढ़ की तीखी और तेज मौजों से सुरक्षित नहीं रहा, लेकिन ये नन्हे-मुन्ने जीव हैं कि बाढ़ उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकी. जानते हो, क्यों?"

सरदार ने जवानों की ओर प्रश्नात्मक नजरें उठायीं. किसी को कोई जवाब न बन पड़ा.

"बोलो न." सरदार ने एक बार फिर कहा, लेकिन वे अब भी खामोश थे. आखिर स्वयं उसने इस खामोशी को तोड़ा और कहा, "ये चींटियां भी उस जबरदस्त बाढ़ में खत्म हो जातीं. इनके बचने का केवल एक कारण है और वह है, इनकी एकता. गौर से देखो, इन सब ने एक दूसरे को पकड़ रखा है और सब से अधिक विस्मय की बात यह है कि यह नन्हे जीव इस समय भी सदा की तरह काम में मग्न हैं."

"काम?" नौजवान चौंक पड़े.

"हां, हां." सरदार उन्हें समझाने लगा, "गौर से देखो. सब काम में मग्न हैं. कुछ पानी की सतह के नीचे हैं और कुछ ऊपर. जो नीचे हैं, वे धीरे-धीरे सतह के ऊपर आ रही हैं और जो ऊपर हैं, वे धीरे-धीरे नीचे की ओर जा रही हैं. इसीलिए बाढ़ उन्हें कुछ नुकसान नहीं पहुंचा सकी. हैं तो ये छोटे-से जीव, लेकिन उनकी कार्यकुशलता ने उन्हें डूबने से बचा लिया."

विनाश आदमी को आदमी से जुदा करने में जरा भी संकोच नहीं करता, उसका तो काम ही सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट करना है. . .मगर तब क्या होता है जब प्रकृति के तांडव के चलते आदमी और आदमी के बीच की दूरी कम हो जाये. . .? और कोई एक प्रकृति के उस तांडव से लोहा लेने पर उतारू हो. . .? प्रस्तुत है एक ऐसे ही गांव की कथा जिसके लोगों ने बाढ़ के प्रकोप का डटकर मुकाबला किया—

सब नौजवान मुटुर-मुटुर चींटियों की ओर देख रहे थे. उनकी नजरें उस गुच्छे से उस समय हटीं जब वह नजरों से ओझल हो गया.

सारे लोग न जाने किस सोच में डूब गये. सरदार को उनकी यह खामोशी फिर खलने लगी. उसने उन्हें एक अन्य बहती हुई चीज की ओर उन्मुख करते हुए कहा, "अच्छा, अब देखते हैं, कौन सही बताता है."

अब के वह एक चौकोर चीज थी और अभी खासे फासले पर थी, इसलिए कोई अनुमान न लगा सका. चौकोर चीज पर सफेद-सा धब्बा नजर आ रहा था. जवान बड़े गौर से देखने लगे. लगभग साठ गज के फासले पर वह चीज पहुंची तो देखा कि वह एक स्याह तख्ता है. लंबाई पांच फुट और चौड़ाई अधिक से अधिक दो फुट होगी. फजल मुरीद ने बड़ी देर से उस तख्ते पर अपनी निगाहें जमा रखी थीं. उसने अचानक 'गमछा' अपने शरीर पर लपेटा और पानी में कूद गया. सरदार और अन्य लोग चीखते रह गये, "अबे, क्या करता है, क्या करता है?"

लेकिन फजल काफी आगे जा चुका था. बाढ़ यद्यपि कुछ कम हो गयी थी, तथापि लहरें काफी तेज थीं. केवल एक तख्ते की खातिर जान पर खेल जाना मूर्खता नहीं तो और क्या है? किसे खबर थी कि पानी में मगरमच्छ, बिच्छू, सांप आदि क्या कुछ नहीं होते. बांध पर मौजूद सभी लोगों ने चीख-चीखकर फजल को वापस आने के लिए कहा, लेकिन उसने सुनी अनसुनी कर दी और विरोधी लहरों से बल परीक्षण करता हुआ आगे बढ़ता रहा. सब हैरान हुए उस पागल को देख रहे थे.

लगभग एक सौ गज तैरने के बाद फजल ने तख्ते को पकड़ लिया, लेकिन तीखी और तेज लहरों को चीरकर उसे किनारे पर लाना कोई आसान काम न था. तख्ता हाथ में आ जाने से लोगों की आशा बंधी कि अब फजल डूब नहीं सकता. वह उसे पकड़कर बहता रहेगा.

अब फजल बांध से लगभग तीन सौ गज दूर चला गया था. वह किनारे की ओर आने के लिए लहरों से शक्तिपरीक्षण करता रहा. लहरों और इंसान की यह लड़ाई बिलकुल ऐसे लगती थी, जैसे दो पहलवान एक दूसरे से गुत्थमगुत्था हो रहे हों. फजल ने जब देखा, कि वह बांध से काफी दूर निकल आया है और तैरकर तख्ते को बांध पर ले जाना कठिन है तो उसने तख्ते को पूरी ताकत से किनारे की ओर फेंक दिया. तख्ता दस गज दूर जा पड़ा. फजल तेजी से हाथ-पांव मारता हुआ तख्ते की ओर बढ़ा और इससे पहले कि वह बहकर आगे निकल जाता उसे जा पकड़ा. फिर उसे ढकेलता हुआ किनारे पर ले आया. दो-तीन नौजवानों ने तख्ते को बाहर निकाला. फजल बुरी तरह हांफ रहा था. जवानों ने उसे बांध पर चढ़ने में मदद दी. सरदार के चेहरे पर चिंता के चिह्न प्रकट हो रहे थे. वह बड़ी नरमी से बोला, "मियां, यह तुमने क्या बेवकूफी की. एक तख्ते के लिए जान देने पर तुल गये."

"चाचा, यह तख्ता नहीं, हम लोगों की जान है. हमारी रूह है रूह." फजल ने जवाब दिया और फिर जवानों की ओर मुड़कर बोला, "तख्ता यहां ले आओ." कई जवान लपककर उसे उठा लाये.

"मैं केवल दो साल पाठशाला में पढ़ा हूं, लेकिन आप तो मुझसे ज्यादा पढ़ना-लिखना जानते हैं. पढ़िये," फजल ने तख्ते को सीधा करते हुए कहा. जो लोग पढ़ना जानते थे, उन्होंने फर-फर पढ़ा, "नियामत नगर की पाठशाला." सभी लोगों की नजरें साइन-बोर्ड पर केंद्रित थीं. फजल ने गंभीर आवाज में कहा, "चाचा, मैं देखते ही पहचान गया था. दिल में सोचा, पाठशाला तो बाढ़ की भेंट हो गयी, लेकिन साइन-बोर्ड को न बहने दूंगा. अभी कुछ देर पहले आप ने चींटियों के बारे में कहा था. क्या हम उनसे भी गये-गुजरे हैं."

सरदार ने भावनाओं से अभिभूत होकर फजल को अपने सीने से लगा लिया. ◻

प्रस्तुति : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मनाशा की हार

शिव प्रसाद सिंह

काले सांप का काटा आदमी बच सकता है, हलाहल जहर पीनेवाले की मौत रुक सकती है, किंतु जिस पौधे को एक बार कर्मनाशा का पानी छू ले, वह फिर हरा नहीं हो सकता. कर्मनाशा के बारे में किनारे के लोगों में एक और विश्वास प्रचलित था कि यदि एक बार नदी बढ़ आये तो बिना मानुस की बलि लिये लौटती नहीं. हालांकि थोड़ी ऊंचाई पर बसे हुए नयी डीहवालों को इसका कोई खौफ न था, इसी से वे बाढ़ के दिनों में, गेरू की तरह फैले हुए अपार जल को देखकर खुशियां मनाते, दो-चार दिन की यह बाढ़ उनके लिए तब्दीली बनकर आती, मुखियाजी के द्वार पर लोग-बाग इकट्ठे होते और कजली-सावन की ताल पर ढोलक ठनकने लगती. गांव के दुधमुंहे तक "ई बाढ़ी नदिया जिया ले के माने" का गीत गाते. क्योंकि बाढ़ उनके किसी आदमी का जिया नहीं लेती थी, किंतु पिछले साल अचानक जब नदी का पानी समुद्र की ज्वार की तरह उमड़ता हुआ नयीडीह से जा टकराया तो ढोलकें बह चलीं, गीत की कड़ियां मुरझाकर होंठों पर पपड़ी की तरह छा गयीं. सोखा ने जान के बदले जान देकर पूजा की, पांच बकरों की दौरी भेंट हुई, किंतु नदी का हौसला कम न हुआ. एक अंधी लंगड़ी, एक अपाहिज बुढ़िया बाढ़ की भेंट रहीं. नयी डीहवाले कर्मनाशा के इस उग्र रूप से कांप उठे, बूढ़ी औरतों ने कुछ सुराग मिलाया. पूजा-पाठ कराकर लोगों ने पाप शांति की.

एक बाढ़ बीती, बरस बीता. पिछले घाव सूखे न थे कि भादों के दिनों में फिर पानी उमड़ा. बादलों की छांव में सोया गांव भोर की किरण देखकर उठा तो सारा सिवान रक्त की तरह लाल पानी से घिरा था. नयीडीह के वातावरण में हौलदिली छा गयी. गांव ऊंचे अरार पर बसा था, जिस पर नदी की धारा अनवरत टक्कर मार रही थी, बड़े-बड़े पेड़ जड़मूल के साथ उलटकर नदी के पेट में समा रहे थे. यह बाढ़ न थी, प्रलय का संदेश था, नयीडीह के लोग चूहेदानी में फंसे चूहे की तरह भय से दौड़धूप कर रहे थे, सबके चेहरे पर मुर्दनी छा गयी थी.

"कल दीनापुर में कड़ाह चढ़ा था पांडेजी." ईसुर भगत हकलाते हुए बोला. कुएं की जगत से बाल्टी का पानी लिये जगेसर पांडे उतर रहे थे. घबड़ाकर बाल्टी सहित ऊपर से कूद पड़े.

"क्या कह रहे थे भगत, कड़ाह चढ़ा था, क्या कहा सोखा ने?" चौराहे पर छोटी भीड़ इकट्ठी हो गयी. भगत अपने शब्दों को चुभलाते हुए बोले, "काशीनाथ की सरन, भाई लोगों. सोखा ने कहा कि इतना पानी गिरेगा कि तीन घड़े भर जायेंगे, आदमी-मवेशी की छय होगी, चारों ओर हाहाकार मच जायेगा, परलय होगी."

"परलय न होगी, तब क्या बरक्कत होगी? हे भगवान, जिस गांव में ऐसा पाप करम होगा, वह बहेगा नहीं, तब क्या बचेगा?" माथे के लुग्गे को ठीक करती हुई धनेसरा चाची बोली, "मैं तो कहूं कि फुलमतिया ऐसी चुप काहे है. राम रे राम, कुतिया ने पाप किया, गांव के सिर बीता! उसकी माई कैसी सतवंती बनती थी. आग लाने गयी तो घर में जाने नहीं दिया, मैं तो तभी छनगी कि हो न हो दाल में कुछ काला है. आग लगे ऐसी कोख में. तीन दिन की बिटिया और पेट में ऐसी घनघोर दाढ़ी!"

"कुछ साफ भी कहोगी भौजी," बीच में जगेसर पांडे बोले, "क्या हुआ आखिर. . . ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदियों को सभ्यताओं की जननी कहा जाता है, मगर सहसा जब उनमें बाढ़ आ जाती है तो सभ्यताएं अपनी संस्कृति समेत उसी में समा जाती हैं. कितने-कितने आतंक और असुरक्षा में डूब जाता है जनजीवन! बचाव और सुरक्षा के लिए क्या-क्या उपाय नहीं किये जाते! जानवर तो क्या, नरबलि देने तक में हिचकिचाहट नहीं रहती. ऐसे वक्त में मनुष्य को क्या करना चाहिए आदि सवालों को रेखांकित करती प्राकृतिक आपदा की कहानी कि क्या नरबलि से बाढ़ रोकी जा सकती है या स्वयं नर ही इसकी गिरफ्त से छुटकारा पा सकता है?

"हुआ क्या, फुलमतिया रांड मेमना लेके बैठी है. विधवा लड़की बेटा बियाकर सुहागिन बनी है."

"एं, कब हुआ. . ."सबकी आंखों में उत्सुकता के फफोले उभर आये. आगत भय से सबकी सांसें टंगी रह गयीं. तभी मिर्चे की तरह तीखी आवाज में चाची बोलीं, "कोई आज की बात है? तीन दिन से सौरी में बैठी है डाइन. पाप को छाती से चिपकाये है."

लोगों को परलय की सूचना देकर, हवा में उड़ते हुए आंचल को बरजोरी बस में करती चाची दूसरे चौराहे की ओर बढ़ चलीं. गांव का सारा आतंक, भय, पाप उनके पीछे कुत्ते की तरह दुम दबाये चला जा जा रहा था. सबकी आंखों में नयीडीह का भविष्य था, रक्त की तरह लाल पानी में चूहे की तरह ऊभ-चूभ करते हुए लोग चिल्ला रहे थे, मौत का ऐसा भयंकर स्वप्न भी शायद ही किसी ने देखा था.

भैरो पांडे बैसाखी के सहारे अपनी बखरी के दरवाजे में खड़े बाढ़ के पानी का जोर देख रहे थे, अपार जल में बहते हुए सांप-बिच्छू चले जा रहे थे. मरे हुए जानवर की पीठ पर बैठा कौवा लहर के धक्के से बिछल जाता, भीगे चूहे पानी से बाहर निकलते तो चील झपट पड़ते. विचित्र दृश्य है—पांडे न जाने क्या बुदबुदाये. फिर बमट्टी की बनी पुरानी बखरी की ओर देखा. पांडे के दादा देस-दिहात के नामी-गिरामी पंडित थे, उनका एक अकबाल था कि कोई किसी को कभी सताने की हिम्मत नहीं करता था. उनकी बनवाई है यह बखरी. भाग की लेख कौन टारे. दो पुश्त के अंदर ही सभी कुछ खो गया, मुट्ठी में बंद जुगनू हाथ के बाहर निकल गया और किसी ने जाना भी नहीं. आज से सोलह साल पहले मां-बाप एक नन्हा भाई हाथ में सौंपकर चले गये. पैर से पंगु भैरो अपने दो बरस के छोटे भाई को कंधे से चिपकाये असहाय, निरअवलंब खड़े रह गये––धन के नाम पर बाप का कर्ज मिला, काम-धाम के लिए दुधमुंहे भाई की देख-रेख, रहने के लिए बखरी, जिसे पिछली बाढ़ के धक्कों ने एकदम जर्जर कर दिया है.

"अब यह भी न बचेगी." पांडे के मुंह से भवितव्य फूट रहा था, जिसकी भयंकरता पर उन्होंने जरा भी खयाल करना जरूरी नहीं समझा. रारों से भरी दीवालें उनके खुरदरे हाथों के स्पर्श से पिघल गयीं. वर्षा का पानी पसीजकर हाथों में आंसू की तरह चिपक गया.

सनसनाती हवा गांव के इस छोर से उस छोर तक चक्कर लगा रही थी. विधवा फुलमतिया को बेटा हुआ है, बेटा. कुतिया के पाप से गांव तबाह हो रहा है, राम-राम. . . ऐसा पाप. . . भैरो पांडे के कानों में आवाज के स्पर्श से ही भयंकर पीड़ा पैदा हो गयी. बैसाखी उनके शरीर के भार को संभाल न सकी और वे धम्म से चौकठ पर बैठ गये. बाजू के धक्के से कुहनी छिल गयी, चिनचिनाती कुहनी का दर्द उनके रोयें-रोयें में बिध रहा था और पांडे पीड़ा को होंठों के बीच दबाने का प्रयत्न कर रहे थे.

"सब कुछ गया." वे बुदबुदाये. कर्मनाशा की बाढ़ उनकी इस जर्जर बखरी को हड़पने नहीं, उनके पितामह की उस अमूल्य प्रतिष्ठा को हड़पने आयी है, जिसे इस विपन्न अवस्था में भी पांडे ने धरती पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रखा, दुलार से पली वह प्रतिष्ठा सदा उनके कंधे पर चढ़ी रही. "मैं जानता था कि यह छोकरा इस खानदान का नाश करने आया है." पांडे की आंखों में उनके छोटे भाई की तस्वीर नाच उठी. अठारह वर्ष का छरहरा पानीदार कुलदीप, जिसकी आंखों में भैरो की मां की छाया तैरती नजर आती, उसके काले काकुल को देखकर मुखियाजी कहते कि इस पर भैरो पांडे की दादी की लौछार पड़ी है. पांडे हो-हो कर हंस पड़ते, "जा रे कुलदीप, बरामदे में बैठकर पढ़." भैरो पांडे मन में बुद-बुदाते, 'तेरे आंख में सौ कुंड बालू, हरामी कहीं का, लड़के पर नजर गड़ाता है, कुछ भी हुआ इसे तो भगवान कसम तेरा गला घोंट दूंगा, बड़ा आया मुखियाजी," फिर जरा बढ़ के बोलते, "क्या लौछार पड़ेगी मुखियाजी, दादा के पास तो पांच पछाही गायें थीं, एक के एक-दो थन दुह लें तो पंचसेरी बाल्टी भर जाती थी. यहां तो इस लौंडे को दूध पचता ही नहीं .फिर साल-बारह महीने हमेशा मिलता भी कहां है हम गरीबों को?"

"अब पुराने जमाने की बात कहां रही पांडेजी," मुखिया कहता और अपने संकेतों से शब्दों में मिर्च की तिताई भरकर चला जाता. काले-काले काकुलों वाला नवजवान कुलदीप उसे फूटी आंखों नहीं सुहाता, किंतु भैरो पांडे के डर से वह कुछ कह न पाता.

भैरो पांडे दिनभर बरामदे में बैठकर रुई से बिनौले निकालते, तूंमते, सूत तैयार करते और अपनी तकली नचा-नचाकर जनेऊ बनाते, जजमानी चलाते, पत्रा देख देते, सत्यनारायण की कथा बांच देते, और इससे जो कुछ मिलता, कुलदीप की पढ़ाई और उसके कपड़े-लत्ते आदि में खर्च हो जाता.

यह सब कुछ मर-मरकर किया था इसी दिन को—पांडे की आंखों में प्यास छा गयी. लड़के ने उन्हें किसी ओर का नहीं रखा. आज यहां आफत मची है, अपने पता नहीं कहां भाग कर छिपा है.

"राम जाने कैसे हो." सूखी आंखों से दो बूंदें गिर पड़ीं, "अपने से तो कौर भी नहीं उठा पाता था. भूखा बैठा होगा कहीं, बैठे-मरे, हम क्या करें." पांडे ने बैसाखी उठायी. बगल की चारपाई तक गये और धम्म से बैठ गये. दोनों हाथों में मुंह छिपा लिया और चुप लेटे रहे.

पूरबी आकाश पर सूरज दो लठे ऊपर चढ़ आया था. काले-काले बादलों की दौड़-धूप जारी थी, कभी-कभी हल्की हवा के साथ बूंदें बिखर जातीं. दूर किनारों पर बाढ़ के पानी की टकराहट हवा में गूंज उठती. भैरो पांडे उसी तरह चारपाई पर लेटे आंगन की ओर देख रहे थे. बीचोंबीच आंगन के तुलसी-चौरा था और बरसात के पानी से कटकर खुरदरा हो गया था. पुराने पौधे के नीचे कई मासूम मरकती पत्तियोंवाले छोटे-छोटे पौधे लहराने लगे थे. वर्षा की बूंदे पुराने पौधे की सख्त पत्तियों पर टकरा कर बिखर जातीं, टूटी हुई बूंदों की फुहार धीरे से मासूम पौधों पर फिसल जाती, कितने आनंद-मग्न थे वे मासूम पौधे. पांडे की आंखों के सामने कातिक की वह शाम भी नाच उठी. दो बरस पहले की बात होगी. शाम के समय जब वे बरामदे में लेटे थे, फूलमती आयी अपनी बाल्टी मांगने, सुबह भैरो पांडे ले आये थे किसी काम से.

"कुलदीप, जरा भीतर से बाल्टी दे देना." कहा था पांडे ने. सफेद साड़ी में लिपटी-लिपटायी गुड़िया की तरह फुलमत आंगन में इसी चौरे के पास आकर खड़ी हो गयी थी. और बाल्टी उठाने के लिए जब कुलदीप झुका था तो फुलमत भी अपने दोनों हाथों से आंचल का खूंट पकड़कर तुलसीजी की वंदना करने के लिए झुकी थी. कुलदीप के झटके से उठने पर वह उसकी पीठ से टकरा गयी थी अचानक. तब न जाने क्यों दोनों मुस्करा पड़े थे. भैरो पांडे क्रोध से तिलमिला गये थे. वे गुस्से के मारे चारपाई से उठे तो देखा कि कुलदीप बाल्टी लिये खड़ा था और फुलमत तुलसी-चौरे पर सिर रखकर प्रार्थना कर रही थी. न जाने क्यों, पांडे की आंखें भर आयीं. बरसात के दिनों के बाद इस खुरदरे चौरे को उनकी मां पीली मिट्टी के लेपन से संवार देतीं, फिर श्वेत बलुई माटी से पोतकर सफेद कर देतीं. शाम को सूखे हुए चबूतरे पर घी के दीपक जलाकर माथा टेककर वे लड़कों के मंगल के लिए विनय करतीं. तब वे भी ऐसे ही झुककर आशीर्वाद मांगतीं और पांडे बगल में चुपचाप खड़े दियों का जलना देखा करते थे.

पांडे को सामने खड़ा देख कुलदीप हड़बड़ाया और फुलमत बाल्टी लेकर चुपचाप बाहर चली गयी. पांडे के चेहरे पर एक विचित्र भाव था, जिसे संभाल सकने की ताकत उन दोनों के मन में न थी, और दोनों ही भय की कंपन लिये इधर-उधर भाग खड़े हुए.

बहुत दिनों तक पांडे के चेहरे पर अवसाद का यह भाव बना रहा. कुलदीप डर के मारे उनकी ओर देख नहीं पाता, न तो पहले जैसी जिद कर सकने की हिम्मत होती, न तो हंसी के कलरव से घर के कोने-कोने को गुंजान बनाने का साहस. पांडे ने अपने दिल को समझाया, इसे लड़कों का क्षणिक खिलवाड़ समझा. सोचा, धरती की छाती बड़ी कड़ी है. ठेस लगते ही सारी गुलाबी पंखुरियां बिखर जायेंगी, दोनों को दुनिया का भाव-ताव मालूम हो जायेगा.

पांडे के रुख से फूलमत भी सशंक हो गयी थी, वह इधर कम आती. कुलदीप के उठने-बैठने, पढ़ने-लिखने पर पांडे की कड़ी नजर थी. वह किताब खोलकर बैठता तो दिये की टेम में श्वेत वस्त्रों में लिपटी फुलमत खड़ी हो जाती, पुस्तक के पन्ने खुले रह जाते और वह एकटक दिये की लौ की ओर देखता रह जाता. पांडे को उसकी यह दशा देखकर क्रोध आता, पर कुछ कहते नहीं.

"कुलदीप," एक बार टोक भी दिया था, "क्या देखते रहते हो इस तरह, तबीयत तो ठीक है न?"

"जी." इतना ही कहा था कुलदीप ने और फिर पढ़ने लग गया था. दिये की टेम कुलदीप के चेहरे पर पड़ रही थी, जिसके पीछे घने अंधकार में लेटे पांडे क्रोध, मोह और न जाने कितने प्रकार के भावों के चक्कर में झूल रहे थे. उन्हें फुलमत पर बेहद गुस्सा आता. टीमल मल्लाह की यह विधवा लड़की मेरा घर चौपट करने पर क्यों लगी है. पता नहीं, कहां से बह-दह कर यहां आकर बस गये, कुलच्छनी. अब क्या चाहती है, बाप मरा, पति मरा, अब न जाने क्या करेगी. जाने कौन-सा मंत्र पढ़ दिया. यह कबूतर की तरह मुंह फुलाये बैठा रहता है. न पढ़ता है, न लिखता है. हंसना, खेलना, खाना सब भूल गया. पांडे चारपाई से उतर-कर इधर-उधर चक्कर लगाते रहे, पर कुछ निर्णय न कर सके.

समय बीतता गया. कुलदीप भी खुश नजर आता. हंसता-खेलता. पांडे की छाती से चिंता का भारी पत्थर खिसक गया. एक बार फिर उनके चेहरे पर हंसी की आभा लौटने लगी. रुई-सूत का काम शुरू हुआ. गांव के दो-चार उठल्ले-निठल्ले आकर बैठ जाते, दिन गपास्टक में बीत जाता. सुरती मल-मल ताल ठोंकते और पिच से थूककर किसी को गाली देते या निंदा करते. इन सब चीजों से वास्ता न रखते हुए भी पांडे सुनते जाते. उनका मन तो चक्कर खाती तकली के साथ घूमता रहता, हूं-हां करते जाते और निठल्लों की बातों में सन्नाटे को किसी तरह झेल ले जाते.

पांडे उसी चारपाई पर लेटे थे. अंतर इतना ही था कि दिन थोड़ा और ऊपर चढ़ गया था, लहरों की टकराहट थोड़ी और तेज हो गयी थी, रक्त की तरह खौलता हुआ लाल पानी गांव के थोड़ा और निकट आ गया था. उनकी नसें किसी तीव्र व्यथा से चल रही थीं, "पांडे के वंश में कभी ऐसा नहीं हुआ था." वे फुसफुसाये. बगल की दीवार में ताखे पर रामायन की गुटका रखी थी, उन्होंने उठायी, एक जगह लाल निशान लगा था. पिछले दिनों कुलदीप रात में रामायन पढ़ा करता था. जब से वह गया है, आज तक गुटका खुली नहीं. पांडे के हाथ कांपे. गुटका उलटकर उनकी छाती पर गिर पड़ी. उठाकर खाला, वही लाल निशान.

कह सीता भा विधि प्रतिकूला.
मिलई न पावक मिटइ न सूला.
सुनहु विनय मम विटप असोका.
सत्य नाम करु हरु मम सोका.

पांडे की आंखें भभरा आयीं. झरझर आंसू गिरने लगे. हिचकी लेकर बेटूट पड़े, "यह चुड़ैल मेरा घर खा गयी." शब्द फूटे, किंतु भीतर घुमड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

रह गये, "गाली देने से ही क्या होगा अब, इतने तक रहता तो कोई बात थी, आज उसे बच्चा हुआ है, कहीं कह दे कि लड़का कुलदीप का है तो. . . नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता." पांडे बड़बड़ाये. उन्होंने अपने बालों को मुट्ठियों से कसकर खींचा, जैसे इनकी जड़ में पीड़ा जम गयी है, खींचने से थोड़ी राहत मिलेगी. वे उठना चाहते थे, किंतु उठ न सके. आंखों के सामने चिनगारियां टूटने लगीं. उन्हें आज मालूम हुआ कि वे इतने कमजोर हो गये हैं. कुलदीप के जाने के बाद से आज तक उनका जीवन अव्यवस्था की एक कहानी बनकर रह गया है. चार-पांच महीने से कुलदीप भागा है, पहले कई दिनों तक वे जरूर बेचैन थे, किंतु समय ने उस दुख को भुलाने में मदद की थी. आज फिर कुलदीप उनकी आंखों के सामने आकर खड़ा हो गया. बीती घटनाएं एक-एककर आंखों के सामने नाचने लगीं.

फागुन का आरंभ था. मुखियाजी की लड़की की शादी थी. गांव भर में खुशी छायी रहती, जैसे सब के घर शादी होने वाली हो. शादी के दिन तो गांववालों में बनने-संवरने की होड़ लग गयी. सब लोग पट्टी कटा रहे थे, शौकीनों की पट्टी चार-चार अंगुल चौड़ी बनी थी. कुंए की जगत पर दोपहर के दो घंटे पहले से भीड़ लगी थी, और अब दो बजने को आये, साबुन लग रही थी, पैरों में जमी मैल सिकड़े मैल से रगड़ रगड़कर छुड़ाई जा रही थी.

बारात आयी. द्वार-पूजा की शोभा का क्या कहना? बनारस की रंडी नाचने आयी थी. छैल-छबीलों की भीड़ जम गयी थी. शाम को महफिल जमी. मुखियाजी का दरवाजा आदमियों से खचाखच भरा था. एक और गली में सिमटकर औरतें बैठी थीं. गांव की लड़कियां, बूढ़ियां और कुछ मनचली बहुएं. बाईजी आयी. अपना ताम-झाम फैलाकर बैठ गयी. सारंगी लेकर बूढ़े मियां ने किन-किन किया, बाईजी ने अलाप के बाद गाया—

नीच ऊंच कुछ बूझत नाहीं, मैं हारी समझाय.

ये दो नैना बड़े बेदरदी दिल में गड़ि गये हाय.

महफिल से बहुत दूर, गांव के छोर पर आमों के पेड़ों पर फागुन के पीले चांद की छाया फैली थी, जिसके नीचे चितकबरे के चाम की तरह फैली चांदनी में एक प्रश्न उठा, "मुखियाजी की महफिल में पतुरिया ने जो गीत गया था, कितना सही था!"

"कौन-सा गीत?"

"ये दो नैना बड़े बेदरदी. . ."

"धत्!"

"उस दिन मैं बड़ी देर तक इंतजार करता रहा!"

"मेरी मां के सिर में दर्द था!"

"कौन है?" जोर की आवाज गूंज उठी थी.

पास की गली में एक छाया खो गयी थी.

"कौन है?" फिर आवाज आयी थी.

"मैं हूं कुलदीप!"

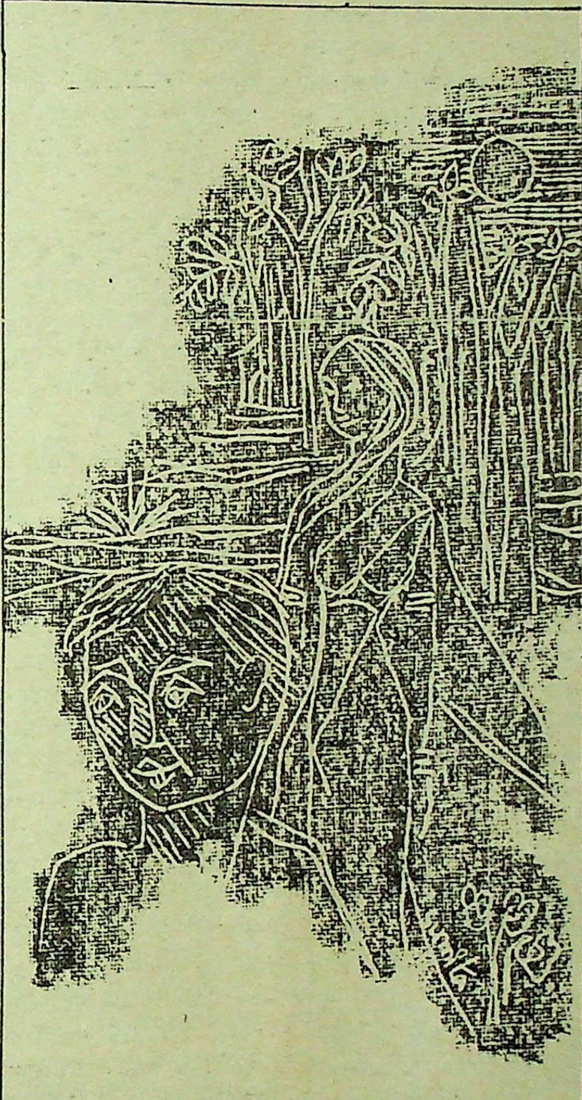

काश! फुलमत अपनी ही जात की होती. कितना अच्छा होता, यह विधवा न होती. तुलसी चौरे की वंदना पांडे के मस्तिष्क में चंदन की सुगंध की तरह छा गयी. उसका रूप, चाल-चलन, संकोच सब कुछ किसी को भी शोभा देने लायक था. एक क्षण के लिए उनकी आंखों के सामने सफेद साड़ी में लिपटी फुलमत की दुबली-पतली काया हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी.

"यहां क्या कर रहे हो?"

"नदी की ओर चला गया था!"

"इस समय?"

"पेट में दर्द था!"

क्रोध की हालत में भी भैरो पांडे मुस्करा उठे थे—झूठे, पेट में दर्द था कि आंख में. कुलदीप का सिर लज्जा से झुक गया था. उसे लगा जैसे एक क्षण का यह भयप्रद जीवन उसकी आत्मा पर सदा के लिए छा जायेगा. एक क्षण के लिए बोला हुआ यह झूठ उसके सारे जीवन को झूठा साबित कर देगा. एक क्षण के लिए झुका यह माथा फिर कभी न उठ सकेगा. वह झूठ के इस पर्दे को फाड़ डालना चाहता था, किंतु. . . "कुलदीप," भैरो पांडे ने आहिस्ते-आहिस्ते कहा, "तुम गलत रास्ते पर पांव रख रहे हो बेटा, तुमने कभी अपने बाप-दादों की इज्जत के बारे में भी सोचा है? बड़े पुण्य के बाद इस घर में जन्म मिला है भाई, इसे कभी मत भूलना कि अच्छे घर में जन्म लेने से कोई बहुत बड़ा नहीं हो जाता, किंतु इस अवसर को गलत कहकर नीचे गिरने से बड़ा पाप और कोई नहीं है." कुलदीप को लगा कि तीखे कांटोंवाली कोई जीवित मछली उसके गले में फंस गयी है, गरदन को चीरती हुई यदि वह निकल जाये तो गनीमत किंतु यह असह्य पीड़ा तो नहीं सही जाती और न जाने क्यों वह हिचकियों में फूट-फूटकर रो उठा. भाई के मन की पीड़ा की कल्पना भी उसके लिए कष्टकर थी, किंतु उसकी आत्मा अपने संपूर्ण भाव से जिस वस्तु को वरेण्य समझती है, उसे वह एकदम ही व्यर्थ कैसे कह दे. जिस छाया में न जाने क्यों उसे एक अजाने आनंद का अनुभव होता है, उसे कालिख कह सकना उसके वश की बात नहीं थी, और इस कष्ट के भार को उसकी आंखें संभाल न सकीं. भैरो पांडे भी भाई से लिपट गये थे. उसकी पीठ सहला रहे थे और उसे बार-बार चुप हो जाने को कह रहे थे, 'यदि कोई देख ले तो' उनके मन में आया और वे कुलदीप को जल्दी-जल्दी खींचते हुए एक ओर चले गये.

आंसुओं में जो पश्चाताप उमड़ता है, वह दिल की कलौज को मांज डालता है. पांडे ने सोचा था कि कुलदीप अब ठीक रास्ते पर आ जायेगा. उनके वंश की मर्यादा अपमान के तराजू पर चढ़ने से बच जायेगी, मूर्खों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहकर भी पांडे ने इज्जत के जिस बिरवे को खून से सींचकर तरोताजा रखा है, उस पर किसी के व्यंग्य-कुठार नहीं चलेंगे, किंतु एक महीना भी नहीं बीता कि कुलदीप फिर उसी रास्ते पर चल पड़ा. भाई के इस कार्य को छिपकर देखने की पापाग्नि में भैरो पांडे अपनी आत्मा को जलते हुए देखते, किंतु वे विवश थे.

चैत के दिनों में गर्मी से जली-पती कर्मनाशा किनारे के नीचे सिमट गयी थी. नदी के पेट में दूर तक फैले हुए लाल बालू का मैदान, चांदनी में सीपियों के चमकते हुए टुकड़े. सामने के ऊंचे अरार पर घन-पलास के पेड़ों की आरक्त पांतें. बीच में घुग्घू, चाहों और जल विहार करनेवाले पक्षियों का स्वर. . . कगार से नदी तीर तक बने हुए छोटे-बड़े पैरों के निशान की दो पंक्तियां. . . सिर्फ दो.

"तुम मुझे मझधार में लाकर छोड़ तो नहीं दोगे." घुटन और शंका में खोये हुए धीमे स्वर. श्यामा की चीरती दर्द-भरी आवाज.

एक चुप्पी, फिर हकलाती आवाज, "मैं अपना प्राण दे सकता हूं, किंतु. . . तुमको. . . कभी नहीं. . ."

चांदनी की झीनी परतें सघन होती जा रही थीं, सुनसान किनारे पर भटकी हवा की सनसनाहट में आवाजों का अर्थ खो जाता, कभी हल्के हास्य की नर्म ध्वनि, कभी आक्रोश के बुलबुले, कभी उल्लास तरंग, कभी सिसकियों की सरसराहट. . .

भैरो पांडे एक बार चांदनी के इस पवित्र आलोक में अपनी क्रूरता और निर्ममता पर विचार करने के लिए रुक गये. तो क्या आज तक का उनका सारा प्रयत्न निष्फल था? क्या वे असाध्य को संभव बनाने का ही प्रयत्न करते रहे? एक क्षण के लिए भैरो पांडे ने सोचा—काश, फुलमत अपनी ही जाति की होती. कितना अच्छा होता, यह विधवा न होती. . . तुलसी चौरे की वंदना पांडे के मस्तिष्क में चंदन की सुगंध की तरह छा गयी. उसका रूप, चाल-चलन संकोच सब कुछ किसी को भी शोभा देने लायक था. एक क्षण के लिए उनकी आंखों के सामने सफेद साड़ी में लिपटी फुलमत की पतली-दुबली काया हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी, जैसे वह आंचल फैलाकर आशीर्वाद मांग रही हो. भैरो पांडे विजड़ित खड़े थे, विमूढ़.

"यह असंभव है." पांडे ने बैसाखी संभाली और नीचे की ओर लपके.

"कुलदीप!" बड़ी कर्कश आवाज थी पांडे की.

दोनों सिर झुकाये सामने खड़े थे. आज पहली बार पाप की साक्षी में दोनों समवेत दिखायी पड़े थे. पांडे फिर एक क्षण के लिए चुपचाप हो गये.

"मैं पूछता हूं, यह सब क्या है?" पांडे चिल्लाये, "इतने निर्लज्ज हो तुम दोनों?" पांडे बढ़कर सामने आये, फुलमत की ओर मुंह फेरकर बोले, "तू इसकी जिंदगी क्यों बिगाड़ना चाहती है? क्या तू नहीं जानती कि तू जो चाहती है, वह स्वप्न में भी नहीं हो सकता, कभी नहीं."

फुलमत चुप थी, पांडे दूने क्रोध से बोले, "चुप क्यों है चुड़ैल, बोलती क्यों नहीं?"

"मैं क्यों इनकी जिंदगी बिगाड़ूंगी दादा?" वह सहसा एकदम निचुड़ गयी, "मैंने तो उन्हें कई बार मना किया. . ."

"कुलदीप." पांडे दहाड़े, "सीधे रास्ते पर आ जाओ, अच्छा होगा. तुमने भैरो का प्यार देखा है, क्रोध नहीं, जिन हाथों से मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया है, उन्हीं से तुम्हारा गला घोंटते मुझे देर न लगेगी."

"दादा." कुलदीप हकलाया, "हम दोनों. . ."

"पापी, नीच. . ." भैरो पांडे के हाथ की पांचों अंगुलियां कुलदीप के चेहरे पर उभर आयीं, "मैं सोचता था, तू ठीक हो गया." पांडे क्रोध से कांप रहे थे, "लेकिन नहीं, तू मेरी हत्या करने पर तुल ही गया है." वे फुलमत की ओर घूमकर चिल्लाये, "क्या खड़ी है डायन, भाग नहीं तो तेरा गला घोंटकर इसी पानी में फेंक दूंगा."

अंधड़ को पीते हुए तृषित सांप जैसा स्वर, "यह सब मैंने किया था."पांडे चारपाई पर घायल सांप की तरह तड़फड़ाते हुए बुदबुदाये. उनकी छाती से सरककर रामायन की गुटका जमीन पर गिर पड़ी और उस पवित्र आराध्य वस्तु को उठाने का उन्हें ध्यान न रहा. कुलदीप दूसरे ही दिन लापता हो गया. पांडे अपनी बैसाखी के सहारे दिनभर गांव-गिरांव की खाक छानते फिरे, किंतु वह नहीं मिला. थककर, हारकर पांडे वापस आ गये. बाप-दादों की इज्जत की प्रतीक इतनी लंबी विशाल बखरी, जिसकी दीवालें मुंह दबाये शांति पुजारी के तप की तरह अडिग खड़ी थीं, किंतु कितनी सुनसान, डरावनी, निष्प्राण पिंजर की तरह लगती थी यह बखरी. चौकठ पर पैर रखते हुए पांडे की आत्मा कराह उठी, "चला गया!" बैशाखी रखकर पांडे आंगन के कोने में बैठ गये, "अब वह कभी नहीं लौटेगा."

रात में उन्हें बड़ी देर तक नींद नहीं आयी. कुलदीप को बचपन से लेकर आज तक उन्होंने कभी अपनी आंख से ओट नहीं होने दिया. छुटपन से लेकर आज तक खिलाया-पिलाया, पाला-पोसा और आज लड़का दगा देकर निकल गया. पांडे अधरों की मेड़ के पीछे विथा के सैलाब को रोकने का असफल प्रयत्न करते रहे.

भोर होने में देर थी, उनींदी आंखें करुआ रही थीं, किंतु मन की जलन के आगे उस दर्द का क्या मोल. पांडे उठकर टहलने लगे. सामने के बंसवार के भीतर से पूरबी क्षितिज पर ललछौंहा उजास फूटने लगा था. गली की मोड़ के कच्चे मकान के भीतर से जांत की घर्र-घर्र गूंज रही थी. एक घुमड़ता गरगराहट का स्वर, जिसके पीछे जांतवाली के कंठ की व्यथा की एक सुरीली तान टूट-टूटकर कौंध उठती थी:

मोहे जोगिनी बनाके कहां गइले रे जोगिया.

पांडे एक क्षण अवाक् होकर इस दर्दीले गीत को सुनते रहे. पियासे, भूले-भटके, थके हुए स्वर, पांडे की आत्मा में जैसे समान वेदना को पहचानकर उतरते चले जा रहे हों.

"अब रोने चली है चुड़ैल." पांडे पागल की तरह बड़बड़ाते रहे, "रो रोकर मर, मैं क्या करूं?"

बाढ़ के लाल पानी में सूरज डूब रहा था, पांडे बैसाखी के सहारे आकर दरवाजे पर खड़े हुए, नदी की ओर आदमियों की भीड़ खड़ी थी. वे धीरे-धीरे उधर ही बढ़े. सामने तीन-चार लड़के अरहर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

का भाव लाकर बोले.

"देखता नहीं लंगड़ा, बाढ़ रोक रहे हैं."

पांडे मुस्कराये, "जैसा बाप वैसा बेटा. तेरा दादा भी खूंटियां गाड़कर कर्मनाशा की बाढ़ रोकना चाहता है."

"वह भीड़ कैसी है रे छबीले?"

"नहीं जानते, फुलमत को नदी में फेंक रहे हैं, उसके बच्चे को भी. उसने पाप किया है." छबीला फिर गंभीर खड़े पांडे से सटकर बोला, "क्यों पांडे चाचा, जान लेकर बाढ़ उतर जाती है न?"

"हां-हां," पांडे आगे बढ़े. बोतल की टीप खुल गयी थी. पांडे के मन में भयानक प्रेत खड़ा हो गया, "चलो, न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी. हूं, चली थी पांडे के वंश में कालिख पोतने. अच्छा ही हुआ कि वह छोकरा भी आज नहीं है..."

फूलमत अपने बच्चे को छाती से चिपकाये टूटते हुए अरार पर एक नीम के तने से सटकर खड़ी थी. उसकी बूढ़ी मां जार-बेजार रो रही थी, किंतु आज जैसे मनुष्य ने पसीजना छोड़ दिया था. अपने-अपने प्राणों का मोह इन्हें पशु से भी नीचे उतार चुका था, कोई इस अन्याय के विरुद्ध बोलने की हिम्मत नहीं करता था. कर्मनाशा को प्राणों की बलि चाहिए. बिना प्राणों की बलि लिये बाढ़ नहीं उतरेगी... फिर उसी की बलि क्यों न दी जाये, जिसने पाप किया... परसाल जान के बदले जान दी गयी, पर कर्मनाशा दो बलि लेकर ही मानी... त्रिशंकु के पाप की लहरें किनारों पर सांप की तरह फुफकार रही थीं. आज मुखिया का विरोध करने का किसी में साहस न था. उसके नीचता के कार्यों का ऐसा समर्थन कभी न हुआ था. "पता नहीं, किसी बैर का बदला ले रहा है बेचारी से." भीड़ में कई इस तरह सोचते, ऐसा तो कभी नहीं हुआ था, किंतु कौन बोले, सब मुंह सिये खड़े थे...

"तुम्हारी क्या राय है भैरो पांडे." मुखिया बोला, "सारे गांव ने फैसला कर दिया—एक के पाप के लिए सारे गांव को मौत के मुंह में नहीं झोंक सकते. जिसने पाप किया है, उसका दंड भी वही भोगे..."

एक वीभत्स सन्नाटा. पांडे ने आकाश की ओर देखा, आगे बढ़े. फुलमत भय से चिल्ला उठी. पांडे ने बच्चे को उसकी गोद से छीन लिया, "मेरी राय पूछते हो मुखियाजी तो सुनो, कर्मनाशा की बाढ़ दुधमुंहे बच्चे और एक अबला की बलि देने से नहीं रुकेगी, उसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर बांधों को ठीक करना होगा... कुलदीप कायर हो सकता है, वह अपने बहू-बच्चे को छोड़कर भाग सकता है, किंतु मैं कायर नहीं हूं, मेरे जीते-जी बच्चे और उसकी मां का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता... समझे!"

"तो यह है बूढ़े पांडेजी की बहू!" मुखिया व्यंग्य से बोला, "पाप का फल तो भोगना ही होगा पांडेजी, समाज का दंड तो झेलना ही होगा."

"जरूर भोगना होगा मुखियाजी... मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता, किंतु मैं एक-एक के पाप गिनाने लगूं तो यहां खड़े सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा... है कोई तैयार जाने को?"

लोग अवाक् पांडे की ओर देख रहे थे, जो अपने कंधे से छोटे बच्चे को चिपकाये अपनी बैसाखी के सहारे खड़े थे. पत्थर की विशाल मूर्ति की तरह उन्नत, प्रशस्त, अटल... कर्मनाशा के लाल पानी में सूरज डूब रहा था.

जिन उद्धत लहरों की चपेट से बड़े-बड़े विशाल पीपल के पेड़ धराशायी हो गये थे, वे एक टूटे नीम के पेड़ से टकरा रही थीं. सूखी जड़ें जैसे सख्त चट्टान की तरह अडिग थीं, लहरें टूट-टूटकर पछाड़ खाकर गिर रही थीं. शिथिल... थकी... पराजित.... □

(वाणी प्रकाशन, दरिया गंज, नयी दिल्ली से प्रकाशित शिवप्रसाद सिंह की संपूर्ण कहानियां'—खंड दो में संकलित)

विश्व-श्रेणी की क्वालिटी
फिर भी इस्तेमाल बिल्कुल आसान
—अपने घर पर भी!

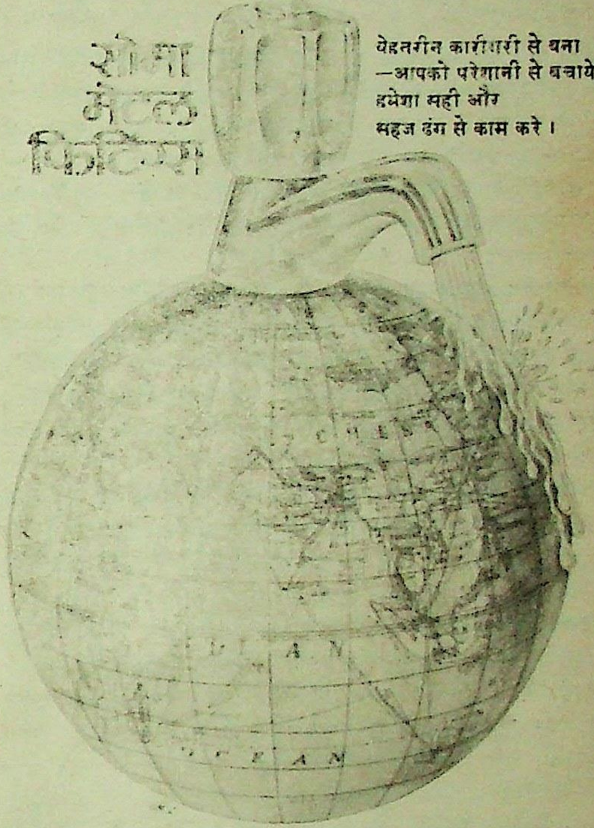

बेहतरीन कारीगरी से बना
—आपको परेशानी से बचाये,
हमेशा सही और
सहज ढंग से काम करे।

सोमा की खास खूबियाँ

* ... आसान-पकड़वाले चित्ताकर्षक ... बदले-बदले जा सकते हैं।

* खूबसूरत और हैवी-ड्यूटी मॉडलों में से पसन्द करने की सुविधा।

सहज रखरखाव—हर समय आपके हाथ में

* हमेशा एक अतिरिक्त कारट्रिज घर में रखिए—यह वहीं मिल जायेगा जहाँ से आप सोमा फिटिंग खरीदते हैं। अगर आपके नल में कोई गड़बड़ी हो, तो सिरे को उल्टी तरफ घुमा कर खोलिए, कारट्रिज को निकाल लीजिए और नया कारट्रिज डाल कर सिरे को फिर से लगा दीजिए।

® सोमा प्लम्बिंग फिक्सचर्स लिमिटेड

जिसके निर्माता हैं

VITREOUS ® हिन्दुस्तान सैनिटरीवेअर

२ रेड क्रास प्लेस, कलकत्ता-७०० ००१, भारत

SAA/SPF/7A1 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंशीगंज बना जब जलियांवाला बाग !

महेश दर्पण

रायबरेली का मुंशीगंज. पुल पर बैलगाड़ियां खड़ी करके रास्ता रोक लिया गया था. पुल के एक सिरे पर हथियारबंद सेना मौजूद थी तो पुल के उस पार कृतसंकल्प जन-समूह. एक ओर सई नदी की धारा थी तो दूसरी ओर रेल लाइन. पीछे बाग, सरवत पुंज और रेल-लाइन का फाटक था. सड़क और रेल की पटरी के बीच का त्रिकोण किसानों का जमावड़ा बना था. भीड़ बढ़ रही थी और भाग सकने का कोई रास्ता न था.

बाबू किस्मत राय जी-जान से भीड़ को काबू करने की कोशिश कर रहे थे. प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि बाबू किस्मत राय की कोशिश ठीक उसी तरह की थी जैसी कोशिश जलियांवाला बाग में हंसराज ने की थी. शहर रायबरेली से करीबन ढाई किलोमीटर की दूरी पर स्थित मुंशीगंज में यह भीड़ अत्याचार के विरुद्ध अपना आक्रोश प्रकट करने आयी थी.

दरअसल, चंदनिहा और फुरसतगंज गोलीकांड में कई महत्वपूर्ण किसान-नेताओं की हत्या की खबरों से किसान बहुत क्षुब्ध हो उठे थे. छह जनवरी, सन् 1921 के दिन फुरसत गंज में जिस तरह किसानों की निर्दोष भीड़ पर खुल्लमखुल्ला गोली बारी की गयी थी, उसका सीधा असर किसान-समाज पर हुआ. उसी रात उनके दल रायबरेली की ओर चल पड़े. सबसे ज्यादा तादाद में चंदनिहा, जगतपुर, ऊंचाहार, बेलाखारा, बेलामेला जैसी जगहों से लोग सई नदी के किनारे पहुंचे. खबर जब फुरसतगंज पहुंची तो वहां के लोग भी आ खड़े हुए. कई हजार किसान सुबह के समय जोशोखरोश से नारे लगा रहे थे. . . वे कभी महात्मा गांधी की जय बोलते तो कभी जवाहरलाल नेहरू की...और कभी बाबा रामचंद्र की. स्थिति की गंभीरता को देखते हुए नेहरूजी को किसान नेताओं ने पहले ही तार के जरिए खबर भिजवा दी थी.

किसानों का समूह बार-बार आग्रह कर रहा था कि उसे जेलखाने तक जाकर अपने नेताओं से मिलने का मौका दिया जाये. वह बाबा जानकी दास को देखना चाहते थे. किसानों को यह आशंका थी कि सरकार ने बाबा जानकीदास को मरवा दिया है. सरकारी अधिकारियों का विवेक उस वक्त उनके साथ नहीं था. बाबा जानकी दास को लखनऊ जेल भिजवा दिया गया था.

भीड़ चिल्ला रही थी. अधिकारी खामोश थे. उनकी खामोशी ने भीड़ की आशंका को और पुख्ता कर दिया. किसान सोचकर आये थे कि पीछे नहीं हटना है और सेना इस बात पर अड़ी थी कि किसानों को आगे नहीं बढ़ने देना है. जिला पुलिस अधिकारी एस. आर. चेयर सहित पुलिस की टुकड़ी और मजिस्ट्रेट भी वहां मौजूद थे.

खुरहेटी के वीरपाल सिंह की कोठी जेल के पास ही थी. वे इस बात को लेकर चिंतित थे कि किसानों का हमला जेल के साथ-साथ कहीं उनकी कोठी पर भी न हो जाये. तालुकेदारी के साथ ही वीरपाल सिंह तत्कालीन एम. एल. ए. थे. करीब दस बजे वे जिला-अधिकारी ए. जी. शेरिफ से मिले और उन्हें बताया कि एक बड़ा मजमा जेल की तरफ बढ़ा चला जा रहा है.

शेरिफ तुरंत गाड़ी लेकर घटनास्थल पर जा पहुंचे. उन्होंने कुछ गणमान्य लोगों सहित किसानों को समझाने की कोशिश की. करीब दो हजार की संख्या में ये लोग लेबर कोर लाइन से होकर मुंशीगंज पुल की तरफ हटने लगे. तभी एक और मजमा आकर जुड़ गया और लोगों की संख्या और बढ़ गयी.

कप्तान ने शेरिफ साहब को बताया कि किसानों के रेले को रोक पाना नामुमकिन है. स्थिति जब बिगड़ती दिखाई दी तो शेरिफ साहब ने मुंशी किस्मत राय वकील से आग्रह किया कि वे भीड़ को काबू में करने की कोशिश करें. किस्मत राय अच्छे वक्ता होने के बावजूद भीड़ को काबू न कर सके.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम, दाम, दंड, भेद-राजाओं से लेकर राजनेताओं तक की नीति रही है. प्रशासन पर दबाव डालकर अफसरों, सिपाहियों और सैनिकों के कंधे पर बंदूक रखकर दागने का काम राजनीति और इजारेदारों का प्रिय खेल है. यह खेल जनता के लिए प्रायः किस कदर संहारक हो उठता है इसके कई नमूने हमारे देश में सांप्रदायिक दंगों के संदर्भ में बिखरे हुए हैं. इन नमूनों को बटोरना एक दर्द भरा काम है, इसलिए बहुत जरूरी है कि इनके अंजाम से सबक लिया जाये. अतः यह जानने के लिए कि यह सब क्यों, कैसे और किसलिए होता रहता है, प्रस्तुत हैं देश और विदेश में घटित नरसंहार की दो ऐसी भयावह घटनाएं, जिनके बारे में लोग बस न के बराबर ही जानते हैं. इस पृष्ठ पर प्रकाशित घटना उस जमाने की है जब भारत में अंग्रेजों का राज था, पर इस नरसंहार के असल जिम्मेदार थे हमारे ही अपने लोग . . . .

अब तीन बज चुके थे. शेरिफ साहब ने पुलिस कप्तान से बातचीत करते हुए यह तय पाया कि कुछ सवार पुल पर तैनात कर दिये जायें. ये सवार धीरे-धीरे सड़क पर से लोगों को हटा दें. उधर बढ़ते-बढ़ते किसानों की संख्या करीब दस हजार हो गयी थी. सभी के हाथों में लाठियां थीं.

ठीक तीन बजे पुलिस सवारों को उस पार एक सीध में दूर तक फैला दिया गया. इन्हें यह आदेश था कि सड़क-सड़क मजमे को हटाते हुए आगे बढ़ें. पर मजमा था कि हटने का नाम ही नहीं ले रहा था.

तभी एकाएक इस घटना ने नया मोड़ लिया. सवार वापस लौट रहे थे. उन्होंने बताया कि पत्थरों की बारिश शुरू हो गयी है. बाग के पिछवाड़े से पत्थर आ रहे थे. तभी बायीं ओर से 'फायर' की आवाज हुई और बहुत कम समय में, बहुत ज्यादा गोलियां बरस गयीं.

'फायर' का आदेश किसने दिया?... यह सवाल एक अबूझ पहेली बनकर रह गया. इस विषय में 18 अप्रैल, सन् 1921 को अदालत में शेरिफ ने बयान दिया– 'तभी बायीं तरफ से मुझे 'फायर' की आवाज सुनाई पड़ी. थोड़े अर्से में बहुत से फायर हुए. मुझे भी एक पत्थर लगा. . . पांच मिनट से ज्यादा फायरिंग नहीं हुई. मुझे उस वक्त यह नहीं मालूम हो सका कि फायरिंग कैसे हुई. . .मेरे फायर करने से पहले ही फायरिंग शुरू हो गयी थी. मेरा फायर किसी को नहीं लगा. जब मैं सवारों को वापस लाया तब मैंने घायलों और मृतकों का इंतजाम किया. जब मैं पुल पर वापस आया तो मुझे यह खबर मिली कि जवाहर लाल नेहरू पुल के उस पार भाषण कर रहे हैं. . .'

जिलाधीश का कहना था कि उन्हें अपनी बायीं ओर से 'फायर' की आवाज सुनाई पड़ी. उनके बायीं ओर कौन रहा होगा? फायर किसने किया था?. . .और उसके बाद अनायास फायरिंग की शुरुआत हो कैसे गयी? यह गुत्थी आज तक अनसुलझी ही पड़ी है.

इस रोज, मुंशीगंज में एकत्र हुए किसानों पर जो गोलीबारी हुई. . . उसने सई नदी के पानी का रंग लाल कर दिया. रात भर में ट्रकों में लाद-लादकर लाशें डलमऊ भिजवा दी गयीं. बाद में बिखरी हुई लाशों को एक साथ रेत में दबा दिया गया. असंख्य घायल भाग गये और कुछ को हस्पतालों में दाखिल कराया गया. इस जघन्य हत्याकांड की जिम्मेदारी, हर ओर से वीरपाल सिंह पर थोपी गयी. . .

वीरपाल सिंह और डिप्टी कमिश्नर के बयान इतने उलझाव भरे थे कि मुंशीगंज के इस गोलीकांड की गुत्थी और उलझ गयी. फिर भी प्रत्यक्षदर्शियों के विवरण से यह उलझन कुछ कम होती है.

'. . .यदि आंख उठाकर देखा जाये तो यह हत्याकांड, पंजाब से तनिक भी न्यून नहीं कहा जा सकता. अवध के तालुकेदारों की नादिरशाही किसी से छिपी नहीं है.'

'स्थानीय डायर वीरपाल को सजा अवश्य मिलनी चाहिए. असहाय, निहत्थी प्रजा जंगली जानवरों की तरह मारी गयी है.'

यह तो एक प्रत्यक्षदर्शी का अखबार के नाम पत्र था. . .पर यदि हम पंडित मदन मोहन मालवीय, पंडित जवाहर लाल नेहरू और पंडित अंजनी कुमार के वक्तव्य गौर से देखें तो स्थिति और भी साफ हो जाती है.

पंडित मदन मोहन मालवीय ने 5 जुलाई, 1921 को दिये एक बयान में बताया—'एक आदमी खाकी रंग के कपड़े पहने आया. . . उसने बताया कि वीरपाल सिंह ने गोली यहां से चलायी थी. उसने राजा रामपाल सिंह के सामने भी वैसा ही बयान दिया.'

पंडित मोतीलाल नेहरू ने कहा—'अस्पताल जाकर जख्मियों को देखा. अधिकतर लोग कहते थे कि वीरपाल ने फायरिंग की है. मुमकिन है कि किसी शख्स ने यह भी जिक्र किया हो कि अव्वल फायर वीरपाल सिंह ने किया है.'

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने बयान में बताया—'पुलिस के उस पार हमें दो जख्मी आदमी एक बैलगाड़ी में रायबरेली की तरफ आते हुए मिले. हमने उनसे बातचीत की. उनके जख्म देखे. उनसे फायरिंग की निस्बत पूछा. उन्होंने हमें बताया कि वीरपाल सिंह ने उन पर अपनी मोटर में बैठे-बैठे फायर किया.'

यानी वीरपाल ने पहले पिस्तौल से फायर किया, फिर मोटर में बैठे-बैठे बंदूक से अंधाधुंध फायर किये. बाद में वे अपनी जान बचाने की खातिर सफाई देते फिरे. पंडित अंजनी कुमार ने लिखा है—'समझाने-बुझानेवालों में एक तालुकेदार वीरपाल भी थे. जब वे किसानों की भीड़ को समझा रहे थे, उस समय उन्हें अपनी ही रियासत का एक किसान शिव बालक बेडिया दिखायी पड़ा. वीरपाल सिंह ने उसे गाली दी. शिव बालक ने भी गुस्ताखी भरा जवाब दे दिया. वीरपाल ने आव देखा न ताव, झट पिस्तौल निकालकर उसके सीने पर गोली दाग दी. उधर दूसरे छोर पर तैनात पुलिस और फौज ने पिस्तौल की आवाज को गोली चलाने का सिग्नल समझकर तड़ातड़ गोलियां चलाना शुरू कर दिया. निहत्थे किसान तड़प-तड़पकर मरने अथवा भागने लगे. . . .बहुत बड़ी संख्या में निरीह किसान नारे लगाकर मरते रहे. . .काफी देर बाद अधिकारियों को उस गलतफहमी का पता लगा. . .'

मुकदमा जीतने के बाद भी वीरपाल के हाथों में लगा खून धुल न सका. किसानों की सामूहिक हत्या के लिए जिम्मेदार इस आदमी को जनता मुंशीगंज गोलीकांड का 'डायर' बताती रही.

13 जनवरी, 1921 को विद्यार्थीजी ने 'दैनिक प्रताप' के अग्रलेख में लिखा—'डायर ने जो कुछ किया था उससे रायबरेली के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने क्या कम किया? निहत्थों और निर्दोषों पर उसने गोलियां चलवायीं. . .अंतर था भी तो वह यह कि वहां मशीनगनें थीं यहां बंदूकें थीं. वहां घिरा हुआ एक बाग था और यहां नदी का किनारा. परंतु निर्दयता और पशुता की मात्रा में किसी प्रकार की कमी नहीं थी. मरनेवालों के लिए मुंशीगंज की गोलियां वैसी ही कातिल थीं जैसी जलियांवाला बाग की गोलियां. क्रूरता की क्रिया भी उतना ही जघन्य रूप धारण किये थी. . .पता नहीं जलियांवाला बाग में डायर ने अपने हाथ से गोलियां चलायी थीं अथवा नहीं, परंतु यहां डायर का एक भाई मौजूद था. रंग और रूप में नहीं, जाति और धर्म में नहीं, परंतु हृदय की क्रूरता में ठीक डायर का ही-सा! देश के दुर्भाग्य से यह आदमी है एक भारतीय और उसका नाम है—वीरपाल सिंह!'

चौसठ साल बाद भी यह ऐतिहासिक 'नरसंहार' अपनी अमानवीयता के लिए अविस्मरणीय बना हुआ है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

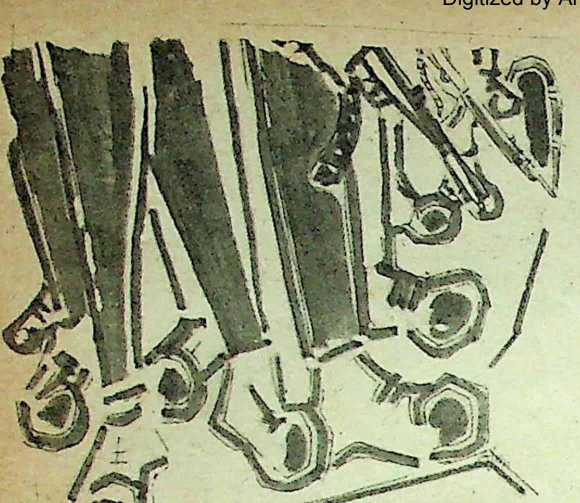

अमानवीय स्थितियों में जी रहे, अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत तीन हजार मजदूरों को एक जगह एकत्र करके मशीनगनों की बौछार से भून दिया जाये और उसके बाद सरकार कहे कि यहां न तो कुछ हुआ है और न कभी होगा, तो इसे आप क्या कहेंगे? . . . . और खासकर तब क्या कहेंगे जबकि जनता भी यही यकीन कर ले कि हां, यहां कोई नहीं मरा! ––प्रस्तुत है नोबेल पुरस्कार विजेता लेखक के विश्वप्रसिद्ध उपन्यास का एक अंश कि कैसे सैनिक सरकार और प्रशासन की मिलीभगत ने एक खूंखार हादसे को इस कदर सफाचट्ट कर दिया कि उसकी न तो कोई गवाही मिली और न ही निशानदेही! . . . .

सौ बरस की तनहाई

गार्सिया मार्खेज़

नवजात आरेलियानो एक साल का था, जब लोगों में बिना किसी पूर्व चेतावनी के तनाव भड़क उठा. जोस आर्कादियो सेगुंदो और दूसरे यूनियन नेता जो उस समय तक भूमिगत थे, अचानक एक शनिवार को प्रकट हो गये और समूचे केला बागान क्षेत्र के नगरों में प्रदर्शन संगठित करने लगे. पुलिस को सिर्फ अमन-क़ानून कायम रखना था. लेकिन सोमवार की रात को नेताओं को उनके घरों से पकड़कर, पैरों में दो-दो पाउंड वजन की बेड़ियां डालकर प्रांतीय राजधानी की जेल में डाल दिया गया. उनमें जोस अर्कादियो सेगुंदो और लोरेंजो गाविलान भी थे, जो मैक्सिको की क्रांति में एक कर्नल रहा था. उसे देश निकाला देकर माकोंदो भेज दिया गया था. वह कहा करता कि उसने अपने साथी आर्तेमियो क्रुज की जांबाजी देखी थी. लेकिन सारे नेता तीन महीने के भीतर रिहा कर दिये गये, क्योंकि केला बागान कंपनी और सरकार में यह समझौता नहीं हो सका कि जेल में कैदियों को खिलाने का खर्चा कौन उठायेगा. इस बार मजदूरों के विरोध का आधार उनके रहने की जगहों की घोर गंदगी, सफाई और इलाज का इंतजाम न होना और काम की अमानवीय स्थितियां था. इसके अलावा उनका यह भी कहना था कि उन्हें मजदूरी का भुगतान असल सिक्कों में न कर, चिप्पियों में किया जाता, जिससे कंपनी की ओर से चलनेवाली दुकानों में सिर्फ वर्जीनियाई सुअर का मांस खरीदा जा सकता था. जोस अर्कादियो सेगुंदो को इसलिए जेल में डाल दिया गया था, क्योंकि उसने यह भंडाफोड़ कर दिया कि चिप्पी-प्रथा, कंपनी के फल ढोनेवाले जहाजों का न्यूआर्लियंस से केला बंदरगाहों तक सफर का खर्च निकालने का एक तरीका था. दूसरी शिकायतें सर्वविदित थीं. कंपनी के डाक्टर बीमारी की जांच नहीं करते थे, इसके बदले वे उन्हें दवाखानों में एक-दूसरे के पीछे लाइन में खड़ा कर देते और एक नर्स उनकी जीभ पर, चाहे वे मलेरिया से पीड़ित होते, चाहे सूजाक या कब्ज से, कापर-सल्फेट के रंग की एक बादामी गोली रखती जाती. यह इतना मामूली इलाज था कि बच्चे उस लाइन में कई बार खड़े हो जाते और उन गोलियों को निगलने के बजाय बिंगो खेलने की गोटियों के रूप में इस्तेमाल करने के लिए घर ले जाते. मजदूर तंग बैरकों में ठुंस-ठुंसाकर रहा करते. उनके लिए टट्टी-पेशाब की जगहें बनाने की बजाय इंजीनियर लोग क्रिसमस के दौरान कैंपों में हर पचास आदमी पर एक के हिसाब से एक चलता-फिरता शौचालय ले आते और उसे ज्यादा दिन इस्तेमाल करने के तरीके प्रदर्शित करते. काले कपड़े पहने बूढ़े वकीलों ने जो किसी समय कर्नल आरेलियानो बुएंदिया की मेहरबानी के तलबगार हो उनके इर्द-गिर्द भीड़ लगाये रहते, लेकिन अब केला बागान कंपनी की मिल्कियत थे, मजदूरों की मांगों को ऐसे फैसलों से रफा-दफा कर दिया, जो जादू का कमाल मालूम होते. जब मजदूरों ने अपनी सर्वसम्मत मांगों की एक फेहरिस्त तैयार कर ली तो इन महानुभावों ने कंपनी को इसकी बाकायदा सूचना देने में ही लंबा समय ले लिया, पर जब मिस्टर ब्राउन को इन मांगों पर मजदूरों के एकमत होने का पता चला तो उन्होंने अपने शीशा जड़े अरामदेह डिब्बे को रेलगाड़ी में जोता और कंपनी के कुछ प्रतिष्ठित प्रतिनिधियों के साथ माकोंदो से निकल भागे. फिर भी कुछ मजदूरों ने अगले शनिवार को, उनमें से एक को एक वेश्यालय में धर पकड़ा, जो उस औरत के साथ नंगा सोया हुआ था, जिसने उसे फंसाने में मदद की थी, और उससे अपने मांगपत्र की एक प्रति पर दस्तखत कराने में सफल हो गये. तब गमगीन सूरत वकीलों ने अदालत में यह साबित किया कि उस आदमी का कंपनी से कुछ भी लेना-देना नहीं था और कोई शक न कर सके, इसलिए उसे जालसाज घोषित कर जेल में भी भिजवा दिया. बाद में मिस्टर ब्राउन को मजदूरों ने ट्रेन के तीसरे दर्जे में भेष बदलकर सफर करते हुए पकड़ लिया और उन्हें अपने मांगपत्र की एक और प्रतिलिपि पर दस्तखत करने के लिए मजबूर कर दिया. अगले दिन वे अपने बाल काले रंगे हुए, धाराप्रवाह स्पेनी बोलते हुए अदालत में जजों के सामने हाजिर हुए तो वकीलों ने सिद्ध किया कि वे केला बागान कंपनी के मिस्टर ब्राउन कतई नहीं थे. और उनकी तो शिकागो में एक फायर इंजन से दबकर मृत्यु हो गयी थी. ऐसे घुटन के सन्निपात में, जिसमें मजदूरों के लिए हर रास्ता बंद हो गया था, वे मकोंदो के अधिकारियों से विमुख हो गये और अपना मामला ऊंची अदालतों में ले गये. और यहीं हाथ की सफाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखानेवाले वकीलों ने यह सिद्ध किया कि केला बागान कंपनी के पास न तो मजदूर थे, न कभी रहे थे और न ही कभी होंगे, क्योंकि वे अस्थायी आधार पर कभी-कभी रखे जाते और इसी कारण चिप्पियों में मजदूरी के भुगतान की कहानी झूठी थी, ठीक उसी तरह जिस तरह उस रहस्यमय दवा की गोली और अस्थायी शौचालयों की कहानी झूठी थी. और अदालत के फैसले से यह स्थापित हुआ, और उसे पवित्र अज्ञाप्तियों में दर्ज कर दिया गया कि मजदूरों का कोई वजूद ही नहीं था.

हड़ताल भड़क उठी. सारा कृषि कर्म बीच में ही रुक गया. फल पेड़ों पर ही सड़ने लगे और एक सौ बीस डिब्बोंवाली मालगाड़ियां साइडिगों पर खड़ी रहीं. शहर बेरोजगार मजदूरों से भर गया. तुर्क स्ट्रीट शनिवार को कोलाहल से गुंजान हो उठी. यह हालात कई दिनों तक बनी रही. होटल जैकब के जुआघर को चौबीसों घंटे खोले रहना पड़ा. जोस अर्कादियो सेगुंदो उसी होटल में था जब यह घोषणा की गयी कि शांति व्यवस्था कायम रखने की जिम्मेदारी सेना को सौंप दी गयी है. हालांकि वह किसी शकुन-अपशकुन में यकीन नहीं करता था. फिर भी, यह खबर उसे मौत के पैगाम की तरह लगी, जिसका वह बहुत दिनों पहले अपने बचपन की उस सुबह से इंतजार कर रहा था, जब कर्नल गेरिनेल्दो मार्क्वेज ने उसे मृत्युदंड पाये एक आदमी का वध देखने की इजाजत दे दी थी.

थोड़ी देर बाद फौजी ड्रमों की ढम-ढम और बिगुल की कर्कश चीखों और लोगों के हड़कंप और भागने की आहटों से पता चल गया कि जुआघर में खेल खत्म हो गया है. ठीक उसी तरह वह खेल भी खत्म हो गया, जो वह उस वध को देखने के बाद अपने-आपसे खेलता रहा था. तब वह सड़क पर निकल आया और उन्हें देखा. वे तीन रेजिमेंट थीं. ड्रम की चोट पर उनके मार्च करने से जमीन थरथरा रही थी. कई सिरोंवाले अजगर की फुफकार की तरह उनकी सांसों की खुरखुराहट ने दोपहर की चमक को मनहूस हवाओं से भर दिया. वे नाटे, गठीले और निर्दयी थे. उनके बदन घोड़ों की तरह पसीने से तरबतर थे और उनमें धूप में सुखाये चमड़े जैसी बू और वह धीरज और अभेद्यता थी, जो पहाड़ों पर रहनेवालों में होती है. हालांकि उन्हें गुजरने में एक घंटे से ऊपर लगा, लेकिन हर किसी को भी यह एहसास था कि वे थोड़े से ही दस्ते थे, जो एक गोलाई में चक्कर काट रहे थे, क्योंकि वे सभी एक जैसे थे, किसी एक ही कुतिया के बच्चों की तरह और एक जैसी ही भावहीनता के साथ वे अपने सामान एवं भोजन के थैलों और अपनी राइफलों एवं संगीनों की शर्म तथा अंध आज्ञापालन और प्रतिष्ठा भावना का पाखंड ढो रहे थे.

उर्सुला ने अपने बिस्तर पर पड़े-पड़े उनके गुजरते रहने की आहटें सुनीं और उंगली से अपने सीने पर क्रास का निशान बनाया. सैंता सोफियाद ला पाइदाद, जो उस कढ़ाई किये मेजपोश पर झुकी हुई थी, जिस पर उसने अभी-अभी इस्तरी की थी, एक क्षण को बेचैन हो उठी और अपने बेटे जोस अर्कादियो सेगुंदो के बारे में सोचने लगी, जो उस समय होटल जैकब के दरवाजे पर खड़ा सैनिकों को गुजरता देख रहा था.

मार्शल लॉ ने सेना को विवाद में पंच की भूमिका अपना लेने का अधिकार दे दिया लेकिन समझौते का कोई प्रयास नहीं किया गया. मकोंदो पहुंचने के तुरंत बाद ही सैनिकों ने अपनी राइफलें परे रख दीं और पेड़ों से केले काटने, लादने और ट्रेनों को रवाना करने में जुट गये. मजदूर, जो उस समय संतोष भाव से प्रतीक्षा कर रहे थे, अपने काम करनेवाले गंडासों के सिवा कोई और हथियार लिये बिना जंगलों में घुस गये और इस भितरघात में पलीता लगाने लगे. उन्होंने बागों और कमीसारियों में आग लगा दी, गाड़ियों को रोकने के लिए, जो अब मशीनगन की गोलियों की छाया में अपना रास्ता बना रही थीं, रेल की पटरियां उखाड़ दीं और तार-टेलीफोन की लाइनें काट दीं. सिंचाई की नालियां खून के दागों से भर उठीं. मिस्टर ब्राउन जो अपने बिजली रौशन दड़बे में जिंदा थे, अपने और अपने देशवासियों के परिवारों के साथ मकोंदो से बाहर निकालकर सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिये गये. स्थिति एक खूनी और असमान गृह-युद्ध के खतरों से भर उठी तो अधिकारियों ने मजदूरों को मकोंदो में जमा होने के लिए कहा. ऐलान किया गया कि अगले शुक्रवार को प्रांत के नागरिक तथा सैनिक प्रधान बीच-बचावकर झगड़े को निबटाने के लिए आनेवाले हैं.

जोस अर्कादियो सेगुंदो शुक्रवार को स्टेशन-चौक में सुबह से ही जमा होनेवाली भीड़ में शामिल था. उसने यूनियन नेताओं की एक बैठक में भाग लिया था, जिसने कर्नल गवीलान के साथ उसे यह जिम्मेदारी सौंपी थी कि वह भीड़ में घुलमिलकर हालात के मुताबिक उसका नेतृत्व करे. वह सहज नहीं हो पा रहा था और जब उसने देखा कि उस छोटे चौक के चारों ओर सेना ने मशीनगन के ठिकाने बना लिये थे और केला बागान कंपनी की तार से घिरी बस्ती की तोपों से

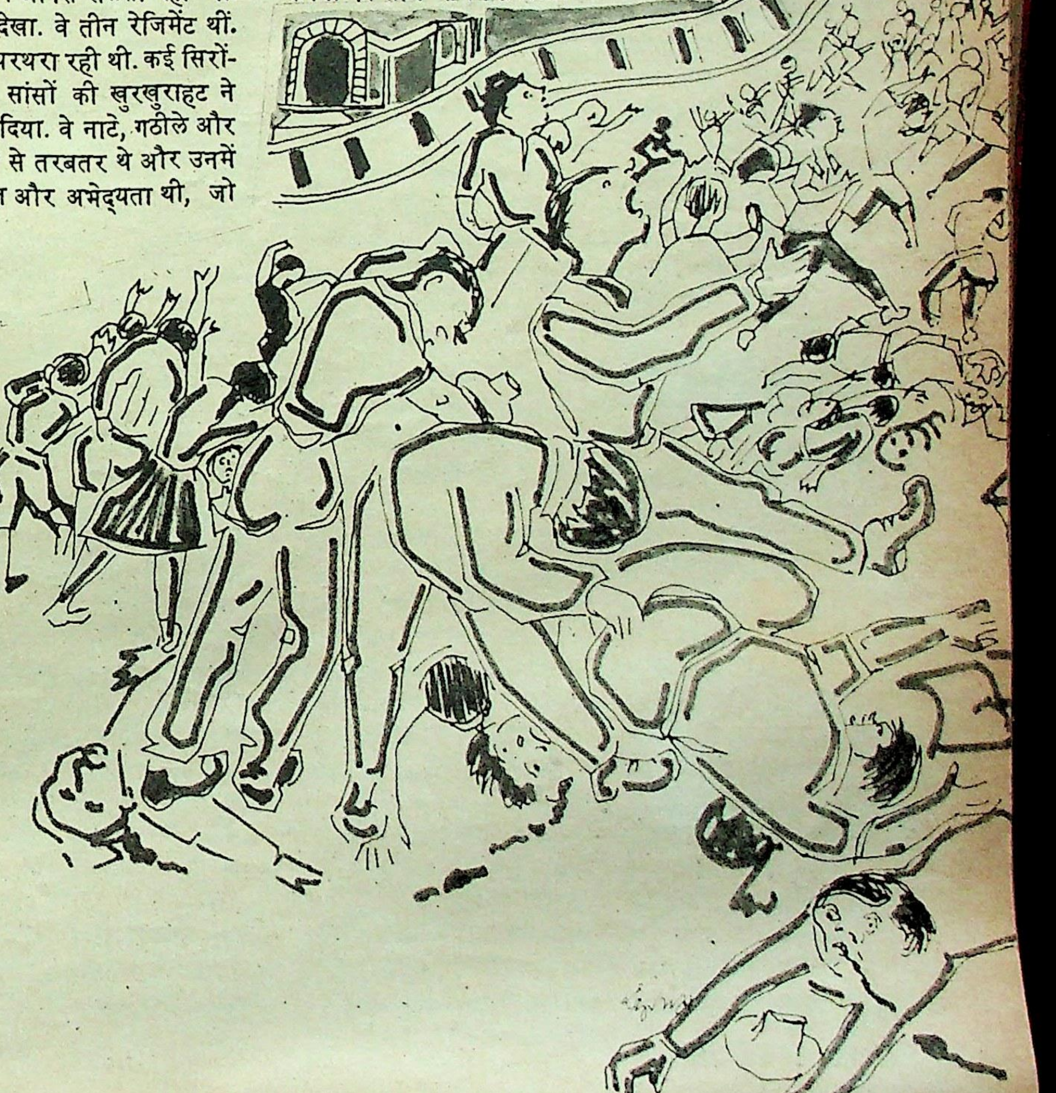

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिफाजत की जा रही थी तो उसके हलक में खारा-खारा बलगम इकट्ठा होने लगा. करीब बारह बजे, उस ट्रेन का इंतजार करते हुए जो पहुंचनेवाली नहीं थी.

तीन हजार से अधिक लोग, जिनमें मजदूर, औरतें और बच्चे सभी थे, स्टेशन के सामने की खुली जगह में भर गये और अब भीड़ आसपास की उन गलियों में भी फैलने लगी, जिन्हें सेना ने मशीनगन की कतारें लगाकर रोक रखा था. उस समय यह किसी के आने का इंतजार करती भीड़ नहीं, बल्कि हंसी-खुशी की रौनक से भरपूर किसी मेले की भीड़ ज्यादा मालूम हो रही थी. तुर्क-स्ट्रीट से वहां तले हुए अंडे और पेय बेचनेवालों के स्टैंड भी आ गये थे और चिलचिलाती धूप में इंतजार की ऊब के बावजूद लोग अच्छे मूड में थे. तीन बजे से कुछ पहले यह अफवाह फैली कि सरकारी ट्रेन अगले दिन से पहले नहीं पहुंचेगी. भीड़ से निराशा की एक आह निकल गयी. तब सेना का एक लैफ्टिनेंट स्टेशन की छत पर चढ़ गया, जहां भीड़ का रुखकर चार मशीनगनें तैनात थीं और लोगों से खामोश रहने की अपील करने लगा. जोस अर्कादियो सेगुंदो की बगल में नंगे पांव एक बहुत मोटी औरत चार और सात साल के अपने दो बच्चों के साथ खड़ी थी. छोटे बच्चे को उसने अपनी बांह में उठा रखा था. जोस अर्कादियो सेगुंदो को न जानते हुए भी वह उससे दूसरे को उठा लेने के लिए कहने लगी, ताकि जो कुछ कहा जा रहा था, उसे वह बेहतर ढंग से सुन सके. बहुत साल बाद लोग विश्वास नहीं करेंगे, जब वह बतायेगा कि उसने लेफ्टिनेंट को मुंह पर पुराने ग्रामोफोन का भोंपू लगाकर प्रांत के नागरिक एवं सैनिक नेता का फरमान नं. 4 पढ़ते हुए सुना था. उस पर जनरल कार्लोस कोर्तेस वार्गास और उनके सचिव मेजर एनरिक गार्सिया इसाजा ने दस्तखत किये थे. अस्सी शब्दों-वाली उस आज्ञप्ति की तीन धाराओं में हड़ताली मजदूरों को 'गुंडों का हुजूम' कहा गया था और सेना को यह हक दिया गया था कि वह उन्हें जान से मारने के लिए गोली चला सकती है.

फरमान पढ़े जाने के बाद विरोध के हंगामों के बीच एक कैप्टन ने छत पर लैफ्टिनेंट की जगह ले ली और नयी भोंपू हिलाकर लोगों को चुप रहने का संकेत करने लगा. भीड़ फिर खामोश हो गयी.

"देवियो, सज्जनो!" कैप्टन ने हल्की आवाज में जो धीमी और कुछ थकी हुई थी, कहा, "आप लोगों को यहां से हट जाने के लिए पांच मिनट का समय दिया जाता है."

भोंपू की आवाज और अधिक शोर में डूब गयी. मिनटों की गिनती की जाने लगी. अपनी जगह से कोई नहीं हिला.

"पांच मिनट खत्म हो गये." कैप्टन ने उसी आवाज में फिर कहा, "आपको एक मिनट का वक्त और दिया जाता है. उसके बाद हम गोली चला देंगे."

जोस अर्कादियो सेगुंदो ने जिसके बदन पर ठंडा पानी चुहचुहा आया था, बच्चे को नीचे उतारकर उस औरत को सौंप दिया, "ये कमीने कहीं गोली ही न चला दें." वह औरत बड़बड़ाने लगी. जोस अर्कादियो सेगुंदो को कुछ बोलने का मौका नहीं मिला, क्योंकि उसी क्षण उसे कर्नल गलीलान का स्वर सुनाई दिया. वह तेज आवाज में उसी औरत की बात दुहरा रहा था. तनाव एक रहस्यमय निस्तब्धता में बदल गया. उसकी गहराई के नशे में और उससे भी अधिक इस यकीन के साथ कि मृत्यु के वशीभूत हो जड़ बनी इस भीड़ को अब कुछ भी यहां से हिला नहीं सकता.

जोस अर्कादियो सेगुंदो ने अपने-आपको आगे खड़े लोगों से थोड़ा ऊपर उठाया और जीवन में पहली बार तेज आवाज में बोला, "दोगलो, यह एक मिनट भी ले लो और अपने कूल्हे में चिपका लो."

उसकी तेज आवाज के बाद कुछ हुआ. जिससे भय नहीं बल्कि एक तरह का सम्मोहन वहां छा गया. कैप्टन ने गोली चलाने का हुक्म दे दिया और एक साथ चौदह मशीनगनों ने तुरंत फायर किया, लेकिन यह सब कुछ झूठा लग रहा था, जैसे बंदूकों में गोलियों की जगह खाली कारतूस भरे हुए थे, क्योंकि उनकी दनदनाहट तो सुनाई दे रही थी और गोलियां चलने की तेज चमक भी देखी जा सकती थी, लेकिन उसकी तनिक-सी भी प्रतिक्रिया किसी पर नहीं हो रही थी, न एक चीख, न एक आह, और भीड़ एकाएक अजेय होकर जैसे स्थिर हो गयी थी. अचानक स्टेशन के एक ओर मौत की एक चीख ने भीड़ के सम्मोहन को भंग कर दिया, "ओ. . .ह, मां. . ." एक भूकंप हाहाकार, ज्वालामुखी की एक फूत्कार, एक प्रलय की एक गर्जना भीड़ के केंद्र में फूट पड़ी, जो फैलने लग गयी थी. जोस अर्कादियो सेगुंदो को मुश्किल से बच्चे को उठा लेने का समय मिला, जबकि दूसरे बच्चे के साथ मां को घबराहट में चारों ओर भागती भीड़ ने जैसे निगल लिया.

बहुत साल बाद, लोगों के यह सोचने के बावजूद कि वह एक खब्ती बूढ़ा आदमी है, यह बच्चा लोगों को बतलायेगा कि कैसे जोस अर्कादियो सेगुंदो ने उसे अपने सिर के ऊपर उठाया और हवा में उछाल दिया था. तब वह मानो भीड़ के आतंक के ऊपर तिरता हुआ पास की एक गली में जा गिरा था. अपनी सुरक्षित जगह से वह बच्चा उस क्षण यह देख सका. एक अनियंत्रित भीड़ नुक्कड़ की ओर भागने लगी थी और मशीनगनों की कतारें उस ओर आग उगलने लगी थीं. कई आवाजें एक साथ चिल्ला पड़ीं, "लेट जाओ, लेट जाओ."

आगे के लोग गोलियों से हताहत हो जमीन पर गिर भी चुके थे. जो बचे, वे जमीन पर लेटने की बजाय चौक की ओर जाने की कोशिश करने लगे. अब भय मानो अजगर की बिलबिलाती पूंछ बन गया. ऐसा ही लग रहा था, जब एक दिशा से आती लहर विपरीत दिशा में, रास्ते के पार गली में एक और अजगर की पूंछ की ओर बढ़ती दूसरी लहर से जा मिलती, जहां फिर मशीनगनें लगातार गोलियां दाग रही थीं. वे जैसे किसी बाड़े में घिरकर, एक विशाल चक्रवात में चक्कर काटते हुए धीरे-धीरे उसके नाभिकेंद्र में सिमटते जा रहे थे, जहां मशीनगनों की आरियां उनके सिरे को एक के बाद एक प्याज के छिलकों की तरह निरंतर उतारती जा रही थीं. बच्चे ने देखा, एक खुली जगह में अपने बाजू क्रास की शक्ल में एक दूसरे के ऊपर किये घुटनों के बल बैठी एक औरत रहस्यमय ढंग से इस भगदड़ से बची हुई थी. जोस अर्कादियो सेगुंदो एक क्षण को वहीं दिखायी दिया, फिर तत्काल ही जमीन पर औंधे मुंह गिर पड़ा. उसका चेहरा खून से लथपथ था. ठीक उस पल के पहले जब दानवी सैन्यबल ने उस खाली जगह घुटनों के बल बैठी उस औरत का, ऊंचे वर्षारहित आकाश की रोशनी का और उस छिनाल दुनिया का, जहां उर्सूला इगुआरान चीनी के खिलौना जानवर बेचा करती थी, खात्मा कर दिया.

हत्याकांड के कई घंटे गुजर चुके होंगे. क्योंकि लाशें जाड़े के दिनों में प्लास्टर की तरह ठंडी पड़ चुकी थीं, उनके मुंह से निकलती झाग सूखकर जम चुकी थी और जिन लोगों ने लाशों को ट्रेन में लादा, उन्हें इतना समय मिल गया था कि एक के ऊपर एक रखकर उनके चट्टे बना दें, उसी तरह जिस तरह वे केले के घोपों को लादकर ले जाया करते थे. इस दुःस्वप्न से भागने की कोशिश में जोस अर्कादियो सेगुंदो एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में घिसटता हुआ उसी दिशा में बढ़ता रहा जिधर ट्रेन जा रही थी. सोती हुई बस्तियों से गुजरते हुए लकड़ी के तख्तों के बीच दरारों से छनती रोशनी में उसने मर्दों की लाशें, औरतों की लाशें, बच्चों की लाशें देखीं, जो सड़े हुए केलों की तरह समुद्र में फेंक दी जाने वाली थी. वह चौक में पेय बेचनेवाली सिर्फ एक औरत और कर्नल गवीलान को पहचान सका, जो अभी तक अपने एक हाथ में मोरेलियाई चांदी के बक्सुएवाली पेटी लपेटे हुए था. उसकी मदद से शायद उसने उस भगदड़ से बाहर निकलने की कोशिश की थी. जब वह इंजन के पीछे सबसे पहले डिब्बे में पहुंचा तो अंधेरे में बाहर कूद गया और ट्रेन के गुजर जाने तक पटरी के किनारे दुबका रहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधी रात के बाद मूसलाधार बारिश होने लगी. जोस अर्कादियो सेगुंदो यह जान नहीं सका कि वह किस जगह कूदा था, पर इतना समझता था कि ट्रेन से उलटी दिशा में चलते हुए वह मकोंदे पहुंच सकता था. तीन घंटे से अधिक चलने के बाद, जब वह बुरी तरह भीग चुका था और उसे सिर दर्द हो रहा था, भोर के उजाले में उसे शहर के पहले मकान दिखायी देने लगे. कहवे की महक से आकर्षित होकर वह एक रसोई में पहुंच गया, जहां एक बच्चे को संभालते एक औरत चूल्हे पर झुकी हुई थी.

"हलो." उसने थकी-सी आवाज में कहा, "मैं सेगुंदो बुएंदिया हूं."

उसने अपना पूरा नाम, एक-एक अक्षर पर जोर देते हुए लिया ताकि औरत को यह विश्वास हो जाये कि वह जिंदा है. ऐसा कर उसने अक्लमंदी का काम किया, क्योंकि सिर से पांव तक खून और कीचड़ में लथपथ उसकी छाया आकृति को देखकर उस औरत ने उसे कोई प्रेत ही समझ लिया था. औरत ने उसे पहचान लिया. उसने उसे एक कंबल दिया ताकि अपने कपड़े सूखने तक उसे लपेटे रहे. उसके घाव धोने के लिए जो सिर्फ ऊपरी चोट के थे, उसने थोड़ा पानी गरम किया. फिर सिर में पट्टी बांधने के लिए उसे साफ कपड़ा ला दिया. तब उसने एक मग में भरकर उसे बिना चीनी की कॉफी दी.

जोस अर्कादियो सेगुंदो कॉफी खत्म करने तक चुप रहा, फिर बड़बड़ाया, "वे तीन हजार रहे होंगे."

"कौन?"

"मरनेवाले वे सारे लोग जो स्टेशन चौक में जमा हुए थे."

औरत ने उसकी ओर दया भाव से देखा, "यहां कोई नहीं मरा." उसने कहा, "तुम्हारे चाचा कर्नल आरेलियानो के जमाने से मकोंदो में कुछ नहीं हुआ." घर पहुंचने के पहले वह तीन और रसोईघरों में रुका, लेकिन वहां भी उसे यही कहानी सुनने को मिली कि 'कोई भी नहीं मरा था.' घर के रास्ते में वह स्टेशन के सामने उस छोटे चौक से गुजरा. खाने-पीने की चीजें बेचनेवालों के स्टैंड ढेर बनाकर एक किनारे रख दिये गये थे. हत्याकांड का वहां कोई चिह्न नहीं था. लगातार बारिश के कारण सड़कें सूनी पड़ी थीं और घरों के बंद दरवाजों के भीतर जीवन का कोई चिह्न नजर नहीं आ रहा था. मनुष्यता का एकमात्र चिह्न चर्च में मास के समय बजता घंटा था. उसने उस घर के दरवाजे पर दस्तक दी, जहां कर्नल गवीलान रहता था. एक गर्भवती महिला ने, जिसे उसने कई बार पहले भी देखा था, दरवाजा खोला, लेकिन जोस अर्कादियो सेगुंदो को देखते ही दरवाजा बंद कर लिया. "वह चला गया," उसने कहा, "वह अपने देश लौट गया." कंपनी की तार से घिरी बस्ती के मुख्य फाटक की स्थानीय पुलिस के दो सिपाही रखवाली कर रहे थे, जो बरसाती और रबड़ के बूट पहने, वर्षा में भीगती दो मूरतों की तरह लग रहे थे. शहर की सरहद के पास अपनी सड़क पर वेस्ट इंडियन नीग्रो शनिवारी धार्मिक गीत गा रहे थे. जोस अर्कादियो सेगुंदो आंगन की दीवार फांदकर रसोई के रास्ते अपने घर में दाखिल हुआ. सेंता सोफिया दलापाइदाद ने उसे देखकर तनिक-सी अपनी आवाज ऊंची की, "फर्नांदा तुम्हें देख न पाये, वह अभी सोकर उठ ही रही है." फिर किसी गुपचुप साजिश के अंदाज में उसे 'चैंबरपांट रूम' में ले गयी, उसके लिए मेलक्विदास की टूटी खाट ठीक की और दो बजे दिन जब फर्नांदा झपकी ले रही थी, खिड़की के रास्ते उसे खाना पहुंचा आयी.

वह बारिश खत्म होने का इंतजार करता रुका रहा. सेंता सोफिया दला पाइदाद से चुपचाप खबर पाकर वह मेलक्विदास के कमरे में अपने भाई से मिलने पहुंचा. उसने भी हत्याकांड या लाशों से भरी ट्रेन की कहानी पर विश्वास नहीं किया. पिछली रात उसने राष्ट्र के नाम एक असाधारण घोषणा पढ़ी थी कि मजदूर शांतिपूर्वक स्टेशन चौक से हट गये थे और छोटे-छोटे शांतिपूर्ण जत्थों में अपने घरों को लौट गये थे. घोषणा में यह कहा गया था कि यूनियन नेताओं ने महान देश भक्ति का परिचय देते हुए अपनी मांगों को घटाकर सिर्फ दो मुद्दों तक सीमित कर दिया था : चिकित्सा सेवा में सुधार और शौचालयों का निर्माण. बताया

▣ व्यंग्यचित्र : आनंद

गया कि सैनिक अधिकारियों ने समझौते की सूचना मिस्टर ब्राउन को देने में कोई देरी नहीं की और उन्होंने न सिर्फ नयी शर्तों को मंजूर कर लियां, बल्कि झगड़े के खात्मे का जश्न मनाने के लिए तीन दिन तक सार्वजनिक समारोह आयोजित करने का खर्च उठाने को भी तैयार हो गये. जब उनसे पूछा गया कि समझौते पर दस्तखत होने की घोषणा किस तारीख को की जाये तो उन्होंने खिड़की से बाहर आसमान की ओर देखा, जहां बिजलियां कौंध रही थीं और बड़े संजीदा अंदाज में कहा, "जब बारिश थम जाये. बारिश खत्म होने तक हम सारी कार्रवाइयां स्थगित कर रहे हैं."

तीन महीने से बारिश नहीं हुई थी और अब सूखा पड़ने की नौबत आ गयी थी, लेकिन जब मिस्टर ब्राउन ने अपने निर्णय की घोषणा की तभी से केला बागान क्षेत्र में मूसलाधार बारिश होने लगी. मकोंदो आते हुए जोस अर्कादियो सेगुंदो इसी बारिश में भीगा था. एक हफ्ता गुजरा, लेकिन बारिश नहीं थमी. वह सरकारी बयान जो हजारों बार दुहराया गया और जिसे सरकार को उपलब्ध हर संचार साधन के जरिये पूरे देश में प्रसारित किया गया, अंततः स्वीकार कर लिया गया. किसी की भी मौत नहीं हुई, संतुष्ट होकर मजदूर अपने घरों को लौट गये थे और वर्षा होने तक कंपनी अपने सारे काम काज स्थगित कर रही है. इस बात को ध्यान में रखते हुए कि लगातार बारिश के कारण जन-धन की क्षति की हालत में आपत्कालीन कदम उठाने पड़ सकते हैं, मार्शल-लॉ को जारी रखा गया था, लेकिन सैनिक अपने क्वार्टरों में ही महदूद रहे. दिन के समय सैनिक अपनी पैंटें मोड़कर टांगों पर चढ़ाये हुए सड़कों पर जमा पानी के सैलाब में घूमा करते, वे बच्चों के साथ नावें तैराने का खेल खेलते, लेकिन रात को दस्तक देने के बाद अपनी राइफलों के कुंदों से दरवाजे तोड़ देते और संदिग्ध लोगों को बिस्तरों से उठाकर अपने साथ कहीं लिवा जाते, जहां से कोई लौटता नहीं था. गुंडों, कातिलों, आगजनों और फरमान नं. 4 के बागियों की तलाश और सफाये का काम इसी तरह जारी रहा, लेकिन सेना इस सबके शिकार लोगों के रिश्तेदारों तक से, जो उनकी खोज-खबर लेने के लिए कमांडेंट के दफ्तर के आगे भीड़ लगाये रहते, सब कुछ से इनकार करती रही. "आप सपना देख रहे होंगे," अधिकारीगण जोर देकर कहते, "मकोंदो में कुछ भी नहीं हुआ है. न तो यहां पहले कभी कुछ हुआ है, न आगे कभी होगा. यह एक सुखी शहर है."

इस तरह वे अंत में यूनियन नेताओं का भी सफाया करने में कामयाब हुए. □

रूपांतर : रमाकांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां वसंत में चिड़ियां नहीं चहकतीं

■ रशेल कारसन

एक शहर था. जिसके चारों ओर दूर-दूर तक हरे-भरे, खेत थे. उसकी सड़कों के किनारे तरह-तरह के फूलदार पेड़ थे जो किसी भी बटोही को बरबस मोह लेते थे. बसंत में भी तरह-तरह की चिड़ियां आकर उन पेड़ों की फुनगियों पर बैठी चहका करतीं. दरअसल, यह शहर चिड़ियों के इस महान खजाने के कारण ही आस-पास के क्षेत्रों में चर्चित था. शहर के पास से जो नदी बहती थी उसमें कई तरह की मछलियां थीं.

फिर अचानक एक अभिशाप की छाया उस शहर पर आ पड़ी. चहचहाते पक्षियों का गला जैसे किसी ने दबा दिया. गाय-बैल, भैंसें, भेड़ें, बकरियां सब अचानक मरने लगे. शहरवासी बीमार पड़ने लगे. डाक्टरों की समझ में न आया कि रोग क्या है. शहर की खूबसूरत सड़कें अब श्मशान का रास्ता नजर आती थीं. एक अजीब बात लोगों ने देखी कि एक सफेद सा चूर्ण सब जगह बिखरा हुआ था. तो क्या किसी दुश्मन ने जादू कर दिया था. . .? नहीं इस विपत्ति का कारण स्वयं वहां के ही लोग थे.

यह किसी खास शहर की कहानी नहीं है. दुनिया के विभिन्न देशों में न जाने कितने शहर, कस्बे, गांव हैं जो इस कहानी के दर्शक और भोक्ता रहे हैं. यह सब क्यों और कैसे होता है, इसी का अध्ययन करने की हम कोशिश कर रहे हैं.

पृथ्वी पर जीवन यहां के जीवधारियों तथा उनके आसपास के वातावरण के बीच एक तादात्म्य पर निर्भर होता है. पर वर्तमान सदी में मनुष्य नाम के जीवधारी ने इतनी ताकत इकट्ठी कर ली है कि वह प्रकृति के स्वरूप को ही बदलने की क्षमता रखता है. इनमें सबसे खतरनाक बात यह है कि उसने हवा, जमीन, नदियों और समुद्र तक को दूषित कर दिया है, इनमें जहर घोल दिया है.

प्रकृति के विरुद्ध लड़ाई का उसका एक मोर्चा है कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग. खेतों, बगीचों, जंगलों और खेतों में कीटों को मारने के लिए जो कीटनाशक छिड़के जाते हैं, वे यह पहचान तो नहीं कर सकते कि किसे मारना है और किसे नहीं, इनसे हानि पहुंचाने-वाले कीट-पतंगों के अतिरिक्त वे कीट-पतंगे भी मरते हैं जो हमारे लिए लाभप्रद हो सकते हैं, जहर से भरे इन कीट-पतंगों को खानेवाले पक्षी भी इस जहर से नहीं बचते. घर के पालतू पशुओं और मनुष्यों पर भी इस जहर का पर्याप्त असर पड़ता है.

कीटनाशियों के रूप में जिन रासायनिकों का प्रयोग होता है, वे दो किस्म के होते हैं. एक तो क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बन तथा दूसरे जैव फास्फोरस कीटनाशी. पहली किस्म में आते हैं डी. डी. टी, एल्ड्रिन, डाइल्ड्रिन. दूसरे में आते हैं मैलाथियान, पैराथियान आदि.

डी. डी. टी. का संश्लेषण तो 1874 में ही पहली बार किया जा चुका था पर इसके कीटनाशी गुण की खोज 1939 में पाल म्यूलर नाम के स्विटजरलैंड के एक वैज्ञानिक ने की थी जिसे इसके लिए नोबेल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया.

डी. डी. टी. के बारे में माना जाता है कि यह मनुष्य के लिए हानि रहित है. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तो हजारों सैनिकों, शरणार्थियों तथा कैदियों पर इसका प्रयोग जूंओं को मारने के लिए किया गया था. इस विश्वास का कारण यह है कि इसके संपर्क में आने पर मनुष्य पर इसका कोई तात्कालिक प्रभाव नहीं पड़ता. दूसरा कारण यह है कि अन्य हाइड्रोकार्बनों के विपरीत डी. डी. टी. चूर्ण रूप में हमारी त्वचा में भीतर नहीं रिसता. पर यदि यह किसी तेल में घुला हुआ हो तो रिस सकता है और एक प्रकार का नशा-सा पैदा करता है. नाक और मुंह से अंदर जाने पर यह श्वास नली तथा भोजन नली में धीरे-धीरे रिसता है और शरीर के भीतर के चर्बीवाले अंगों में एकत्र होता रहता है. हालत यह है कि दुनिया का कोई भी जीव या वनस्पति आज ऐसा नहीं है, जिसमें डी. डी. टी. के अंश न पाये जाते हों. यहां तक कि मां अपने बच्चे को जो दूध पिलाती है, वह भी इससे मुक्त नहीं है. इतना ही नहीं, गर्भ में भी भ्रूण को जो पोषण मिलता है उसमें भी डी. डी. टी. शामिल है.

क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बनों में एल्ड्रिन सबसे अधिक घातक है. इसकी तुलना में डी. डी. टी. तो लगभग हानिरहित-सा लगता है. पशुओं के लिए यह डी. डी. टी. से 15 गुना, मछलियों के लिए 30 गुना तथा पक्षियों के लिए 300 गुना अधिक घातक है.

धरती का एक बहुत बड़ा भाग पानी है और यह पानी कहीं भी इस विषैले प्रदूषण से बचा हुआ नहीं है. कहीं भी किसी कीटनाशक का छिड़काव होता है तो बरसात में वह बारिश के पानी के साथ रिसकर गहराइयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के विरुद्ध भौतिक प्रगति की होड़ में आज आदमी 'आ बैल मुझे मार' की तर्ज में अपनी मौत को खुद बुलावा दे रहा है, जबकि प्रकृति में संतुलन की अपनी एक प्रक्रिया चलती रहती है. प्रत्येक जीव और वनस्पति के जीवन के लिए जहां प्रकृति ने सारी सुविधाएं जुटा रखी हैं वहीं उनकी संख्या को नियंत्रण में रखने के उपाय भी बना दिये हैं. पर बीसवीं सदी का मनुष्य अपने तात्कालिक लाभ के लिए रासायनिकों का प्रयोग करके अपने लिए हानिकारक अथवा अनुपयोगी जीवों और वनस्पतियों को नष्ट कर रहा है. प्रकृति के साथ इस छेड़खानी के परिणाम कितने भयंकर हो सकते हैं... और किस प्रकार यह सब करके मानव स्वयं पर नाभिकीय युद्ध से भी अधिक भयानक आपदाओं को निमंत्रण दे रहा है?...आदि कई सवालों को रेखांकित करती एक अमेरिकी पत्रकार की पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' का संक्षिप्त रूपांतर—

में चला जाता है. वहां, जहां पानी ही पानी है. वह पानी अपने में जहर लिये हुए कहीं से कहीं पहुंचता रहता है और उथली जमीन के पास आकर सोते के रूप में फूट जाता है. कहीं से कुछ हमारे इस्तेमाल में आता है और कुछ नदियों में चला जाता है. यानी धरती के ऊपर जो भी पानी है, वह कभी न कभी धरती के गर्भ में जरूर रहा होगा. और जब धरती के गर्भ में ही पानी जहरीला हो गया हो तो आप यह कैसे सोच सकते हैं कि आपकी खाने की मेज पर जो पानी भरा गिलास रखा है, उसमें यह जहर नहीं घुला है.

अब धरती की बात कर लें. जमीन पर मिट्टी की ऊपरी तह वास्तव में मनुष्य के जीवन का आधार है. इसमें कई प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु और फफूंदियां होती हैं, जो अपने संपर्क में आनेवाले मृत-जीव व वनस्पति कोषों को विखंडित करके उपयोगी खाद में रूपांतरित करती हैं. ये ही पौधों के लिए उपयोगी नाइट्रोजन और कार्बन मुहैया करती हैं. इनके अतिरिक्त स्प्रिंगटेल जैसे कई छोटे-छोटे कीट जंगलों में सूखी हुई घास-वनस्पति आदि को चूरा करके मिट्टी के साथ जज्ब करने का काम करते हैं. इसके अतिरिक्त सूक्ष्म कीटों से लेकर स्तनपायी पशुओं तक असंख्य जीव इस मिट्टी के साथ अन्योन्याश्रित संबंध बनाये रखते हैं. और यह संबंध पर्यावरणीय संतुलन के लिए बहुत जरूरी है. पर कीटनाशियों के अंधाधुंध प्रयोग से इस संतुलन को खतरा पैदा हो गया है. यह सब करते हुए प्रकृति के इस अनिवार्य अंग—मिट्टी का कोई खयाल ही नहीं रखा गया है. इसमें खतरा मात्र इतना ही नहीं है कि मिट्टी दूषित हो रही है, इसके अतिरिक्त ये विषैले पदार्थ पौधों की जड़ों के रास्ते पौधों के उतकों में भी पहुंच जाते हैं. मूली जैसे पौधे में यह जहर काफी मात्रा में आ जाता है.

खरपतवार को भी दुश्मन मानकर रासायनिक खरपतवार नाशकों का प्रयोग किया जाता है. इसके लिए 2,4-डी, 2,4,5-टी जैसे रासायनिक प्रयोग किये जाते हैं. हालांकि ये मानव शरीर के लिए हानिरहित माने जाते हैं पर प्रयोगों से पता चलता है कि ये कोशिकाओं की ऑक्सीजन ग्रहण करने की शक्ति को प्रभावित करते हैं. इसके अतिरिक्त खरपतवार के न रहने से कुछ ऐसे जीवाणु मिट्टी में पैदा हो जाते हैं जो पौधों के लिए खतरनाक हो सकते हैं. हालैंड में एक शहर के पार्क में गुलाब के पौधे ठीक तरह से नहीं उभर पा रहे थे. पता चला कि वहां मिट्टी में कोई कीड़ा है. इसे खत्म करने के लिए डच प्लांट प्रोटेक्शन सर्विस ने बजाय किसी रासायनिक कीटनाशी के, मेरीगोल नामक घास लगाने की सलाह दी. इसके परिणाम सचमुच आश्चर्यजनक निकले.

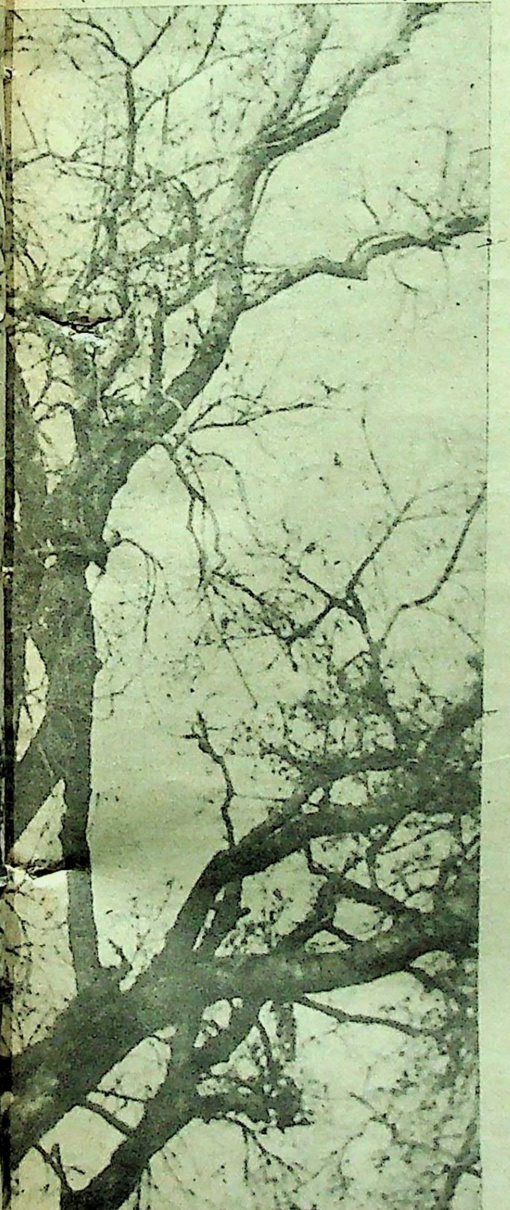

कीटनाशियों के शिकार अकेले कीट नहीं बनते, उनका शिकार बनते हैं, मछलियां, वन्य पशु और पालतू पशु भी. बहुत बड़े क्षेत्र में कीटनाशकों का बड़ी मात्रा में सबसे पहला प्रयोग 1959 में अमेरिका में दक्षिण पूर्व मिशिगन तथा डेट्रायट के काफी बड़े उपनगरीय क्षेत्र में किया गया. इसका उद्देश्य था जापानी झींगुरों का सफाया. यह कीट 1916 में पहली बार न्यू-जरसी में दिखायी दिया था और बड़ी तेजी से यह अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाता चला गया. इसके लिए एल्ड्रिन नामक रसायन का छिड़काव किया गया. इस छिड़काव के लिए उन लोगों से कोई अनुमति या सलाह भी नहीं ली गयी.

यहां तक कि छिड़काव की सूचना तक किसी को नहीं दी गयी. लोगों ने आश्चर्य से देखा कि सफेद चूर्ण की सतह उनके घर के आसपास, सड़कों पर, पार्कों में बिखरी पड़ी है.

इस छिड़काव के कुछ ही दिन बाद पक्षियों का मरना शुरू हो गया. डेट्रायट एबंदेन सोसायटी की सचिव श्रीमती एन. बॉयेस के अनुसार, "पहले तो इतवार की सुबह मुझे एक महिला का फोन मिला कि चर्च से लौटते हुए उसने बहुत बड़ी संख्या में मरे हुए और मरते हुए पक्षियों को देखा है. छिड़काव वृहस्पतिवार को हुआ था. उसने कहा कि उस क्षेत्र में कोई भी पक्षी उड़ता हुआ नहीं दिखायी देता. उसके पिछवाड़े में ही कम से कम एक दर्जन मृत पक्षी पड़े हुए हैं, पड़ोसियों को भी अपने घर में कई मरी हुई गिलहारियां मिली हैं." श्रीमती बॉयस के पास एक दूसरा फोन आया, "जहां देखो, मरे हुए पक्षी ही दिखते हैं. जीवित एक भी नहीं." एक मरते हुए पक्षी में देखा गया कि उसमें कीटनाशक के जहर के लक्षण दिखायी दे रहे थे...वह कांप रहा था, उड़ने की क्षमता खो चुका था, फालिज और मरोड़ों से तड़प रहा था.

प्रभावित होनेवाले अकेले पक्षी ही नहीं थे. एक स्थानीय पशु-चिकित्सक का कहना था कि उसके दफ्तर के बाहर अचानक ही अपने पालतू बीमार कुत्ते-बिल्लियां लिये लोगों की भीड़ लग गयी थीं. जाहिर था कि उन्होंने अपने शरीर पर पड़े उस सफेद चूर्ण को चाट लिया था. उनमें घातक किस्म के डायरिया, उल्टियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मरोड़ों के लक्षण नजर आ रहे थे. पशु-चिकित्सक उन्हें यही सलाह दे सका कि वे अपने पशुओं को घर से बाहर न निकलने दें और उनके पंजों को अच्छी तरह से साफ रखें (हालांकि धोने भर से तो ये क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बन फलों और सब्जियों पर से भी साफ नहीं होते.)

जापानी झींगुर को समाप्त करने के उद्देश्य से और भी कई क्षेत्रों पर ये छिड़काव किये गये. आयलैंड, एलिनोइस में मृत तथा मरणासन्न पक्षियों को एकत्र किया गया. पता चला कि उनमें से 80 प्रतिशत वे पक्षी थे जो अपने मधुर स्वर में गाना सुनाया करते थे.

ये कीटनाशक इसीलिए छिड़के जाते हैं कि घातक विष हैं और विष यह नहीं देखता कि वह अपना असर किस पर कर रहा है. जो भी इसके संपर्क में आयेगा, यह तो अपना काम करेगा ही—चाहे वह घर की पालतू बिल्ली हो, किसी किसान के पशु हों, खेतों के खरगोश हों या आकाश का कोई पक्षी. ये पशु-पक्षी मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुंचाते. बल्कि उसे जीवन में कुछ मधुर ही देते हैं. फिर भी मनुष्य उन्हें मौत की सजा दे रहा है.

और ऐसा भी नहीं है कि ये कीटनाशक मनुष्य के स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं पहुंचाते. इन कीटनाशियों से एक बार संपर्क में आने पर ही काफी जहर शरीर में पहुंच जाता है. अपने खेतों में ये कीटनाशक छिड़कनेवाले किसानों, सरकार द्वारा नियुक्त छिड़कनेवालों, बड़ी मात्रा में कीटनाशी छिड़कनेवाले हवाई जहाजों के चालकों और इसी प्रकार के कीट-नाशकों के बार-बार संपर्क में आनेवाले लोगों के लिए अचानक गंभीर रूप से बीमार पड़ जाने या मर जाने का खतरा बना रहता है. सामान्य व्यक्तियों में भी, जो कीटनाशकों के सीधे संपर्क में नहीं रहते, इस जहर के धीरे-धीरे शरीर में इकट्ठा होने का खतरा बराबर बना रहता है. कुछ जिम्मेदार जन-स्वास्थ्य अधिकारियों ने संकेत भी किया है कि समय के साथ-साथ इन रासायनिकों के जीव-वैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ते हैं और इसकी भयंकरता इस बात पर निर्भर करती है कि कोई व्यक्ति अपने पूरे जीवन में कितना जहर निगल चुका है. भावी विनाश के इस खतरे के इस पक्ष पर किसी का ध्यान नहीं जाता क्योंकि लोग तो अधिकतर तात्कालिक बीमारी को लेकर ही चिंतित होते हैं.

दरअसल, हमारे लिए भी पर्यावरण की समस्या उसी रूप में है जिस रूप में मिशिगन की मैना के लिए, मिरेमिनी की सामन मछली के लिए है. जब हम नदियों की कैडी मक्खी को यह जहर देते हैं तो जहर का शिकार होकर मरती है सामन मछली. जब हम किसी पोखर के मच्छर पर यह जहर छिड़कते हैं तो यह उसी तक सीमित नहीं रहता, बल्कि क्रम से चलता हुआ पक्षियों को भी अपना शिकार बनाता है. जब हम पत्तियां खानेवाले छोटे कीड़ों को इस जहर से मारना चाहते हैं तो दरअसल हम एक मैना का गला दबा देते हैं. ये सब बातें केवल सैद्धांतिक नहीं हैं.

पर हमारे शरीर के भीतर इस जहर का जो चक्र चलता है, उसे देखा नहीं जा सकता. जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ये क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बन हमारे शरीर के वसा-वाले स्थानों में एकत्र होते रहते हैं और उनके काम में बाधा डालते हैं. उदाहरण के लिए यकृत (लिवर) पर उनका प्रभाव काफी अधिक होता है. यकृत शरीर का एक ऐसा अंग है जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है. हमारे जीवन में एक बहुत बड़ी भूमिका निभाता है, यदि इसे जरा-सी भी क्षति पहुंचती है तो इसके काफी गंभीर परिणाम हो सकते हैं. 1950 के दशक में, जबसे इन कीटनाशकों का अंधा-धुंध प्रयोग शुरू हुआ है, यकृतशोथ की बीमारी में तेजी से वृद्धि हुई है. इसी प्रकार सूत्रण रोग में भी वृद्धि हुई है. हालांकि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये रोग कीट-कीटनाशकों के कारण पैदा हुए हैं, पर यह जरूर कहा जा सकता है कि इन कीटनाशकों के कारण शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति बहुत घट जाती है और रोगों को आक्रमण करने में सुविधा हो जाती है.

प्रयोग करने पर देखा गया है कि कई कीटनाशक गुणसूत्रों को भी प्रभावित करते हैं. जिन मच्छरों की कई पीढ़ियां डी. डी. टी. के संपर्क में आयी हैं, उनमें एक विचित्र स्थिति देखने में आयी कि एक ही मच्छर आधा नर है और आधा मादा. क्या हम ऐसे रासायनिकों को वातावरण में फैलने दे सकते हैं, जिनमें गुणसूत्रों को सीधे-सीधे प्रभावित करने की क्षमता हो? क्या मच्छरों से रहित वातावरण बनाने के लिए हम इतनी बड़ी कीमत चुका सकते हैं? दो अरब सालों के विकास के बाद जो मानव की जाति अस्तित्व में आयी है,

रासायनिक जहर : कैसे करता है असर?

सारी सावधानी और सजगता के बावजूद एल्ड्रिन का जहर किस तरह अपना घातक असर दिखा सकता है, इसका एक त्रासद उदाहरण यहां प्रस्तुत है. एक अमेरिकी दंपती अपने एक वर्षीय बच्चे को साथ लेकर रहने के लिए वेनेजुएला गये. जिस घर में उन्होंने अपना ठिकाना बनाया वहां तिलचट्टे बहुत थे. उनसे छुटकारा पाने के लिए कुछ दिन बाद एल्ड्रिन का छिड़काव किया गया. छिड़काव से पहले बच्चे और एक पालतू कुत्ते को वहां से अलग हटा लिया गया. यह छिड़काव सुबह नौ बजे किया गया. छिड़काव के बाद फर्श को अच्छी तरह से धोकर साफ कर दिया गया. तीन-चार बजे के करीब बच्चे और कुत्ते को उस घर में लाया गया. उसके करीब एक घंटे बाद ही कुत्ते को उल्टियां आने लगीं, उसका शरीर ऐंठने लगा और वह मर गया.

उसी रात को करीब दस बजे बच्चे को भी उल्टियां आने लगीं. उसका शरीर भी ऐंठने लगा और वह अचेत हो गया. एल्ड्रिन के इस घातक संपर्क ने उस बच्चे को वनस्पति जैसी हालत में बदल दिया. वह अब न तो देख सकता था और न सुन सकता था. बाह्य जगत से उसका संपर्क एकदम टूट गया था. न्यूयार्क अस्पताल में कई महीनों के इलाज के बाद भी उसकी इस दशा में कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सका. उसका इलाज करनेवाले एक डाक्टर ने बड़ी निराशा से कहा, "इस बात की बहुत कम संभावना है कि कोई भी इलाज इस बच्चे की हालत कुछ भी सुधार सके."

▣

'नेचुरल हिस्ट्री सर्वे' की एक रिपोर्ट में कुछ घटनाएं दी गयी हैं जिनसे पता चलता है कि पशु इस जहर को पहले ही पहचान लेते हैं. एक घटना इस प्रकार है :—

भेड़ों के एक झुंड को एक ऐसे घास के मैदान की ओर खदेड़ा जा रहा था जहां किसी प्रकार का रासायनिक छिड़काव नहीं किया गया था. अलबत्ता उस मैदान के बगलवाली सड़क के दूसरी ओर के क्षेत्र में हाइलड्रिन का छिड़काव किया गया था. संयोग से उस छिड़काव का कुछ अंश इस चारगाह में भी आ गया था क्योंकि इसके भीतर आते ही भेड़ों ने इसका असर महसूस करना शुरू कर दिया. वे घास चरना छोड़कर चरागाह से बाहर निकलने को बेचैन-सी हो उठीं. जब उन्हें बाहर नहीं निकलने दिया गया तो वे सिर नीचे किये चुपचाप खड़ी हो गयीं. पर घास के कतरे को भी न छुआ. आखिरकार उन्हें चरागाह से बाहर लाना ही पड़ा. बाहर आकर उन्होंने पानी पीने की इच्छा जाहिर की. पर चरागाह के पासवाले पानी के सोते पर देखा गया कि दो भेड़ें पानी पीते ही मर गयीं. बाकी भेड़ों को बलपूर्वक वहां से खदेड़ दिया गया. पर इसके बाद तीन और भेड़ें मर गयीं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी को हम अपने जरा-से सुख के लिए बलि चढ़ा सकते हैं?

अब जरा इस ओर भी देखें कि ये रसायन जिस उद्देश्य के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं, उसमें कितनी सफलता मिली है. दुनिया भर से आनेवाली रिपोर्टों से पता चलता है कि स्थिति और भी खराब हो गयी है. रसायनों के प्रयोग के एक दशक के बाद (यह पुस्तक 1961 में लिखी गयी थी आज स्थितियां और भी विकृत रूप में हमारे सामने है.) कीटविज्ञानिकों के सामने यह समस्या आ खड़ी हुई है कि जिन समस्याओं को वे समझते थे कि कई साल पहले सुलझा लिया गया है, अब अधिक भयावह रूप से सामने आ खड़ी हुई हैं. अब नयी समस्या यह है कि जो कीट कभी थोड़ी संख्या में पाये जाते थे, आज एक बलां के रूप में फैल गये हैं. दरअसल, रासायनिक नियंत्रण का तरीका एक तरह से आत्मघाती ही सिद्ध हुआ क्योंकि इसमें जीव वैज्ञानिक प्रणालियों को ध्यान में रखा ही नहीं गया.

आधुनिक कीट नियंत्रण कार्यक्रमों का प्रारूप तैयार करते हुए दो महत्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया. पहला तो यह कि कीटों पर सबसे कारगर नियंत्रण तो स्वयं प्रकृति करती है, मनुष्य नहीं. इनकी संख्या पर नियंत्रण उस प्रक्रिया के द्वारा रखा जाता है जिसे पर्यावरण विज्ञानी 'पर्यावरण का प्रतिरोध' की संज्ञा देते हैं. और यह तभी से शुरू है जब धरती पर पहले जीव का अविर्भाव हुआ था. उपलब्ध खाद्य की मात्रा, मौसम तथा जलवायु की स्थितियां, अन्य मांसाहारी जीवों की उपस्थिति आदि इनमें से मुख्य हैं. कीटविज्ञानी राबर्ट मैटकैफ का कहना है कि 'कीटों को नियंत्रित करने में सबसे बड़ा अकेला उपकरण तो उनमें होनेवाला परस्पर संहारक युद्ध ही है.' जबकि आजकल होनेवाले अधिकतर रासायनिक जितना हमारे शत्रु कीटों को मारते हैं, उतना मित्र कीटों को भी

दूसरे इस तथ्य को भी नजरअंदाज किया गया है कि यदि पर्यावरण का यह प्रतिरोध जरा भी क्षीण हो जाता है तो बड़े भयानक ढंग से इन कीटों की संख्या बढ़ जाती है. कई जीवों की प्रजनन क्षमता तो कल्पना से भी परे होती है.

कोई भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि कीटों की कितनी प्रजातियां इस समय धरती पर हैं, क्योंकि बहुत-सी तो ऐसी हैं जो अभी पहचानी नहीं गयी हैं. फिर भी सात लाख से अधिक प्रजातियों को पहचाना जा सका है. इसका मतलब हुआ कि धरती के कुल जीवों की प्रजातियों में से 70-80 प्रतिशत कीटों की हैं. इनमें से अधिकतर पर प्रकृति ही बिना मानव की सहायता के नियंत्रण करती है. यदि ऐसा न होता तो इनकी संख्या पर नियंत्रण रखना रासायनिकों या अन्य उपायों से तो संभव नहीं था.

कई बार तो रासायनिकों का छिड़काव जिन कीटों को मारने के उद्देश्य से किया जाता है, उनकी संख्या छिड़काव के बाद और अधिक बढ़ जाती है. औठेरियों में जब काली मक्खियों को मारने के लिए रासायिनक छिड़के गये तो उनकी संख्या 17 गुना बढ़ गयी. इंग्लैंड में जब गोभी पर जैक फास्फोरस रसायनों का छिड़काव किया गया तो गोभी के कीड़े अचानक तेजी से बढ़ गये. कुछ मामलों में जहां जिन कीटों के लिए छिड़काव किया जाता है, वे प्रभावी ढंग से समाप्त हो जाते हैं, वहीं दूसरे ऐसे कीटों की संख्या अचानक बढ़ जाती है जिन पर वे कीट नियंत्रण रखते थे.

लगभग ऐसा ही अमेरिका के पश्चिमी राष्ट्रीय वनों में घटा जहां 1956 में अमेरिकी वन सेवा ने स्प्रूस बडबार्म को मारने के लिए 85,000 एकड़ वन क्षेत्र पर डी. डी. टी. का छिड़काव किया. वहां अगली गर्मियों में हवाई सर्वेक्षण में देखा गया कि देवदार के पेड़ कत्थई रंग के हो गये हैं और उनकी सारी पत्तियां झड़ गयी हैं.

ये उदाहरण तो हैं पेड़-पौधों के कीटों के. अब जरा उन कीटों की बात भी कर लें जो रोग फैलाने का काम करते हैं. दक्षिण प्रशांत के निसान द्वीप में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारी मात्रा में कीटनाशियों का प्रयोग किया गया और जब माना गया कि कीट खत्म हो गये तो यह प्रयोग बंद कर दिया. पर अचानक ही द्वीप में मलेरिया वाहक दलदली मच्छरों की बाढ़-सी आ गयी. दरअसल, इन मच्छरों या उनके अंडों को खानेवाले सभी कीटभोजी तो रासायनिकों की मार में आ गये थे. और उनकी नयी आबादी अभी पैदा नहीं हुई थी. परिणाम यह हुआ कि मच्छरों की संख्या अनियंत्रत रूप से बढ़ गयी.

ये तमाम समस्याएं पिछले एक दशक से अपनी काली छाया हम पर डाल रही हैं. हमारा एक बहुत बड़ा शोधार्थी वर्ग अभी रासायनिक नियंत्रण की दिशा में ही लगा हुआ है जबकि प्राकृतिक नियंत्रण विधियों को विकसित करने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है. 1960 में कीट विज्ञानियों का लगभग 2 प्रतिशत ही जीव वैज्ञानिक नियंत्रण की दिशा में काम कर रहा था जबकि 78 प्रतिशत रासायनिक कीटनाशियों की खोज में लगा है.

ऐसा क्यों है? इसलिए कि बड़ी-बड़ी रासायनिक कंपनियां विश्वविद्यालयों को रासायनिक कीटनाशकों पर अनुसंधान के लिए भारी पैसा दे रही हैं. इसलिए शोधछात्रों तथा उनके प्राध्यापकों को इसमें अधिक आकर्षण नजर आता है. जबकि दूसरी ओर जीव वैज्ञानिक कीट नियंत्रण के क्षेत्र में ऐसा कुछ भी आकर्षण नहीं है. वे अपना कोई भविष्य भी नहीं देखते, क्योंकि उनके लिए रासायनिक कीटनाशियों के छात्रों की तरह इन रासायनिक कारखानों में नौकरियों की भी कोई संभावना नहीं होती. परिणामस्वरूप यह काम राज्य की अथवा संघात्मक एजेंसियों के जिम्मे छोड़ दिया जाता है, जहां तनख्वाहें बहुत ही कम हैं.

यह स्थिति इस रहस्य पर से भी परदा उठाती है कि बड़े-बड़े कीटविज्ञानी भी क्यों रासायनिक नियंत्रण की ही वकालत करते हैं. इन लोगों की पृष्ठभूमि की खोजबीन करने पर पता चलता है कि उनके पूरे शोध कार्यक्रम को रासायनिक उद्योग से ही सहारा मिला था. उनके व्यावसायिक सम्मान तथा रोजगार तो रासायनिक विधियों के बने रहने पर ही निर्भर करते हैं. आप उनसे यह उम्मीद कैसे कर सकते हैं कि वे उसी शाख को काट डालेंगे जिस पर वे बैठे हुए हैं! पर उनकी नीयत को देखते हुए आप यह निर्णय तो ले ही सकते हैं कि कीटनाशकों को हानिरहित बतानेवाले उनके तर्कों पर कितना विश्वास किया जा सकता है. □

संक्षिप्त रूपांतर : सु. उ.

व्यंग्यचित्र : सुशील कालरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ऊंचा मकान

योगेश गुप्त

दरअसल यह इतना ऊंचा मकान उसी का है.

और अब वह इसी मकान के एक कमरे में खिड़की के किनारे मेज-कुर्सी डालकर पढ़ता रहता है. जाने क्या-क्या.

कभी-कभी उसका मन करता है कि वह खिड़की में से सिर निकालकर मकान की ऊंचाई देखे, पर उसने खुद मकान बनानेवालों को सलाह दी थी कि कोई भी खिड़की खुली न रहे. इतना ऊंचा मकान बना है कि कोई ऊपर की मंजिल का आदमी खिड़की से नीचे झांकने लगे तो डरकर गिर न जाये. मंजिल पर मंजिल रखकर आसमान को छुआ गया है. हर मंजिल का अपना-अपना दालान है और उन सबने मिलकर एक गहरे कुएं की शेप ले ली है. उस कुएं में तमाम खिड़कियों से कूड़ा-करकट, थूक-बलगम झरता रहता है, जिसे वह देखता है. और तरह-तरह के मुंह बनाता है. पर हिलता-डुलता नहीं,

कुएं की तमाम दीवारें कभी सफेद थीं. अब उनका रंग सुरमई है.

हर मंजिल के चार कमरे हैं और चार खिड़कियां. एक खिड़की दूसरी के सामने खुलती है और दो कमरे मिलकर एक फ्लैट बनाते हैं. दोनों कमरों के पास एक-एक दरवाजा है. बाहर के कमरे का दरवाजा खुलते ही सामने लटकी सीढ़ियां नजर आती हैं.

हवाई जहाज पर से इस मकान को देखें तो शायद बहुत अच्छा लगे.

वह रोज खिड़की के पास बैठा रहता है और कोई न कोई किताब पढ़ता रहता है.

वह आज भी बैठा है. एक किताब पढ़ रहा है. किताब का नाम है—'पौधों पर आवाजों का असर.'

बराबर के कमरे में से उसकी बीवी और दो बच्चों की आवाजें आ रही हैं. सुबह का वक्त है और तमाम मंजिलों की खिड़कियों से कुछ-न-कुछ 'रिले' हो रहा है. वे सब आवाजें कुएं में डूब रही हैं. कूड़ा-करकट की तरह.

उसे किताब में रस आ रहा है. क्या बात है. आदमी का ज्ञान कहां से कहां पहुंच गया है. आज वह क्या नहीं जान सकता. जो दीखता है, वह तो दीखता ही है, पर जो अदृश्य है वह भी विज्ञान की आंखों से साफ-साफ नजर आता है. आसमान दीखता है. . .उसने खिड़कियों में सलाखें लगवाकर गलती की. मन खुश हो तो ऊपर आसमान की तरफ देखना अच्छा लगता है. यहां से कैसा लगता? जैसे नीला रेशमी टुकड़ा उसके मकान के ऊपर कसा हो . . .ओह. क्या बात है. . .पर गिरने का डर भी तो था. . .न जाने कितने आदमी जान से हाथ धो बैठते.

उसने सुना पत्नी कह रही है, "अरे नीता, तूने अब तक मुंह-हाथ नहीं धोया? कब से तो बैठी है."

"नीचेवालों ने नल खोल रखा है मां, पानी नहीं आ रहा."

उसने किताब को जरा मेज पर से उठाया और हाथ से मेज पर पड़ी धूल साफ की और फिर डूबकर किताब पढ़ने लगा.

कैसे-कैसे राग उठता है, और कैसे-कैसे पौधा उन्माद में उफनता है. तौबा. कितने बारीक होते हैं रेशे पौधों के और स्वरों की अनदीखती डोरियां और. . .

वह किताब ध्यान से पढ़ने लगा है. उसके बायीं तरफ थोड़ा ऊपर एक बल्ब है जो हर समय जलता रहता है. कमरों में बाहरी रोशनी आने की मनाही है. इस बल्ब से भी बहुत लतीफ डोरियां चारों तरफ फैली हुई हैं. उस राग की ध्वनियां भी इतनी ही लतीफ होंगी. शायद इससे भी लतीफ हों. पौधे कितने संवेदनशील होते हैं. भौतिक स्तर पर इन लतीफ डोरियों का असर कबूल करते हैं.

पत्नी कह रही है, "नीता, खड़ी ही रहेगी."

"पानी नहीं आया, मां."

"और तू यहां क्यों बैठा है रे संजू, अंगीठी के पास धुएं में."

संजू चुप है. वह अंगीठी पर रखे पानी के उबलने की प्रतीक्षा कर रहा है. खिड़कियां अभी भी कुछ न कुछ 'रिले' कर रही हैं.

वह धीरे-धीरे किताब में डूबता चला जा रहा है.

समय बीत रहा है.

कमरों की कालिख में हल्का-सा फर्क आया है.

सूरज ऊपर चढ़ रहा होगा. आसमान से परिंदे गायब हो रहे होंगे. चारों तरफ के पेड़ धीरे-धीरे हिलना-डुलना बंद कर रहे हैं. चारों तरफ के संगीत में शांति व्याप रही है.

आवाजों के टुकड़े कुएं में गिर रहे हैं.

अचानक एक बहुत गंभीर आवाज उसकी पत्नी ने अपने सामनेवाली खिड़की की तरफ फेंकी है, "अरी ओ, पप्पू की मां. . !"

पप्पू की मां ने नहीं सुना है.

उसकी पत्नी फिर भी कह रही है, "कोई हमारा दरवाजा बाहर से बंद कर गया है, पप्पू की मां. . ."

पप्पू की मां और पप्पू का बाप पलंग पर बैठे बात कर रहे हैं. उन्होंने नहीं सुना है.

उसकी पत्नी ने अपनी खिड़की की सलाखों को दोनों हाथों से पकड़ रखा है. वह ठीक, रेडियो पर लड़ाई के समय की चेतावनी की तरह रिले कर रही है, "कोई दरवाजा बाहर से बंद कर गया है, कोई आकर खोल दो."

आवाज और छोटी हो जाती है, "बाहर से बंद कर गया है, खोल दो."

"बंद कर गया है, खोल दो."

आवाज का आखिरी टुकड़ा लगातार कुएं में गिर रहा है, कूड़े-करकट की तरह, थूक-बलगम की तरह. यह टुकड़ा भारी है. पहला टुकड़ा ऊपर उठता है और खिड़कियों से टकराता है और खिड़कियों से ठहाकों की आवाजें साथ जोड़कर बाहर निकल जाता है.

"कोई बाहर से बंद कर गया है. . .है-ह-हा."

नीता अब भी नल के पास खड़ी है.

संजू चाय के पानी के उबलने की प्रतीक्षा कर रहा है. वह किताब पढ़ रहा है—'पौधों पर आवाजों का असर.' कभी-कभी वह जोर-जोर से गुनगुनाने भी लगता है. उसका मन करता है कि कोई पौधा हो और वह राग छेड़ दे और पौधा धीरे-धीरे बढ़ने लगे और. . .

लेकिन आसपास कोई पौधा नहीं है. वह अपनी मेज से उठता है. बत्ती बुझा देता है. चारों तरफ रेशमी अंधेरा छा जाता है और वह पल भर खड़ा रहता है. फिर अचानक स्विच ऑन कर देता है. एक ही पल में चारों तरफ देखता है और बड़बड़ाता रहता है, 'लतीफ डोरियों का जाल. मुझे बांध लिया.' कहकर फिर आकर मेज पर बैठ जाता है. किताब पढ़ने से पहले एक पल के लिए पत्नी की तरफ देखता है.

पत्नी कुछ बोल रही है. वह सोचता है. हां, पर पप्पू की मां से, मुझसे नहीं. और सोचकर वह अपनी किताब में गर्क हो जाता है.

"खोल दो, खोल दो, खोल दो."

आवाज का यह टुकड़ा कुएं में गिर रहा है. नीता अभी भी खड़ी है. उसकी आंखों में आंसू हैं. संजू अंगीठी के पास बैठा-बैठा सो गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने पप्पू की मां जोर-जोर से अखबार पढ़ रही है–'हिंदुस्तान में अकाल पड़नेवाला है. . .हिटलर ने यहूदियों को चुन-चुनकर मारा था. . .वियतनाम में नापाम बम से झुलसा एक बच्चा पांच घंटे तक रोता रहा. . . कैनेडी के कत्ल की कहानी का रहस्य नहीं खुल सकता. . .साइकिल पर पीछे बैठती पत्नी कूदकर भाग गयी. . .साइकिल बस से टकरायी, पति खरबूजे की तरह पिचर हो गया. . .'

पप्पू का बाप जोर से हंस दिया.

वह किताब में गर्क है.

ऊपर छत पर चिपके आसमान के टुकड़े में एक चील फंस गयी है.

समय धीरे-धीरे बीत रहा है.

धूप ने तेजी पकड़ ली है. आसमान लाल हो उठा है. मकान की तमाम रगें गर्म होने लगी हैं. तेज गर्मी में यह मकान बाहर की तमाम दुनिया से पिघलकर अलग हो जाता है. धूप में खड़े एक विशालकाय अकेले आदमी की तरह. चारों तरफ के पेड़ छोटे होने के कारण उसे हवा करने में असमर्थ रह जाते हैं. आसमान के सिवा इसे कभी किसी की छाया नहीं मिलती. आसमान गर्म हो तो. . .

इस मकान को अजब तरह से बनाया गया था. पूरी मंजिल तैयार थी. लोहे की बनी एक बहुत बड़ी संडासी से पूरी-पूरी मंजिल उठा-उठाकर एक कमरे के ऊपर एक रखी जाती रही और काबले कसे जाते रहे. किसी ने कहा भी, 'बहुत ऊंची हो गयी है, अंधेरा नीचे तलहटी में बढ़ता चला जा रहा है.' पर वह नहीं माना. ऊपर जाना असंभव हो गया तो वह रुका. पर वह खुश था. इतना ऊंचा मकान और किसी का नहीं है. फिर. . .फिर वह उसमें रहने लगा. और रात-दिन पढ़ाई में लीन रहने लगा. उसे खुशबूदार बातें बहुत पसंद हैं. आज भी वह. . .

दोपहर हो रही है.

पत्नी सोच रही है कि पति से कहे कि बाहर से दरवाजा बंद हो गया है, कोई उपाय करो. पर वह जानती है कि वह क्या उपाय कर सकता है. वह तो खुद बंद है. फर्क सिर्फ इतना है कि पत्नी ने अब तक उसे बताया नहीं है. क्या फायदा है बताने से? उसे डराने से? पढ़ने दो. जितनी देर तक आदमी नावाकिफ रहे, अच्छा है. घबराहट कम रहती है. पर यह बाहर से दरवाजा बंद कर कौन गया है, यह तक पता नहीं चलाया जा सकता? अजब हालत है. है तो.

उसने फिर एक दफा वाक्य दोहराना चाहा है. पर वह सकते में खड़ी रह गयी है. उसके मुंह से आवाज नहीं निकलती है. किवाड़ के नीचे से धुआं आ रहा है. सफेद-सफेद, पीला-पीला, किसी के उल्टी के रंग का. और बड़े-बड़े बगूलों में. यह कैसा धुआं है? अब क्या होगा?

हिंदुस्तान में अकाल पड़नेवाला है . . . हिटलर ने यहूदियों को चुन-चुनकर मारा था . . . वियतनाम में नापाम बम से झुलसा एक बच्चा पांच घंटे तक रोता रहा . . . कैनेडी के कत्ल की कहानी का रहस्य नहीं खुल सकता . . . साइकिल पर पीछे बैठी पत्नी कूदकर भाग गयी, साइकिल बस से टकरायी, पति खरबूजे की तरह पिचर हो गया!—ऊंचे मकानों से हो सकनेवाले विनाशों की ओर संकेत करती संवेदनात्मक कहानी—

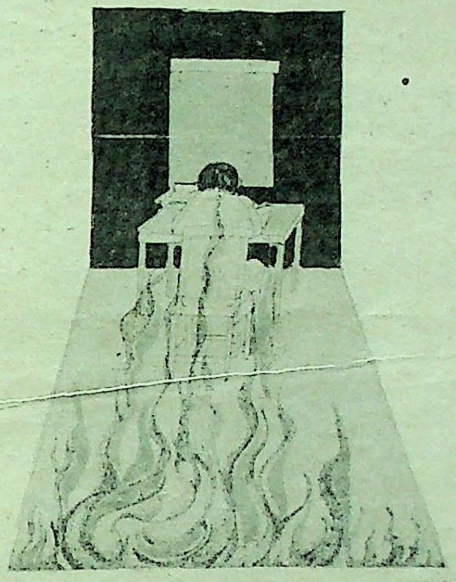

संजू खिड़की के पास बैठा सो रहा है. नीता अभी भी नल के नीचे बैठी है. नीचेवालों ने नल बंद नहीं किया है.

धुआं बढ़ रहा है.

नीता ने मां से पूछा है, "मां, यह धुआं कहां से आ रहा है?"

मां ने कहा है, "कुछ पता नहीं चलता."

"अब क्या होगा मां?"

". . .पता नहीं चलता."

उसने खिड़की से बाहर की तरफ देखा है. सामने की खिड़की में कोई दिखायी नहीं देता. दोनों मियां-बीवी दीवार के पीछे हैं. शायद . . . और ये . . . ये बैठे हैं और उसी तल्लीन भाव से किताब पढ़ रहे हैं? धुएं के गोले उफन-उफनकर आ रहे हैं. वह सोचती है, 'अब क्या होगा?' फिर नीता की तरफ देखती है और देखती रहती है. नीता अंधेरे में बैठी है. सात साल की नीता. एकदम गुड़िया की तरह. और यह संजू. . . ये घुटकर मर जायेंगे? या कोई आकर किवाड़ खोल देगा. कैसे खोल देगा किवाड़? कौन खोल देगा किवाड़? बंद चाहे कोई भी करे, पर खोलने तो खुद ही होते हैं. न खोल सको तो मर जाओ, घुट जाओ और. . .

धुआं किसी की उल्टी की तरह कमरे में फैलता जा रहा है. बल्ब की रोशनी चुभ रही है. वह खिड़की से हटी और स्विच ऑन कर दिया. अब धुआं दिखायी नहीं देता, नीता खूबसूरत नहीं लगती. . . अब सब ठीक है.

वह फिर खिड़की पर आ गयी है. धुआं कदम-कदम बढ़कर खिड़की की राह बाहर निकलने लगा है.

वह जोर से बोली है, "सुनो."

वह किताब में डूबा है–'पौधों. . .'

उसने चीखकर कहा है, "सुनोगे नहीं?"

वह चौंका है. "क्या है?"

"कमरे में धुआं आ रहा है, कोई दरवाजा..."

वह समझ गया है. फौरन उठा है, और मेज से चार कदम आगे बढ़कर उसने अपने कमरे का दरवाजा अंदर से बंद कर लिया है. लौटते हुए अचानक उसका हाथ स्विच पर चला गया है. उसके मुंह से निकला है, "लतीफ डोरियां." वह बत्ती बुझाता है. फिर जलाता है. कहता है, "कमाल है, जो बोलती नहीं, उसकी छुअन जब इतना सुख देती है, संगीत की लहरियां तो. . ." लगता कितना. . .

वह आकर मेज पर बैठ गया है. किताब में फिर गर्क हो गया है. पत्नी ने देखा है.

वह कह रही है, "दरवाजा बंद है, धुआं भर रहा है, खोल दो."

कुएं में आवाजों का ढेर लग गया है.

तपती दोपहरी की झिलमिल रोशनी गहरे कुएं की आवाजों पर पड़ रही है. उधर एक खिड़की से उभरते धुएं को वह सब खिड़कियों के लिए उजागर कर रही है. सब अपनी-अपनी खिड़कियां बंद कर रहे हैं. वह बैठा किताब पढ़ रहा है. और उसकी पत्नी दो सलाखों में अपना ऊंचा गोरा माथा टिकाये है और धीरे-धीरे बोल रही है, "धुआं भर गया है, दरवाजा खोल दो, किसी भी तरफ का. . ."

ऊपर छत पर चिपके नीले रेशमी टुकड़े में फंसी चील घात लगा रही है. ये इस कुएं में इतने सारे जानवर कैसे सैर कर रहे हैं? शिकार के काबिल हैं.

पर कुएं से वह डरती है.

लेकिन है भूखी. और धुएं से बने छोटे-बड़े पंछियों पर वह टूट पड़ी है. पर छूते ही सीधे दीवार से टकराती है. कुएं की सपाट दीवारों से चील के पंखों की फड़फड़ाहट टकराकर एक गूंज पैदा कर रही है. वह अपनी मेज पर से उठता है और खिड़की के किवाड़ बंद कर लेता है.

"कितना शोर है, कोई पढ़ने भी नहीं देता."

पत्नी ने बोलना बंद कर दिया है. शायद वह. . .

नीचेवालों ने नल बंद कर दिया है. पानी की धार जमीन पर गिरकर एक बहुत सूक्ष्म धुआं उगल रही है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाविनाश की लीला को दर्शाता फिल्म का पर्दा

▣ ब्रजेश्वर मदान

किसी दृश्य को लिखकर अंकित कर लेना जितना सहज है तो उसे बाकायदा तैयार करके उसका फिल्मांकन करना उतना ही असहज! मगर देश-विदेश के फिल्मकारों ने नित नयी तकनीकों का इस्तेमाल करके कई ऐसी फिल्में बनायी हैं जिनमें महाविनाश की लीला अपने साकार रूप में प्रकट होकर दिल दहला देती है. इन सब फिल्मों में आइये देखें कि बाढ़, चेचक, सूखा, आग, ज्वालामुखी, बम विस्फोट, तूफान, आंधी आदि आपदाओं का फिल्मांकन किस प्रकार, किस रूप में और किस उद्देश्य से किया गया है....

1953 में कॉन फिल्म महोत्सव में इटली और फ्रांस द्वारा निर्मित फिल्म 'वेजेज ऑफ फीयर' को 'ग्रांड प्रिक्स' एवार्ड मिला था. इस फिल्म को बहुत सारे समीक्षक दुनिया की सर्वश्रेष्ठ फिल्मों में गिनते हैं. यहां इस फिल्म का हवाला इसलिए दिया गया है कि इस फिल्म को भोपाल में यूनियन कारबाइड कारखाने से रिसनेवाली गैस के कारण महाविनाश के साथ जोड़कर देखा जा सकता है. फर्क इतना है कि यह फिल्म मानवीय त्रासदी को जरा दूसरे ढंग से दिखाती है. फिल्म की खूबी यह है कि वह दर्शक को उस हत्यारी पूंजीवादी संस्कृति में झांकने और उस व्यवस्था का विश्लेषण करने का पूरा-पूरा अवसर देती है जो इस महाविनाश का कारण बनती है.

यह फिल्म एक ऐसी बस्ती के लोगों का चित्रण करती है, जिसके निकट एक अमरीकी कंपनी तेल के कुएं खोद रही है. बस्ती में लोगों का जीवन ऐसा है कि उन्हें जीवन की सामान्य सुविधाएं भी प्राप्त नहीं हैं. सड़कें कच्ची हैं, जिनमें जगह-जगह गढ़े हैं. गढ़ों में गंदा पानी और कीचड़ भरा रहता है और जब कोई गाड़ी वहां से गुजरती है तो उनमें जमा कीचड़ इस तरह उड़ता प्रतीत होता है कि बस्ती के लोगों पर ही नहीं, सिनेमा हाल में फिल्म देख रहे दर्शकों पर भी आ गिरेगा. बस्ती के लोग जानवरों की तरह काम करते हैं. फिर भी उन्हें पेट भर रोटी नहीं मिलती और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मजदूरी न मिलने पर, बेकारी से तंग आकर कोई व्यक्ति गले में फंदा डालकर खुदकशी भी कर लेता है. औरतें होटलों में फर्श धोने या बर्तन साफ करने का काम करती हैं.

यह सब दिखाने के बाद फिल्मकार उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हत्यारी सभ्यता के फंदे खोलकर दिखाना शुरू करता है. पहाड़ी पर जहां तेल के कुएं खोदे जा रहे हैं, पानी की बेहद कमी है. अगर वहां आग लग जाये तो उसे बुझाने का कोई उपाय नहीं. एक द्रव्य है—नाइट्रोग्लिसरीन, जिससे आग को बुझाया जा सकता है, लेकिन यह इतना खतरनाक है कि कुछ झटके लगने पर उसमें भी आग लग सकती है. कंपनी का मैनेजर इस बस्ती में आता है. नाइट्रोग्लिसरीन से भरे तीन सौ कनस्तर पहाड़ी पर तेल के कुएं के पास पहुंचाने हैं. उसे दो ट्रकों के लिए दो-दो ड्राइवर चाहिए और वह इस खतरनाक काम के लिए दो हजार डालर प्रति व्यक्ति देने को तैयार है. यह जानते हुए भी कि कितना खतरनाक काम है, इस काम को पाने के लिए सैकड़ों लोग इकट्ठे हो जाते हैं. चार व्यक्ति चुने जाते हैं. एक अपनी प्रेमिका के मना करने पर भी वह काम स्वीकार कर लेता है. चार व्यक्ति दो ट्रकों में कनस्तर भरकर चल पड़ते हैं, खतरनाक रास्ते से. जगह-जगह देखनेवाले का दिल दहलता है कि अभी झटका लगा और विस्फोट हुआ. आखिर एक ट्रक झटका लगने से विस्फोट से उड़ जाता है. वृक्ष जड़ों से उखड़कर दूर-दूर तक उड़े और उनके टुकड़े जगह-जगह फैल गये. सड़क के साथ लगा तेल का नल फट गया और विस्फोट से बने गढ़ों में तेल भर गया. अब दूसरे ट्रक को इन्हीं गढ़ों में से निकलना है.

पूंजीवादी व्यवस्था की पृष्ठभूमि में मजदूरों पर होते अन्याय और मानवीय त्रासदी को चित्रित करनेवाली इस फिल्म को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ फिल्मों में गिना जाता है. आज भी इस फिल्म का कहीं प्रदर्शन होता है तो देखनेवालों की भीड़ टूट पड़ती है. कारण यह है कि यह फिल्म हॉलीवुड की फिल्मों की तरह पैसा बटोरनेवाली डिजास्टर फिल्म नहीं थी. यों इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि इस फिल्म ने हॉलीवुड में निकोलस मेयर जैसे फिल्मकारों को हॉलीवुड स्टाइल में विनाश की फिल्में बनाने की प्रेरणा दी हो. इस फिल्म को दुनिया भर में मिली चर्चा से उन्हें लगा हो कि विनाश को भी बाक्स आफिस पर पैसा बटोरने का मसाला बनाया जा सकता है.

हालीवुड में महाविनाश की लीला पर्दे पर दिखाने की शुरुआत निकोलस मेयर की फिल्म 'टावरिंग इन्फर्नो' से ही शुरू हुई. इस फिल्म को मिली सफलता के बाद वहां डिजास्टर फिल्मों का तांता लग गया. अभी तक हालीवुड में ऐसी फिल्मों का दौर खत्म नहीं हुआ. फिल्मोत्सव '84 बंबई में ही परमाणु युद्ध से महाविनाश की लीला को दिखानेवाली फिल्म 'द डे आफ्टर' की भारत में जबरदस्त चर्चा हुई और अब यह फिल्म राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम ने भारत में व्यावसायिक प्रदर्शन के लिए भी खरीद ली है.

'टावरिंग इन्फर्नो' और 'द डे आफ्टर' की यहां हम विस्तार से चर्चा करेंगे. इसका कारण यह है कि 'टावरिंग इन्फर्नो' ने भारत में भी बंबइया शैली में डिजास्टर फिल्मों के निर्माण की फिल्मकारों को प्रेरणा दी.

'टावरिंग इन्फर्नो' में एक गगनचुंबी इमारत में आग लग जाने की कहानी है. न्यूयार्क में सबसे ऊंची इमारत के निर्माण के बाद उसका उद्घाटन हो रहा है. शहर का मेयर और अन्य गणमान्य व्यक्ति वहां जमा हो रहे हैं. समारोह के दौरान अचानक ही शार्ट सर्किट हो जाने से इमारत में आग लग जाती है. कारण यह था कि जिस आदमी को वायरिंग का ठेका दिया गया था, उसने घटिया मैटीरियल इस्तेमाल किया है. आग बीच के किसी फ्लोर से लगती है. इसलिए नीचे जाने का रास्ता नहीं है. कुछ लोग लिफ्ट में फंस गये हैं और लिफ्ट जलती हुई

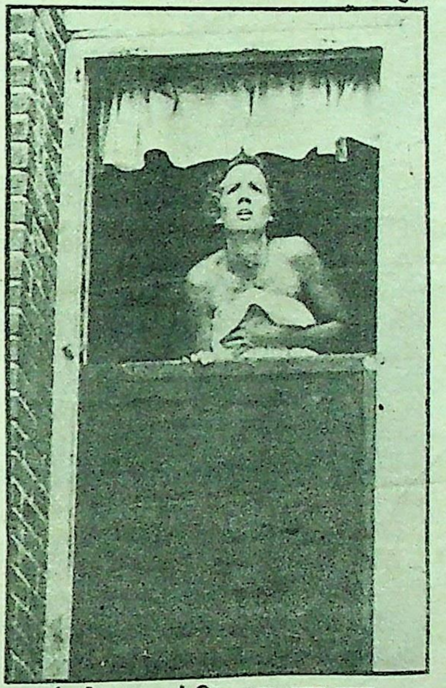

'द डे आफ्टर' फिल्म का एक दृश्य

ऊपर पहुंचती है. आग जिस तरह ऊपर पहुंच रही है और जिस तरह लोग उसमें फंस गये हैं, उससे नहीं लगता कि कोई बच पायेगा. आग, भय और आतंक के इस वातावरण में भी जीवन के लिए संघर्ष फिल्म को एक मूल्य प्रदान करता था. हालांकि एक-एक करके सब बचाव कार्य असफल हो जाते हैं. बस, एक ही रास्ता रह जाता है कि बिल्डिंग की छत पर जो पानी की टंकी है, उसे बम से ब्लास्ट कर दिया जाये. लोग पानी के बहाव से बह न जायें, इसलिए अपने-आपको बांध लेते हैं. कुछ हैं जो पानी में बहने के डर से अपने को खोलकर भागते हैं और उस बहाव के साथ ही बह निकलते हैं. फिल्म आदमी के अदम्य साहस से विनाश पर विजय के साथ खत्म होती है. चूंकि यह अपनी तरह की पहली फिल्म थी, लोगों को महानगर के नारकीय जीवन और कुछ हद तक उसके लिए जिम्मेदार लोगों से (हालीवुड की फिल्में चोर के बारे में बताती हैं, लेकिन व्यवस्था के बारे में नहीं.) परिचित करवाती थी, इसलिए इसे खूब सफलता मिली. भारत में फिल्म बनानेवाले की त्रासदी यह है कि वह सफलता के फार्मूलों के लिए हालीवुड की तरफ देखता है. इसलिए बी. आर. चोपड़ा ने महाविनाश भी अपनी फिल्म के लिए वहां से स्मगल कर लिया. 'वर्टीकल' को 'होरिजैंटल' बनाकर उन्होंने गगनचुंबी इमारत को जलती हुई ट्रेन में बदल दिया और उसे नयी दिल्ली से बंबई सेंट्रल तक रेलवे लाइन पर दौड़ा दिया. बी. आर. चोपड़ा ही नहीं अन्य निर्माता भी 'डिजास्टर' में सफलता का फार्मूला देखने लगे. यश चोपड़ा ने थोड़ी होशियारी दिखायी और महाविनाश की फिल्म के लिए त्रासदी चासनाला कोयला खानवाली दुर्घटना में ढूंढ ली. कई फिल्मकार जो आम विषयों पर फिल्म बना रहे थे उन्होंने जबरदस्ती अपनी फिल्मों में विनाश के दृश्य ठूंसने शुरू कर दिये.

राजकपूर ने 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' में बाढ़ का दृश्य ठूंसा. यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि बंबइया फिल्मकारों के लिए विनाश का आयात 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' साबित हुआ. 'बर्निंग ट्रेन', 'टावरिंग इन्फर्नो' नहीं बन सकी. 'काला पत्थर' बुरी तरह फ्लाफ हुई. अन्यथा विनाश का यह सिलसिला जो 'टावरिंग इन्फर्नो' से शुरू हुआ था, अब तक चल रहा होता.

'टावरिंग इन्फर्नो' के बाद 'बर्निंग ट्रेन' बनी थी तो 'अर्थक्वेक' के बाद 'भूचाल' बनती. भूचाल का जिक्र आ गया तो बी. आर. चोपड़ा ने भूचाल की पृष्ठभूमि में एक फिल्म बनायी थी—'वक्त'. लेकिन हिंदुस्तानी फिल्मकार की ट्रेजिडी यह है कि विषय जो भी हो उसमें हिंदी फिल्मों का सारा मेलोड्रामा आना चाहिए. यही 'वक्त' के साथ हुआ. चोपड़ा ने फिल्म में वे सारे मसाले भर दिये जिनसे उनकी फिल्म हिट होती है. भूचाल की त्रासदी तो दब गयी, स्टीरियो टाइप्ड करैक्टर रह गये. भूचाल में परिवार बिछड़ा. एक भाई हीरो बन गया, एक विलेन बन गया. चूंकि उनकी फिल्म में कोर्ट रूम सीन जरूरी होता है, इसलिए एक चोर भी बन गया और एक वकील भी. यश चोपड़ा ने भी चासनाला की ट्रेजिडी के साथ यही किया. कोयलों की खान में पानी भर जाने के बाद मौत की लड़ाई भी हीरो और विलेन की फिल्मी लड़ाई बन गयी. जिसने भी ऐसी मानवीय त्रासदी को फिल्म के लिए चुना, उसे बंबइया फार्मूलों के साथ प्रस्तुत किया. 'फूल और पत्थर' में प्लेग जैसी बीमारी को नायिका की निजी ट्रेजिडी दिखाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्तेमाल किया गया था. जिसे उसके ससुराल-वाले मरने के लिए छोड़ जाते हैं.

वास्तविकता यह है कि बंबइया फिल्मकारों से हम आशा भी नहीं कर सकते कि वह मानवीय त्रासदी को सच्चे और सही ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं. वहां ज्यादातर निर्माताओं के लिए त्रासदी का मतलब दिलीप कुमार होता है. वे विषय कोई भी उठायें, फिल्म की थीम 'मुनाफा' ही रहती है. यही वजह है कि बंबइया फिल्मकार देश में अकाल, बाढ़ या फिर भोपाल में हुए विनाश जैसी मानवीय त्रासदियों से अछूता रह जाता है. यह भी एक दुखद स्थिति है कि जो फिल्मकार मानवीय त्रासदी की सही और सच्ची फिल्में बनाते हैं, उनका सिनेमा मुख्य-धारा में नहीं है. नहीं तो 1943 में बंगाल में पड़े अकाल पर 1980 में मृणाल सेन ने 'अकालेर संधाने' फिल्म बनायी. यों 1946 में ख्वाजा अहमद अब्बास ने भी बंगाल के अकालपर 'धरती के लाल' बनायी थी और उसमें दिखाया था कि यह प्राकृतिक नहीं मानव निर्मित विनाश है.

मृणाल सेन की फिल्म की खूबी यह थी कि वह फिल्म में 1943 में बंगाल के अकाल में जीनेवाली हीरोइन सावित्री की जिंदगी को 1980 की दुर्गा की जिंदगी में बदल देते हैं. यों यह 'अकालेर संधाने' का सरलीकरण होगा. मृणाल सेन की फिल्म समकालीन यथार्थ को उसकी पूरी जटिलता के साथ प्रस्तुत करती थी. फिल्म की थीम एक नहीं विभिन्न रेशों से बुनी हुई थी. कलकत्ता के पास एक गांव में एक फिल्म का यूनिट 1943 के अकाल पर फिल्म बनाने पहुंचता है. यह यूनिट 1943 में पड़े अकाल की पुनर्रचना करना चाहता है, लेकिन वहां उन्हें अहसास होता है कि अकाल तो वहां आज भी मौजूद है. लेकिन यूनिट के सदस्यों और ग्रामीण लोगों में कुछ घटनाओं को लेकर ऐसा तनावपूर्ण वातावरण बन जाता है कि यूनिट को शूटिंग कैंसिल करके फिर स्टूडियो की नकली और सुरक्षित दुनिया में लौटना पड़ता है.

इस तरह मृणाल सेन यह भी दिखाते हैं कि शहर के पढ़े-लिखे लोगों और ग्रामीण लोगों की जिंदगी में कितना अंतर है. यूनिटवाले फंतासी में जीनेवाले लोग हैं और जब उनका यथार्थ से सामना होता है तो वे भाग निकलते हैं.

यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि बंगाल का अकाल मृणाल सेन की भोगी हुई घटना है और निरंतर जारी रहनेवाली चीज है. इसलिए उनके सामने प्रश्न उसकी पुनर्रचना का नहीं, बल्कि उस व्यवस्था को नंगा करना है जो उसके लिए जिम्मेदार है और जिसके कारण आज भी लोग भूख से मर रहे हैं, उन्हें दो जून रोटी नसीब नहीं होती. मृणाल सेन इस त्रासदी के चित्रण में यह दिखाते हैं कि कैसे शहरी सुख-सुविधाओं का आदी फिल्मकार अपने आस-पास होनेवाली त्रासदी को गहराई से चित्रित करने में असमर्थ है. ग्रामीण और शहरी जीवन की यह दूरी और संवादहीनता रहते हुए प्रतिबद्धता के दावे कितने खोखले हैं.

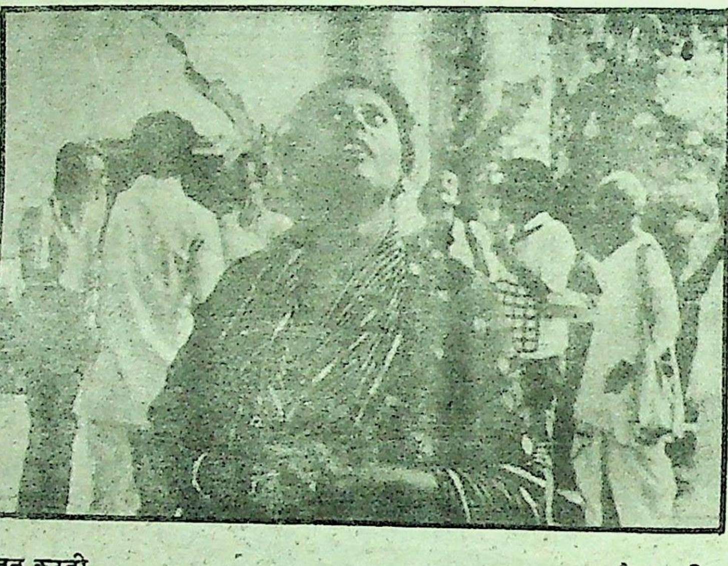

'अकालेर संधाने' में स्मिता पाटिल.

यूनिट गांव में आता है. एक ग्रामीण टिप्पणी करता है, 'शहर के लोग अकाल की तस्वीरें लेने आये हैं.' फिर वास्तविक त्रासदी और उसे लेकर बुद्धिजीवी रुझान का फर्क स्पष्ट होने लगता है. यूनिट के लोग विशाल-बाड़ी में ठहरने का प्रबंध कर रहे हैं. उन्हें बिजली की कमी और टायलट की सुविधाओं को लेकर शिकायत है. यूनिट के खाने-पीने के लिए जो सामान चाहिए उसकी चिंता है. यह समस्या हल हो जाती है. गांव के बीच एक शहर बस जाता है, जिसकी कि ग्रामीण यथार्थ से कोई एकरूपता नहीं.

इसके बाद यूनिट के लोग अपने कल्पनालोक में खो जाते हैं. मगर ग्रामीण उनकी उपस्थिति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते. ग्रामीण जीवन में उनका हस्तक्षेप बाजार में साग-सब्जियों की थोक में खरीद से होता है. चीजों की कीमतों में वृद्धि हो जाती है. डायरेक्टर की 'कट-कट' की बच्चे नकल करते हैं. यूनिट के सदस्यों द्वारा फेंकी जानेवाली कीमती सिगरेटों की खाली डिब्बियों को बच्चे लालच से उठाते हैं.

नायिका शूटिंग छोड़कर भाग जाती है और उसके रोल के लिए एक ग्रामीण लड़की की तलाश शुरू होती है जो वह रोल कर सके. यह तलाश ही गांववालों के जीवन की सामाजिक बनावट में हस्तक्षेप बन जाती है और टकराव का कारण बनती है. निर्देशक अपनी शहरी और जल्दबाज अक्ल के कारण यह समझ ही नहीं पाता कि उस ग्रामीण लड़की की क्या सामाजिक स्थिति होगी जो वेश्या का रोल करेगी.

विभिन्न रेशों से बुनी यह फिल्म ग्रामीण और शहरी जीवन की वास्तविकताओं, व्यवस्था और शोषण के औजारों, भुखमरी और सामाजिक स्थितियों की जांच-पड़ताल करती है और इस विश्लेषण में निर्देशक अपने आपको भी नहीं बख्शता—क्या वह दूसरों की त्रासदी को 'सैल्फ ग्लोरीफिकेशन' के लिए इस्तेमाल नहीं कर रहा? . . . क्या यह उसकी अपनी अपराध भावना नहीं, जिसे वह इस भ्रम से संतुष्ट करना चाहता है कि वह प्रतिबद्ध फिल्मकार के रूप में कुछ महत्त्वपूर्ण काम कर रहा है?... क्या वह स्वयं उस व्यवस्था में भागीदार नहीं, जिसमें भौतिक सुविधाएं आदमी दूसरों का शोषण करके ही हासिल कर सकता है?...

वास्तविक जरूरत उन स्थितियों को ही रेखांकित करने की है जो आदमी के विनाश का कारण है. यहां अकाल 'बिकनेवाली चीज' नहीं है, जबकि 'द डे आफ्टर' में परमाणु युद्ध के खतरे को भी एक बिकनेवाले मसाले के तौर पर इस्तेमाल किया गया है. फिल्म में दिखाया गया है कि कैसे लोग अपने-अपने दैनिक कार्यक्रमों में व्यस्त हैं. जर्मन में सैनिक अड्डे बनाने के खिलाफ रूस और नाटो के विरोध के कारण संधिवार्ता चल रही है. वार्ता विफल हो जाती है. परमाणु युद्ध की सूचना दी जाती है. मृत घोड़े पर सवार एक लड़की चीत्कार के साथ गिरती है. लोगों को सरकारी शरणस्थलों में जाने की चेतावनी दी जाती है. एक ही अस्पताल बचा है, जिसमें युद्ध पीड़ितों का इलाज चल रहा है और उसका संपर्क एक 'माइक्रोरेडियो' से ही दुनिया के साथ रह गया है. युद्ध के दहला देनेवाले दृश्य हैं. जो बच गये हैं, उनके बारे में कोई नहीं कह सकता कि वह जी सकेंगे. फिल्म कोई बहुत प्रभावशाली नहीं बन पायी क्योंकि हालीवुड के स्टाइल में यह 'डिजास्टर मूवी' निकली. लेकिन परमाणु युद्ध के खिलाफ होने के कारण निःसंदेह उसे मानवीय दस्तावेज कहा जा सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

. . पृष्ठ 15 से आगे. . .

नहीं, बाधा भी नहीं दी उन्होंने बल्कि हंसते हुए आगे बढ़कर आततायियों के हाथों आत्मसमर्पण किया.

इतने में मल्लिका आयी, बोली, "सरदार, बड़ी आफत हो गयी."

"क्यों, क्या हो गया?"

"तुम्हारे सारे लोग औरतों को लेकर जिसकी जहां सींग समायी चले गये."

निर्विकार की नाईं खट्टास ने कहा, "तो हरज क्या हुआ?"

"वे क्या अब लौटेंगे?"

"भूख मिटते ही लौटेंगे. बहुत दिनों से भूखे हैं न!"

उसके बाद दीर्घ निःश्वास फेंककर कहा, "उपाय रहता तो एक को लेकर मैं भी अंधेरे में गुम हो जाता. लेकिन साले भगवान ने पहले से ही जो रेड़मार रखी है नपुंसक बनाकर."

मल्लिका का सारा अस्तित्व सिहर उठा. वह झटपट वहां से खिसक पड़ी.

गयी कहां रत्ना? वह भागी नहीं है, किसी पुरुष के हाथों अपने को सौंप दिया. . .इस विषय में तो वह निःसंदेह थी लेकिन है कहां वह? सारा अंधेरा मैदान नर-नारियों की जोड़ियों से भर गया था. किसी ने छोटी-सी किसी झाड़ी या चट्टान की ओट खोज ली थी, किसी को उसकी भी जरूरत नहीं हुई. अजीब नजारा!

एक मशाल जलाकर वह खोजने लगी. एकाएक रोशनी जल जाने से भी किसी को चेत नहीं हुआ. मल्लिका को भी मानो चेत नहीं, उसकी नजर किसी की खोज में लगी थी. आखिर बहुत खोजते-ढूंढ़ते एक चट्टान की ओट में उसने रत्ना को देखा. उसने मर्द के बदन पर जलती मशाल रखी. आंच लगते ही वह बाप-बाप करके भागा. रत्ना और मल्लिका आमने-सामने खड़ी हुईं.

"तुमने मेरे मर्द को क्यों भगा दिया?"

"बगल के मर्द को हटा देने से कैसा लगता है, यही स्वाद जताने के लिए." मल्लिका ने धीर होकर उत्तर दिया.

एक ओर घायल बाघ, दूसरी ओर निर्विकार शिकारी.

रत्ना उछलकर मल्लिका पर आ रही. हाथ की मशाल फेंककर मल्लिका ने रत्ना को हाथों से पकड़ लिया. दोनों जमीन पर गिर पड़ीं.

दूसरे दिन सवेरे देखा गया, क्षत-विक्षत, दो नारी देह मांसपिंड-सी बनी एक-दूसरे को जकड़े पड़ी हैं.

दल के लोग सवेरे लौटेंगे, खट्टास इसी उम्मीद में बैठा था. जब कोई नहीं आया तो वह उन्हें ढूंढने निकला. ज्यादा दूर नहीं जाना पड़ा. सब आस-पास ही थे. बहुतेरे रात के परिश्रम से थककर सो रहे थे, बहुतेरे रात की संगिनी से बातें कर रहे थे. जिस सरदार से पहले वे सब बाघ की तरह डरते थे, आज उन्होंने उसे देखकर भी न देखा.

खट्टास ने कहा, "नरक, बहुत तो हो चुका. अब इन दासियों को लेकर राजधानी लौटने की तैयारी करो."

बड़ी ही उपेक्षा से नरक बोला, "अभी रुको भी ठाकुर, पहले अच्छी तरह से राजरानी को समझ लें, उसके बाद राजधानी की सोचेंगे."

जरा ने पूछा, "सरदार, राजधानी लौटने का क्या हुआ?"

जवाब मिला, "दो दिन इंतजार करो."

लेकिन दो दिन इंतजार करने का मौका नहीं मिला. उसी समय दूर पर घोड़े की टापों की आवाज सुनाई पड़ी. बहुत से घोड़े. खट्टास ने ताककर देखा, बहुत से मंजे घुड़सवार एक कतार में तेजी से आगे बढ़ते आ रहे हैं. वह समझ गया. ये लोग और चाहे जो हों, मित्र नहीं हैं. पास के एक विशाल पेड़ के पत्तों की आड़ से गौर करने लगा कि मामला क्या है! तब तक घुड़सवारों का दल पास आ पहुंचा.

खट्टास ने देखा, ये लोग जो भी हों, पिछली रात-वाले गंवार आभीर लुटेरे नहीं हैं. ये सब सुशिक्षित, सुसज्जित वर्म-चर्म-उष्णीष और तीर-धनुष भालावाले आदमी हैं. सैनिक! ऐसी शक्लवाले लोग उसने पहले नहीं देखे. खट्टास को दिव्यदृष्टि होती तो वह जान जाता कि कुरुक्षेत्र की लड़ाई के बाद से ही नियमित प्रवाह से जो सब विदेशी लुटेरे देश में आते रहे हैं, ये घुड़सवार उन्हीं का अगला दल हैं. इनका लक्ष्य है लूट. इसके बाद जो आयेंगे, उनका लक्ष्य होगा राज्य कायम करना.

जरा भाग निकला. कई बरस, दिन, महीने गुजर गये इस बीच. जरा कहां से कहां भटकता रहा. यमुना पार करके पश्चिम की ओर जाने पर जरा को पता लगा कि वहां के राजा चोर-डाकुओं के सरदार हैं. इस समय लोगों ने यह ढूंढ़ निकाला है कि खेती-बारी के बजाए चोरी-डकैती, राहजनी में कहीं ज्यादा लाभ है. जो लोग खेती करते हैं वे कर नहीं देते, क्योंकि लुटेरे खेत से फसल काट ले जाते हैं. लगान कहां से दें! लगान नहीं पाने से राजा और भिखारी में कोई फर्क ही नहीं रह गया है. इसीलिए पेट के लिए राजा लोग चोर-डाकुओं के सरदार बन गये हैं. अब राजा की राजागिरी चोरी-डकैती से मिलनेवाले हिस्से पर है. पांडव लोग महाप्रस्थान कर गये हैं. इंद्रप्रस्थ में महाराजा युधिष्ठिर के पोते राज्य कर रहे हैं. मगर इंद्रप्रस्थ के बाहर उनकी कुछ नहीं चलती. राजा के कर्मचारी चोर-डाकुओं से मिलकर अपनी रोजी-रोटी चलाते हैं. महाराजा परीक्षित की समझो एक प्रकार से एकादशी चल रही है. यह सब सुनकर जरा दंग रह गया.

उसके हिसाब से दिन की गिनती फिर गिर गयी, जैसे कि हिमालय में गायब हो गयी थी. कितने दिन बीते, कितनी रातें गुजरीं, कुछ याद नहीं रहा. चक्का अस्त हुआ. वह पश्चिम दिशा का ख्याल करके उसी ओर चला. कितनी बार सूरज उगता, सूरज डूबता, जरा के लेकिन चलने का अंत नहीं. आखिर एक दिन रात के पहले पहर वह एक पहाड़ के नीचे पहुंचा. इतना थका हुआ था कि पहाड़ को पार करने की शक्ति नहीं थी. सवेरे के इंतजार में वह वहीं पहाड़ के नीचे सो गया. कल सवेरे पहाड़ को पार करके फिर चलना शुरू करेगा.

भोर को जरा ने पहाड़ पर चढ़ना शुरू किया. कुछ ही देर में वह उसकी चोटी पर पहुंच गया. जहां तक आंखें जा रही थीं, समुद्र ही समुद्र था. 'यहां समुद्र कहां से आया!'

उसकी नजर एक लकड़ी काटते लकड़हारे पर पड़ी. जरा ने उसके पास जाकर पूछा, "भाई मेरे, यहां यदुवंशियों की राजधानी में जाने का रास्ता कहां है?"

लकड़हारा उसकी बात से अवाक् रह गया. बोला, "उनकी राजधानी तो यहीं थी."

"तो कहां है वह राजधानी?"

लकड़हारे ने पानी में एक टुकड़ा लकड़ी डालकर कहा, "यहां."

"मतलब?"

"अजी वह राजधानी तो दस साल हुए, पानी में डूब गयी."

"अच्छा!" कहकर जरा हताश होकर बैठ गया. उसे याद आया, खट्टास के साथ जब वह जा रहा था, तो ऐसी अफवाह उसके कानों में पहुंची थी, मगर विश्वास नहीं हुआ था. उसने फिर पूछा, "भाई मेरे. यहां के सारे लोग-बाग कहां गये?"

"जिनसे बन पड़ा, वे भाग गये. जिनसे न बना, वे सब मगर आदि जलजंतुओं के पेट में गये."

"तो. . .?" यह उसने लकड़हारे से नहीं, अपने-आप से पूछा. लकड़हारे ने कहा, "तो. . . क्या! जहां से आये हो, वहां लौट जाओ या इस पानी में कूद पड़ो. मगर के पेट में जाओ. शायद वहीं सबसे भेंट भी हो जाये." यह कहकर वह हंस पड़ा.

जरा ने देखा, उसके मोटे होठों पर हंसी लहरा रही है. □

● भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली से 'पूर्णावतार' शीर्षक से प्रकाशित.

प्रस्तुति कांता चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वपन

अनुपम

सपनों पर किसका वश चलता है, पर सपने भी अब कैसे-कैसे आने लगे हैं? किसी देश का राजा बनना तो फिर भी जंचता है, लेकिन राष्ट्राध्यक्ष बनने के लिए किसी नये देश की स्थापना का स्वप्न आने लगे तो. . .?—आज के माहौल में इस तरह के स्वप्न क्यों और कैसे आकार लेते हैं, बयान कर रही है एक नयी कलम! . . .

अब कान्यकुब्जों को भी अपना देश मिल गया. मेरी अगुआई में लंबे समय से चलाया गया आंदोलन सफल हुआ. आज मध्य रात्रि में ही ब्राह्मण देश के पूज्य पुरोहित-कम-मार्शल-लॉ प्रशासक ने घोषणा कर कान्यकुब्जों को अलग भूमि देकर उसे अपनी सरकार स्वयं बनाने के लिए स्वतंत्र कर दिया. कान्यकुब्ज देश के बनने के साथ ही यह भी निश्चित हो गया कि इस देश का राष्ट्रपति भी मैं ही बनूंगा, क्योंकि एक तरह से इस देश का जन्मदाता मैं ही हूं. पद ग्रहण करने के साथ ही मैं कुछ ऐसा करने की सोच रहा हूं, जिससे कि मेरा नाम हमेशा-हमेशा के लिए अमर हो जाये. इसके लिए तो सबसे उत्तम उपाय भारत देश के प्रधानमंत्री की तरह कालपात्र गड़वाना ही होगा.

कालपात्र में मैं सोचता हूं कि सर्वप्रथम अपना एक पारिवारिक ग्रुप फोटो दे दूंगा, जिसमें कि मेरे दादाजी की माताजी से लेकर मेरा पोता तक हैं. इस तस्वीर के साथ लिखा रहेगा—'कान्यकुब्ज देश के गौरव.' इन लोगों का विस्तृत परिचय भी साथ रहेगा, जिसे लिखने के लिए मैं अपनी भाभी को नियुक्त करूंगा. इसके अलावा कालपात्र में मेरे आंदोलन का इतिहास रहेगा, देश की जनता के नाम मेरा पहला संदेश रहेगा, इस महान देश का राष्ट्रगीत और राष्ट्रीय झंडा रहेगा.

अच्छा तो, कालपात्र में मेरे आंदोलन का इतिहास जो रहेगा, उसका एक-एक आइडिया आपको बताता हूं. भई देखिए, बात अब चूंकि कालपात्र में जानी है, इसलिए गुप्त से गुप्त बात की भी सही-सही जानकारी देना मैं अपना धर्म समझता हूं. हां तो, हमारे आंदोलन का सबसे मुख्य (गुप्त) मुद्दा था यह कि मैं बेरोजगार था और मैं भैंस चराने से लेकर राष्ट्रपति बनने तक का काम करने को तैयार था. सिर्फ मैं ही नहीं बल्कि उस समय मेरी तरह देश के हजारों और नौजवान भी बेकार घूम रहे थे. महंगाई से सभी लोग तबाह थे. लोग रोज-रोज की मारकाट से भूखे पेट भी चैन से नहीं रह पाते थे. मजदूर दिनभर काम करने के बाद भी रात में भरपेट खाना नहीं खा पाता था. इस भयावह स्थिति में ही एक दिन एक अजनबी मुझसे मिला और बोला, "मैं पड़ोसी भारद्वाज देश से आया हूं. मुझे वहां के राष्ट्रपति ने तुम्हारी स्थिति सुधारने को भेजा है. अच्छा बताओ, क्या तुम राष्ट्रपति बनना पसंद करोगे?" मैंने कहा, "भई, तुम मुझे राष्ट्रपति के यहां झाड़ू लगाने की भी नौकरी दोगे तो मैं कर लूंगा और तुम तो राष्ट्रपति के लिए पूछ रहे हो. जल्दी बताओ, लेकिन करना क्या होगा?"

"करना कुछ नहीं. बस, जैसा मैं कहूं, वैसा करते जाना." और इसके बाद उस अजनबी ने मेरे कान में गुरुमंत्र फूंक दिया.

बस, फिर क्या था, मैं उन गुरुमंत्रों को लेकर मैदान में कूद पड़ा.

"भाइयो एवं बहनों, तुम्हें मालूम है, हम इतने कष्ट में क्यों हैं. इसका एकमात्र कारण है कि हम ब्राह्मण देश में हैं. हमें कुछ करने की आजादी नहीं. साथियों, हम कान्यकुब्जों को अन्य ब्राह्मणों ने अब तक काफी परेशान किया है. अब हम कान्यकुब्ज इनसे दबकर नहीं रहेंगे. हमें अपना एक स्वतंत्र देश चाहिए. हम अपना एक अलग कान्यकुब्ज देश बनायेंगे."

"लेकिन इसके लिए हमें करना क्या होगा?" एक श्रोता ने पूछा.

"अरे भाई, करना क्या होगा, कुछ नहीं. बस, जो भी सरकारी सामान दिखे, उसे नष्ट कर देना है. जो भी गैर कान्यकुब्ज दिखे, उसे मार देना है, उनके घरों में आग लगा देनी है. और बाकी जो कठिनाइयां होंगी, उसमें मदद करने के लिए हमारा हितैषी भारद्वाज देश तैयार है." मैंने उन्हें दीक्षा दी. मेरे इतने भाषण से ही उन मूर्खों का खून खौलने लगा. फिर क्या था, आंदोलन ने जोर पकड़ा, बाकी कसर भारद्वाज देश के राष्ट्रपति ने शोरगुल कर निकाल दी. अंत में ब्राह्मण देश ने अपना एक और टुकड़ा निकालकर चैन की सांस ली.

और अब देखिए, कान्यकुब्ज देश का हाल!

देश आजाद होने की घोषणा होते ही मैंने राष्ट्रपति की कुर्सी संभाल ली. अपने संस्कृत विद्यालय पर ही 'राष्ट्रपति भवन' का बोर्ड टांग दिया. उसी की छत पर लाउडस्पीकर लगाकर देश की जनता के नाम पढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदेश प्रसारित किया—"मेरे कान्यकुब्ज बंधुओ, आज बहुत खुशी का दिन है कि यह साढ़े पांच किलोमीटर क्षेत्रफल की भूमि हमारी है, हमारे कान्यकुब्ज देश की है. इस नयी-नयी मिली आजादी को व्यवस्थित रखने के लिए मैं राष्ट्रपति का पद ग्रहण करता हूं."

(फिर गला साफकर जोर से) "मेरे कान्यकुब्जो, आप लोग किसी मामूली देश के नहीं, बल्कि महान कान्यकुब्ज देश के नागरिक हैं. आप लोगों को अपने पूर्वजों की भांति तपस्या, व्रत, पूजा-पाठ इत्यादि पर अधिक ध्यान देना चाहिए. आप बंधुओं को रोजी-रोटी, हवा-पानी, पढ़ाई-लिखाई जैसी क्षुद्र चीजों से परहेज रखना चाहिए."

"अब आप देशवासियों से निवेदन है कि आप लोग चौकवाले बरगद के बगल वाले संस्कृत स्कूल के पिछवाड़े में आकर झंडोत्तोलन के राष्ट्रीय कार्यक्रम में भाग लें. समय दस बजे. आप लोग सही समय पर पहुंच जाने की कृपा करें."

देश की लगभग साढ़े पांच सौ जनता ने धूमधाम से राष्ट्रीय झंडोत्तोलन कार्यक्रम में भाग लिया. राष्ट्रीय झंडे पर मेरी तस्वीर देखकर कुछ लोगों ने नाक-भौं सिकोड़ी, लेकिन देश में फैले मेरे लठैतों के डर से चुप रह गये.

राष्ट्रगान के रूप में वही गाना हुआ, जो अगले साल मेरे स्वागत में स्कूल की लड़कियों ने गाया था. झंडोत्तोलन के बाद मैं निश्चित हो अगले कार्यक्रम में लग गया.

हां तो, ये सब विवरण कालपात्र में गड़वाने के उद्देश्य से लिखे गये थे और अपने महीने भर के व्यस्त का[illegible]म में मैंने आखिर कालपात्र गड़वाकर ही दम लिया.

और अभी ठीक से दम ले भी न पाया था कि देखा—युवकों का एक समूह हाथों में बैनर लिये और नारे लगाता हुआ आ रहा है—रोजी दो, रोटी दो, पानी दो, कपड़ा दो. . . इत्यादि. मैं अपने लठैतों के साथ उनसे मिलने आया और डपटते हुए कहा, "शर्म नहीं आती आप लोगों को राजनीति करते हुए, जबकि मैंने आप लोगों को राजनीति से

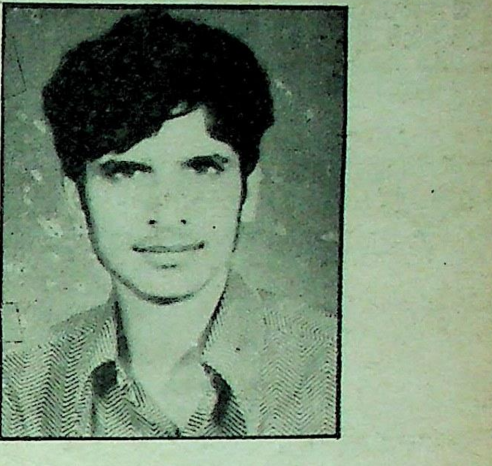

■ अनुपम

जन्म : 13 सितंबर, 1960 जमालपुर (बिहार)

शिक्षा : सिविल इंजीनियरिंग (डिप्लोमा)

संप्रति : फिलहाल लिखने-पढ़ने में व्यस्त. इनका मानना है कि साहित्य, समाज के साथ ही नहीं, बल्कि उसके आगे को चलता है.

एक तरह से परहेज रखने को कहा था. लेकिन आप लोग नहीं ही माने और राजनीति में पड़कर रोजी-रोटी जैसी क्षुद्र चीजों के लिए परेशान हो रहे हैं."

लेकिन उनके नेता ने मेरी बातों पर एकदम कान न देते हुए कहा, "हुजूर, आपने कहा था कि बस, कान्यकुब्ज देश बनने की देर है, उसके बाद तो सारी समस्याएं खत्म, लेकिन हम लोगों की समस्याएं उस समय से चौगुनी हो गयी हैं. और तो और, अब तो खाने के भी लाले पड़ गये हैं. क्या हमने इसी दिन के लिए कान्यकुब्ज देश बनवाया था.

मैंने उन्हें शांत करते हुए कहा, "देखो, बेरोजगार मैं भी था, मैंने तिकड़म लगाकर राष्ट्रपति की नौकरी पा ली. तुम लोग मूर्ख थे. उस समय तुम लोगों ने जरा भी नहीं सोचा कि जब इतने बड़े देश में समस्याएं नहीं हल हो रही हैं तो उस छोटे से देश में क्या होंगी. तुम लोग तो भेड़ थे, मेरे कहने पर पीछे-पीछे चल दिये. उस समय ही तुम्हें सोचना चाहिए था कि शक्ति तो एकता में निहित है. तुम लोगों ने तो हितोपदेश की बूढ़े पिता और चार लड़के तथा लकड़ी के गट्ठरवाली कहानी भी भुला दी. इसमें मेरा क्या कसूर. मैं राष्ट्रपति बनना चाहता था, बन गया. अब मौका मिलेगा तो तुम लोगों का भी खयाल करूंगा."

"इस स्साले ने ठीक कहा, हम लोग तो साथ ही ठीक थे. अपनी उसी सरकार से लड़ते तो थे, मांगते तो थे. वहां तो सरकार के पास था, भले ही कुछ लोग उसे अपनी मुट्ठी में बंद रखे हुए थे, लेकिन इस सरकार के पास तो कुछ है ही नहीं. हमें उसी समय सोचना चाहिए था कि अपनी जरूरत की चीजें उन बंद मुट्ठियों से निकालने में फायदा है, न कि उन्हें छोड़कर भाग जाने में." युवकों का नेता अपने साथियों को समझा ही रहा था कि एक युवक ने गुस्से में लाल होते हुए कहा, "उस समय तो इस साले ने (मेरी ओर इशारा कर) सभी का दिमाग खराब कर दिया था, हम लोगों को दिग्भ्रमित करनेवाला यही है, मारो स्साले को." और 'मारो मारो' कहते हुए उसने एक ईंट का टुकड़ा मेरी ओर दे मारा; जो सीधे मेरे सिर पर लगा.

और मेरी नींद खुल गयी. □

● द्वारा सुरेशचंद्र राय, सदर बाजार, पोस्ट आफिस के पास, जमालपुर (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेणु पुण्यतिथि (११ अप्रैल) अवसर पर

अपने जीवन काल में रेणु ने इन्हें पुस्तक रूप क्यों नहीं दिया?

▣ बलराम

बात की शुरुआत फणीश्वरनाथ रेणु के एक रेखाचित्र 'स्टिल लाइफ' के निम्न अंश से करते हैं—'बेड नंबर, चार : एक्सपायर्ड! मर गया चार नंबर. वह सिर्फ मर गया. किसी का सुहाग नहीं लुटा और न किसी की आंख का तारा ही टूटा. उसके मरने के बाद किसी प्रकार के सामूहिक रुदन का भी कोई आयोजन नहीं हुआ. वह सिर्फ मर गया.' रेणु का यह अनुभव अब कितना आम हो गया है. आज इस तरह की तमाम मौतें अस्पतालों में तो होती ही रहती हैं, बहुत सारे लोग राह चलते मार दिये जाते हैं या यूनियन कार्बाइड जैसे कारखाने हजारों सोते हुए बेखबर लोगों को हमेशा के लिए सुला देते हैं. सांप्रदायिक दंगों में क्या होता है या इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए नरसंहार को हम क्या कहेंगे? इस तरह मरनेवालों के लिए हमारा समाज और हमारा देश क्या कर रहा है! वे हजारों लोग क्या बेड नंबर चार की तरह सिर्फ मर नहीं गये? अब तो एक-दो नहीं, हजारों लोग सिर्फ मर जाते हैं, और कहीं भी; कभी भी, कुछ नहीं होता.

इस कुछ न होने का असर समाज पर पड़ता है और समाज बिखरता है, टूटता है. इसके साथ ही टूटता-बिखरता है मनुष्य, मनुष्य की भावनाएं और संवेदनाएं, जिन्हें फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने साहित्य में जगह-जगह चिन्हित किया है, खासकर औद्योगीकीकरण के कारण उभरे शहरों के सामाजिक और सांस्कृतिक बिखराव और भारतीय गांव के मनुष्य पर बढ़ते दबाव को उन्होंने बड़ी तकलीफ के साथ अभिव्यक्त किया है. हिंदी कथा-साहित्य में प्रेमचंद के बाद सिर्फ और सिर्फ रेणु हैं, जिन्होंने भारतीय समाज, गांव, शहर, यहां के बाशिंदों और उनकी संस्कृति को समग्रता में जाना, समझा और तब उसे अपने साहित्य का आधार बनाया. रेणु अपने समाज के लोगों की नासमझी, उनके अंतर्विरोधों, विरोधाभासों और विसंगतियों को देखते थे, समझते थे और कुढ़ते थे, लेकिन बावजूद इसके वे अपने समाज को बहुत प्यार करते थे. अपने इर्द-गिर्द के लोगों से उनका रिश्ता बहुत गहरा था, जिसे उनकी सद्य प्रकाशित तीन नयी कृतियों—**वन तुलसी की गंध, श्रुत-अश्रुत पूर्व, एक श्रावणी दोपहरी की धूप**, (प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002) में बड़ी आसानी से खोजा जा सकता है. अपनी रचना प्रक्रिया और मोहल्लेवालों के संबंध में रेणु ने लिखा है—"मैं रात को लिखता हूं. जिस रात लिखना होता है, बहुत हल्का भोजन लेता हूं. बिस्तर पर लेटकर, पेट के नीचे तकिया दबाकर लिखता हूं. इसी संबंध में एक मजेदार बात. मैं जब लिखता हूं तो रात बहुत देर तक लिखता हूं, जब तक मन की भड़ास नहीं निकल जाती. फिर दिन चढ़े तक सोता रहता हूं, नौ-दस बजे तक. ऐसी हालत में मोहल्लेवाले कहते हैं—'पियक्कड़ है. अरे, जरूर रात में पी ली होगी. देखो, इतना दिन चढ़ गया, अब तक सो रहा है.' जिस रात मैं सच में पी लेता हूं, लिखना-पढ़ना नहीं होता है. चुपचाप सो जाता हूं. सुबह तड़के ही उठकर टहलने निकल जाता हूं. मन मेरा उदास रहता है. मोहल्लेवाले खुश होकर कहते हैं—'देखो-देखो, आदमी सुधर रहा है. लगता है, पीना छोड़ दिया है. देखो कैसे सुबह-सुबह टहलने निकला है.' वे मुस्कराते हैं और मैं मन ही मन कुढ़ता हूं."

मोहल्लेवालों से अलग हटकर रेणु जब पूरे देश की सोच और समझ को देखते हैं, समझते हैं तो इसी तरह कुढ़ते हैं और चुनाव लड़ते हैं तो हार जाते हैं. लेकिन वे अपनी हार का कारण जनता को नहीं बताते. वे गहरे पैठकर विश्लेषण करते हैं और चुनाव की विसंगति को पकड़ लेते हैं. अपनी आत्मरचना 'टूटते-बिखरते सपनों की दास्तान' में उन्होंने लिखा है—"उन्माद चाहे विजय का हो या पराजय का, उस समय आदमी सही निर्णय नहीं लेता. विजयोन्माद के पक्ष में चुनाव कराना कहां तक न्यायसंगत है? लेकिन राजनीति के शास्त्र में ऐसे ही क्षण पैदा किये जाते हैं कि जब आदमी उन्माद में पागल हो जाये, एक वेव चल जाये और फिर वोट गिरने लगें." रेणु के इस कथन के संदर्भ में बंगला देश के उदय के बाद के चुनाव को देखें तो पाकिस्तान पर विजय का उन्माद जनता पर हावी था. इंका ने विरोधी पार्टियों पर बुहारी फेर दी, लेकिन इमरजेंसी में जनता अपनी पराजय के उन्माद में थी, इंका पर बुहारी फेर दी. पंजाब में आतंकवाद और फिर इंदिरा गांधी की हत्या के बाद जनता को फिर पराजय के उन्माद में कर दिया गया और इंका ने फिर विरोधी पार्टियों पर बुहारी फेर दी, लेकिन रेणु की तकलीफ राजनीति के घटिया शास्त्र को लेकर थी. रेणु राजनीतिज्ञ भी थे, तभी तो सटीक विश्लेषण दे सके.

रेणु ने राजनीति की, लेकिन जब अवसर आया तो राजनीति को छोड़कर पूरी तरह से साहित्य को समर्पित हो गये. अपनी आत्मरचना में उन्होंने इसका भी उल्लेख करते हुए लिखा है—"बचपन से एक आदत थी. वह आदत भी मेरी अपनी आदत नहीं थी. किसी बड़े आदमी के बारे में पढ़ा था, देवेंद्रनाथ ठाकुर के बारे में कि वे पुड़ियां पढ़ा करते थे. मैं भी एक बार पार्टी दफ्तर में एक ठोंगे में कुछ भजिया-वजिया खा रहा था. थैला बहुत अच्छे कागज का था, अच्छी छपाई थी. लगा कि विदेशी कागज का टुकड़ा है. उसमें दो लाइनें छपी थीं—'जब कोई आदमी राजनीति और साहित्य दोनों क्षेत्रों में समान रूप से काम कर सकता है और अचानक उसे फैसला करना पड़ जाये कि दोनों में से किसे चुने तो साहित्य को चुननेवाला व्यक्ति बुद्धिमान होता है.' मैंने कहा कि बुद्धिमान ही होना चाहिए और मैंने राजनीति को तिलांजलि दे दी, माने उन राजनीतिक पार्टियों को तिलांजलि दी, लेकिन जिन मूल्यों के लिए मैं पार्टियों में आया था, वे मूल्य मेरे साथ रहे. उन मूल्यों को लेकर मैंने लिखना शुरू किया... 'मैला आंचल' मेरा पहला उपन्यास हुआ. साहित्यिकों ने मुझे पीढ़ी-पानी ही नहीं दिया यानी पंगत में ही नहीं बिठाया, बल्कि अगली पंगत में बिठाया और बहुत धूमधाम से बिठाया."

सो, राजनीति, क्रांति, युद्ध और उन्माद-ग्रस्त संहार से रेणु का बहुत नजदीकी रिश्ता रहा है. उन्होंने बाकायदा कंधे पर बंदूक रखकर युद्ध भी किया था. अपने जीवन काल में रेणु ने अपनी जो कृतियां प्रकाशित होने के लिए दीं, उनका हिंदी संसार में भव्य स्वागत हुआ, किंतु उनकी अनेक रचनाएं ऐसी थीं, जो पुस्तक रूप में नहीं आ सकी थीं. खुशी की बात है कि उपरोक्त तीन कृतियां भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

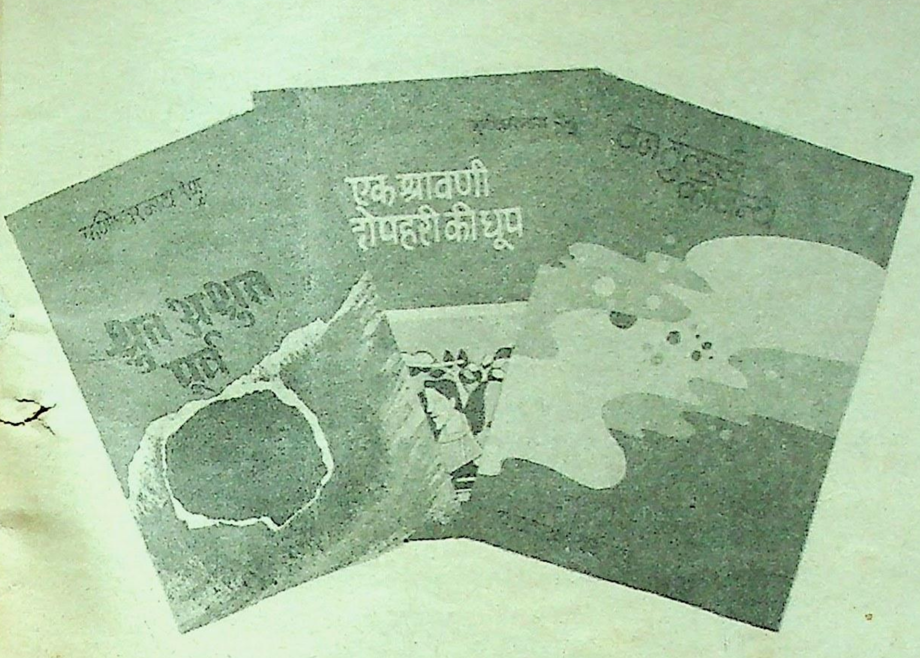

यायावर ने तैयार कीं, जो हमारी इस चर्चा का आधार हैं.

ऊपर उद्धृत 'स्टिल लाइफ' और 'टूटते-बिखरते सपनों की दास्तान' के अंश इन्हीं कृतियों से लिये गये हैं. 'वन तुलसी की गंध' में यशपाल, अज्ञेय, उपेंद्रनाथ अश्क, जैनेंद्र, उग्र, काम, त्रिलोचन, बालकृष्ण सम, सुहैल अजीमाबादी, रवींद्रनाथ ठाकुर, सतीनाथ भादुड़ी, कुसुमलाल तथा जाहिद अली पर रेणु के लिखे स्केच यानी रेखाचित्र संकलित किये गये हैं. रेणु ने अपने इन रेखाचित्रों को पुस्तक रूप नहीं दिया, क्योंकि उनके लिखे स्केच कथाकार के रूप में उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं थे. उनके स्केचों को महादेवी वर्मा के स्केचों के सामने रखकर देखें, तब तो और भी अधिक निराशा हाथ लगती है, क्योंकि रेणु के इन स्केचों में वैसी संश्लिष्टता और बारीक बुनावट नहीं है, जैसी कि उनकी कहानियों और उपन्यासों में है. ये स्केच अपने समग्र प्रभाव में एक रचना जैसा असर भी नहीं डालते, जबकि महादेवी वर्मा के स्केच एक मुकम्मल रचना का असर डालते हैं. वैसे हिंदी में रेखाचित्रों की कोई समृद्ध परंपरा नहीं है, किंतु रेणु जैसे बड़े कथाकार से अपेक्षाएं भी बड़ी होती हैं, जो कि 'वन तुलसी की गंध' से पूरी नहीं होतीं. शायद इसीलिए अपने जीवनकाल में उन्होंने इन्हें पुस्तक रूप नहीं दिया, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि हिंदी साहित्य के लिए इन रेखाचित्रों का कोई मतलब ही न हो. रेणु के ये स्केच अपने ढंग के अलग और ऐतिहासिक महत्व के स्केच हैं. जिन लोगों पर ये स्केच लिखे गये हैं, उनकी एक अलग तस्वीर बनाने में ये सफल हैं, भले ही धुंधली और अधूरी, इसका कारण शायद यह है कि किसी व्यक्ति का रेखाचित्र लिखने के लिए उसे जानने-समझने के लिए जिस एकांतिक सान्निध्य और संवाद की जरूरत होती है, वह रेणु को नहीं मिला. जिनसे मिला, उन पर अपेक्षाकृत सशक्त रेखाचित्र रचा गया है. एकाध या दो-चार मुलाकातों से रेखाचित्र या संस्मरण क्या लिखा जा सकता है. और हां, रेणु के ये रेखाचित्र कहीं संस्मरण के निकट पड़ते हैं या शायद ये स्केच कम संस्मरण अधिक हैं.

त्रिलोचन पर स्केच लिखते समय वे अपने गांव के कबिराहा बाबा के बारे में विस्तार से बताते हैं. दरअसल, वे त्रिलोचन में कबीर का व्यक्तित्व देखते हैं. जैनेंद्र पर स्केच लिखते वक्त देवदास-पार्वती और कवि शमशेर बहादुर सिंह का जिक्र, अश्क के संदर्भ में मिमल मामा का, अज्ञेय के संदर्भ में मनोज वसु, सजनीकांत दास, ताराशंकर आदि का जिक्र, हंग्री जनरेशन के कवियों पर लिखते वक्त 'कुमार संभवम्' की पंक्तियों का उद्धरण आदि भी विषयांतर हैं, किंतु रेणु इन्हीं से अपनी बात स्पष्ट करते हैं. बहरहाल, समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और अन्य भाषाओं में लिखित-छपित रेणु के ये रेखाचित्र पढ़कर रेणु की विचारधारा को समझा जा सकता है, बंगाली, उर्दू और नेपाली साहित्य में उनकी पैठ (घुसपैठ) को जाना जा सकता है. नेपाल और बंगाल के अनेकानेक दृश्यों के साथ इनमें रेणु के गांव के दर्शन किये जा सकते हैं. इसी कारण हिंदी रेखाचित्रों के संदर्भ में रेणु के ये रेखाचित्र भले ही उतने महत्वपूर्ण न हों, किंतु रेणु के अपने साहित्य और समग्र हिंदी साहित्य के संदर्भ में इनका बहुत महत्व है.

जाननेवाले कहते हैं कि रेणु वैचारिक बातें करने या लिखने से बराबर कतराते रहते थे. फिर भी, किंचित संकोच के साथ अपने बारे में, अपने लेखन के बारे में उन्होंने समय-समय पर अपनी कलम चलायी है या वक्तव्य दिये हैं, जिन्हें बहुत मेहनत से खोजकर भारत यायावर के 'श्रुत-अश्रुत पूर्व' के रूप में प्रस्तुत किया है. इस किताब में रेणु के वैचारिक निबंध, संस्मरण तथा रिपोर्ताज शामिल हैं. संग्रह की पहली रचना 'एकलव्य के नोट्स' में रेणु का गांव परानपुर अपने समग्र रूप में मौजूद है तो 'तीसरी कसम के सेट पर तीन दिन' में बंबई की फिल्मी दुनिया के कार्य-कलाप हैं. 'नेपाल : मेरी सानो आमा' में नेपाल में बितायी गयी उनकी जिंदगी के अक्स हैं.

इस तरह रेणु की किताब 'वन तुलसी की गंध' जहां हिंदी साहित्य के कुछ रिक्त स्थानों को भरती है, वैसे ही 'श्रुत-अश्रुत पूर्व' रेणु साहित्य के कुछ रिक्त स्थानों को भरती है. रेणु के संदर्भ में कुछ अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर देती है, खासतौर से रेणु साहित्य को समग्र रूप में पढ़ने की चाह रखनेवाले पाठकों के लिए ये दोनों किताबें बहुत उपयोगी हैं.

उपयोगी तो रेणु का नया कहानी संग्रह भी है 'एक श्रावणी दोपहरी की धूप'. 'ठुमरी', 'अगिनखोर', 'आदिम रात्रि की महक' के बाद प्रकाशित रेणु के इस चौथे कहानी संग्रह में उनकी चौदह असंकलित कहानियां संकलित की गयी हैं, लेकिन सिर्फ एक कहानी 'संवदिया' को छोड़कर अन्य कहानियों के संदर्भ में फिर वही सवाल उठ खड़ा होता है कि अपने जीवन काल में रेणु ने इन्हें पुस्तक रूप में संकलित क्यों नहीं किया, जबकि प्रकाशन का कोई संकट उन्हें रह नहीं गया था? बहरहाल, रेणु की सब कहानियां पढ़ने की इच्छा रखनेवाले पाठकों के लिए रेणु का यह चौथा कहानी संग्रह एक उपहार है.

और चलते-चलते एक बात यह कि रेणु के अब तक प्रकाशित चार कहानी संग्रहों के अलावा एक संग्रह भर की उनकी कहानियां और हैं. भले ही वे कहानियां बहुत महत्वपूर्ण न हों, पर जब रेणु की ये तीन कृतियां छाप ही दी गयी हैं, उनका पांचवां कहानी संग्रह भी छप जाना चाहिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तीसरी नजर

हिंदी का नस्ल सुधार

राकेश वत्स

गपशप की जमीन पर साहित्य-जगत की हलचल को तीसरी नजर से देखने का प्रयास इस स्तंभ का लक्ष्य है, लेकिन यह तीसरी नजर न तो पत्रिका की है और न संपादक की. यह नजर है राकेश वत्स की. यह नजर कुछ साहित्यिक समाचारों पर पड़ सकती है और कुछ सरोकारों पर भी.

हड़ियल और मरियल गउओं को सेठी चंदे और दरबारी अनुदान के बल पर गौशाला में संरक्षण देने और फिर रात के तीसरे पहर पिछले दरवाजे से बूचड़खाने के ट्रक में लदवा देने की हमारी एक लंबी परंपरा रही है. इस समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा ने हिंदी भाषा को भी खूब समृद्ध किया है. 'गोवध बंद करो' की तर्ज पर लगाये जानेवाले 'हिंदी बचाओ' के नारों ने हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसी हिंदीशालाओं की तो जड़ें मजबूत की ही हैं. साथ ही हिंदी की नस्ल में सुधार करनेवालों को भी जिगर खोलकर प्रोत्साहित किया है.

गायों की नस्ल सुधारने के लिए विजातीय सांडों का इस्तेमाल किया जाता है और हिंदी भाषा की नस्ल सुधारने के लिए विजातीय शब्दों का. इस संबंध में उर्दू ने हमारी खूब मदद की है. उर्दू भाषा है भी नबाबों के महलों की भाषा. अब इस्लाम-बम की छत्र-छाया में अरब के 'सोने की भाषा' बनने को उतावली है. और हिंदी ऋषि-मुनियों के आश्रमों की भाषा है.

त्याग और भोग की वर्णसंकरता आज के दोगले युग के लिए बहुत जरूरी है. वैसे भी किसी गरीब भाषा को झोंपड़ी से निकलकर महलों में पहुंचाने का संघर्ष गरीबी मिटाने के नये बीस सूत्री कार्यक्रम का ही एक अंग है. इसलिए इस कार्यक्रम पर हृदय से आस्था रखनेवाले बहुत से लेखक हिंदी की गरीबी, नस्ल सुधार के रास्ते मिटाने के लिए जी-जान से जुटे हैं. चंद लेखकों को आशातीत सफलता भी मिली है.

प्रसिद्ध हिंदी लेखिका कृष्णा सोबती ने तो हिंदी की गरीबी इस कदर दूर की है कि वह हिंदी ही दिखायी नहीं देती. उनके नस्ल-सुधार के नये तरीके का शानदार परिणाम उनके हाल ही में छपे 'हशमत' की कुछ शीर्षस्थ पंक्तियों में बड़े दिलचस्प ढंग से उभरा है—

'वह अच्छी इनसान है. . . . . .और एक अच्छी औरत भी. . . उसकी जमीन खरी है और खालिस हिंदुस्तानी . चौकन्नी और तल्ख-तीखी आंखों की पहचान के रास्ते रफ्ता-रफ्ता आगे बढ़ती दिलचस्पी कहां तक जा पहुंची है. . .' (सारिका : 16 अगस्त 1984)

इस उमदा उदाहरण में आश्रमी हिंदी तो बिल्कुल गायब है. हां, अगर आधुनिक हिंदी का भी कोई शब्द दिखायी देता है तो मोतीचूर के पीले लड्डुओं में खरबूजे के सफेद बीजों की तरह, जायका बढ़ाने के लिए. पाकिस्तान के बहुत से उर्दू लेखक भी इन बीजों से अपने उर्दू का जायका बढ़ाते हैं. 'जिंदगीनामा' में कृष्णाजी ने पंजाबी और उर्दू दोनों की सहायता से हिंदी का नस्ल सुधार किया है. यह सुधार इस हद तक कामयाब रहा है कि उपन्यास, पात्रों की तरफ से पंजाबी का और लेखिका की तरफ से उर्दू का लगता है. इस उपलब्धि पर फिदा होकर पंजाब सरकार ने इसे पुरस्कृत भी किया है. हिंदी अगर पंजाबी होकर भी हिंदी रह सके तो उस सरकार को और क्या चाहिए? वैसे भी भाषाई दृष्टि से राष्ट्रीय एकता को ध्यान में रखते हुए कृष्णाजी के बारे में यह कहते हुए गर्व का अनुभव होता है कि वे सोचती पंजाबी में हैं, बोलती अंग्रेजी में, लिखती उर्दू में हैं और पढ़ी जाती हिंदी में.

हिंदी के विचारवान युवा समीक्षकों को भी धीरे-धीरे इस मीठे सत्य का ज्ञान होता चला जा रहा है कि उर्दू के गंभीर शब्दों में समीक्षा को समकालीन और आधुनिक बनाने की अद्भुत क्षमता है. उनको पता चल गया है कि कारगर, औजार, सरोकार, बहरहाल, तहत, सोच, तई, अमल, दिलचस्प, पुख्तगी और खारिज जैसे दस-बीस शब्द हैं, इनसे अपनी समीक्षा-भाषा का श्रृंगार कीजिए और बालों को खिजाब लगाकर बन जाइए नयी पीढ़ी के नये समीक्षक! श्रृंगार बड़ी चीज है. 'श्रृंग' माने चोटी और 'आर' माने कामदेव. यानी कि कामदेव का माऊंट-एवरेस्ट. श्रृंगार गंजे सिर पर गुडहर के फूल चिपकाने की तरह लगे तो भी कोई हर्ज नहीं. लोगों का ध्यान तो आकर्षित होगा ही. और ध्यान आकर्षित करने के लिए आदमी क्या-क्या नहीं करता.

विषय के चटखारे की तरह भाषा का भी एक चटखारा होता है. मजमेबाज इसी चटखारे के बल पर भीड़ को अपने गिर्द जमाने और बांधकर रखने में सफल होते हैं. आम चिंता है कि हिंदी साहित्य दिन-ब-दिन अपने पाठक खोता चला जा रहा है. भाषा के इस चटखारे के बल पर इस समस्या का समाधान तलाशा जा सकता है. दिल्ली दूरदर्शन के अनाउंसरों की तरह हर फिकरे के अंत में जरा नखरे से बोलिए—'जनाब!' पौ बारह! फिकरे के अर्थ का भोथरापन तुरंत छुप जायेगा. जनाब कहलवाना कौन पसंद नहीं करता? और फिर किसी नखरेबाज हसीना से! इमली की चटनी जैसा चटखारा दे जाता है उस समय यह शब्द. सुरेंद्र शर्मा जैसे हास्य कवि दिल्ली दूरदर्शन के चहेते भाषा के इसी जादू के बल पर हैं. अगर बिजली की तरह किस्मत साथ दे जाये तो 'हम और आप' को जरा गौर से सुनिए. देखते तो सब टकटकी बांध कर रहते ही है. गंजे सिर पर गुडहर के फूल चिपकाने का साक्षात उदाहरण मिल जायेगा. आपको. महिला अनाउंसर तो जैसे कसम खाकर आती हैं कि कृष्णा सोबती की शागिर्दी करनी ही है. इस तरह से भारतीय दूरदर्शन भी नये बीस सूत्री कार्यक्रम के तहत हिंदी के नस्ल सुधार के कार्यक्रम में पेश-पेश है.

युद्ध स्तर पर हो रहे इन प्रयत्नों को देखते हुए कहना न होगा कि कुछ ही वर्षों में हिंदी जर्सी के मेल से बनी हरियाणवी गाय की तरह हिंदुस्तानी हिंदी होगी. यह हिंदी हमारे शिक्षा संस्थानों की आश्रमी हिंदी की नाक पर मूंग दलेगी. फिर शायद हिंदी हिंदोस्तानियों के ही हाथों मजाक और अपमान की भागी नहीं बनेगी.

हमने भी अपनी इस टिप्पणी में कुछ-कुछ इसी तरह का आकर्षण पैदा करने की सुचेष्टा की है. इस डर के मारे कि कहीं संपादक महोदय यह कहकर इसे खारिज न कर दें कि यह तो सरासर गये-बीते आश्रमी युग का धार्मिक बखान है. आधुनिक युग की इस पत्रिका में इसे छापना हमारे लिए असंभव है. □

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मिलने लगा है

डीलक्स निरोध

चिकनाईयुक्त

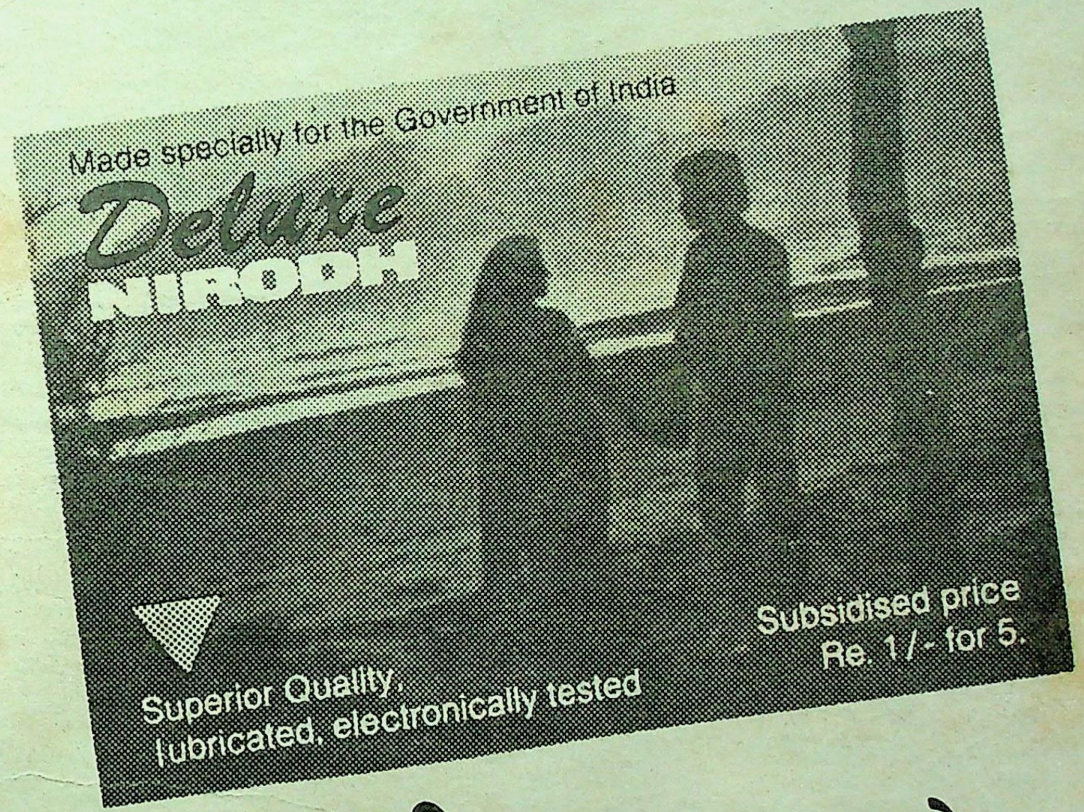

बढ़िया पसन्द वाले दम्पतियों के लिए

1 रु० के 5

*उत्तम कोटि
*इलेक्ट्रानिक तरीकों से परखा गया

सभी बड़े शहरों में बिकता है

davp 84/28

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की सुविधा एवं बचत के लिए

नये रूपाकार में सारिका का यह अंक आपके हाथों में है. इस रूपाकार में हम आपको 100 पृष्ठों से अधिक की सामग्री 76 पृष्ठों में ही दे रहे हैं जबकि मूल्य में वृद्धि केवल 50 पैसे की ही हुई है. यदि आप वार्षिक चंदा हमें सीधे भेजें तो वर्ष में आपको 6 रुपये की और भी बचत हो सकती है. आपको करना केवल इतना है कि अपने शुल्क का राशि हमें बैंक ड्राफ़्ट/मनी आर्डर/पोस्टल आर्डर सहित नीचे दिये गये कूपन के साथ तत्काल भेज दें.

शुल्क की रियायती दरें इस प्रकार हैं :

देश में (बंगलादेश, नेपाल सहित)

वार्षिक : 90 रुपये

छमाही : 47 रुपये

विदेश में सिर्फ समुद्री डाक से :

144 रुपये वार्षिक

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह मास के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता ....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें.

मुख्य प्रसार प्रबंधक
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

बलात्कार और वादाखिलाफी के अलावा स्त्री और पुरुष में सब रिश्ते जायज हैं!

क्या सचमुच...?

डा. राम मनोहर लोहिया के इस कथन की एक नयी मीमांसा आज जरूरी हो गयी है, क्योंकि आदम और हव्वा की तकदीर में तकरार का संबंध समय का मोहताज नहीं, समझ का मामला है. इस समझ को पति-पत्नी, पिता-पुत्री, मां-बेटी, भाई-बहन, दामाद-बहू, सास-ससुर, देवर-भाभी, जीजा-साली तथा वेश्या और ग्राहक के संदर्भ में विकसित कर रही है—सारिका : रजत जयंती वर्ष की आठवीं भेंट—

स्त्री-पुरुष संबंध की कहानियां

देश-विदेश के प्रमुख कथाकारों की अनेक मार्मिक एवं संवेदनशील कहानियां, लघुकथाएं, ग़ज़लें, लेख, परिचर्चा, रिपोर्ताज आदि जो बहुत साफगोई से बयान करेंगे कि स्त्री-पुरुष के संबंध अपने तमाम रिश्तों समेत कल तक कैसे थे, आज कैसे हैं और सन् 2000 के बाद इक्कीसवीं सदी में इनका प्रारूप क्या होगा?

इसे पढ़ने के बाद आपके लिए जरूरी काम—
अपनी प्रति अभी जाकर सुरक्षित करवा लें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबको पिछाड़ता हुआ एक महान बम्पर

भारत लक्ष्मी

सुपर बम्पर लॉटरी

ड्रा की तिथि : 10.5.85

पहला इनाम
रु. 1.25
करोड़

हर
टिकट पर
इनाम
की गारन्टी

जीतिए
रु. 15 करोड़
केवल
50 रु. में

60 दूसरे इनाम
रु. 5 लाख प्रति
खों अन्य इनाम

प्रबन्धक एजेन्ट
अय्यर एण्ड सन
(लॉटरी डिवीजन) यूनाईटेड इण्डिया लाईफ बिल्डिंग
एफ-ब्लॉक कनॉट प्लेस नई दिल्ली-110 001
फोन : 3315148, 3315149, 3310352
घर : 661386, 655522 (जे. मभरवाल)
अध्यक्ष लॉटरी कमेटी आई.टी.टी.टी इन्दौर
एम पी. स्टेट

EMESS/85

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की सुविधा एवं बचत के लिए

नये रूपाकार में सारिका का यह अंक आपके हाथों में है. इस रूपाकार में हम आपको 100 पृष्ठों से अधिक की सामग्री 76 पृष्ठों में ही दे रहे हैं जबकि मूल्य में वृद्धि केवल 50 पैसे की ही हुई है. यदि आप वार्षिक चंदा हमें सीधे भेजें तो वर्ष में आपको 6 रुपये की और भी बचत हो सकती है. आपको करना केवल इतना है कि अपने शुल्क का राशि हमें बैंक ड्राफ़्ट/मनी आर्डर/पोस्टल आर्डर सहित नीचे दिये गये कूपन के साथ तत्काल भेज दें.

शुल्क की रियायती दरें इस प्रकार हैं :

देश में (बंगलादेश, नेपाल सहित)

वार्षिक : 90 रुपये

छमाही : 47 रुपये

विदेश में सिर्फ समुद्री डाक से :

144 रुपये वार्षिक

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह मास के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता ....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें.
मुख्य प्रसार प्रबंधक
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

पूरी दुनिया को जानने लिए, कितने जन्म लेने पड़ते हैं— चौरासी हजार या चौरासी लाख . . .?

इस सवाल के साथ ही सारिका : रजय जयंती वर्ष की नवम भेंट आपको ले चल रही है—तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, टोना-टोटका, साधू-संन्यासी, ओझा-औलिया, जंगल-पहाड़, अंतरिक्ष-उड़न तश्तरी, आकाश लोक-पाताल लोक, जादू-जिन्न आदि के उस अद्भुत संसार में जिनके बारे में लोग प्रायः बस, सुना-सुना तो लेते हैं, लेकिन जानते कुछ भी नहीं. इन्हें वैज्ञानिक स्तर पर जानने-समझने के लिए पढ़िए—

विचित्र कथा विशेषांक

- **मैं इस प्रेतात्मा को जंजीरों से जकड़कर किसी अजायबघर में भेज दूंगा या शो-केस में सजा दूंगा !"**—आस्कर वाइल्ड की कहानी—'गुप्त रहस्य.'
- **अंधों के हुजूम में वह एक अंधे के सिर पर फावड़ा दे मारने को ही था कि सारे अंधे तनकर खड़े हो गये और उनमें से एक बोला, "यह फावड़ा रख दो जी !"**—एच. जी. वेल्स की कहानी—'अंधों का देश.'
- **उसने डाक्टर से कहा, "तुम जैसे ही मेरी बीमारी का इलाज बता दोगे, मैं तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दूंगा और तुम्हारे बीबी-बच्चों को पेंशन देता रहूंगा !"**—यार्शी वोल्कर की कहानी—'सूरज की वापसी.'
- **सुराही का खुलना था कि कमरे में धुआं फैल गया और फिर उसमें से एक आकृति निकली, जिसने कहा, "मैं ऐसा-वैसा आदमी नहीं बल्कि शक्तिशाली जिन्न हसन इब्न होताम हूं !"**—लाजार लागिन का उपन्यास—'बीसवीं सदी का जिन्न.'
- **बोक्षु विद्या एक ऐसी विद्या है जिसे जानकर आदमी बाघ का रूप धारण कर सकता है. यह रहस्यपूर्ण साधना है, लेकिन तंत्र की दुनिया में सबसे सरल जो आसनी से सिद्ध की जा सकती है !** —गंगा प्रसाद विमल का उपन्यास—'मृगांतक'.

साथ ही—

मोपासां, योगीराज वाघमारे, आभा दयाल, अरविंद कुमार, बदीउज्जमां, ठाकुर प्रसाद सिंह, फ्रेंज काफ्का, एडगर एलन पो, राबर्ट लुई स्टीवेन्सन, कारलोस कास्टानेडा आदि देश-विदेश के कथाकारों की विभिन्न रचनाएं.

▣ अपनी प्रति आज ही सुरक्षित करवा लें.

1–15 मई, 1985

सारिका

हर पखवारे जिंदगी से एक जरूरी मुलाकात का माध्यम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar